इकाई 1 :- योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उद्देश्य एवं महत्व

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1.3.1 योग का उद्गम

1.3.2 वैदिक काल

1.3.3 उपनिषद काल

1.3.4 दर्शनों का काल

1.3.5 टीकाकाल

1.3.6 भक्ति एवं हठयोग का उत्कर्ष काल

1.3.7 आधुनिक काल

1.4 योग का उद्देश्य

1.5 योग का महत्व

1.5.1 स्वास्थ्य क्षेत्र में

1.5.2 रोगोपचार के क्षेत्र में

1.5.3 खेलकूद के क्षेत्र में

1.5.4 शिक्षा के क्षेत्र में

1.5.5 पारिवारिक महत्व

1.5.6 सामाजिक महत्व

1.5.7 आर्थिक दृष्टि से महत्व

1.5.8 आध्यात्मिक क्षेत्र में महत्व

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारतीय चिन्तन में अनवरत आत्म ज्ञान तथा सत्य की खोज पर वैचारिक मन्थन परम्परागत होता रहा है। योग विद्या के माध्यम से वास्तव में आत्म तत्व का ज्ञान तथा यथार्थ से साधक अपने चरम लक्ष्य (समाधि) की प्राप्ति करता है। योग वस्तुत: प्राचीनतम आर्ष ग्रन्थों से निकला नवनीत है। हमारे ऋषि-मुनियों ने योग विद्या की विविध शाखाओं को मानव के कल्याण के लिए प्रतिपादित किया है। वेदों, उपनिषदों पुराणों दर्शन तथा टीका कालों में योग का प्रचलन कही न कही अवश्य था। प्रस्तुत इकाई में योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा योग के उद्देश्य व महत्व की चर्चा की जा रही है।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप

- योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण कर सकेंगे।
- वैदिक काल में योग के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- उपनिषद व दर्शन काल में योग के स्वरूप का विश्लेषण कर सकेंगे।
- आधुनिक काल में योग के स्वरूप का अध्ययन करेंगे।
- योग के महत्व को जान सकेंगे।

1.3 योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1.3.1 योग का उद्गम - योग का उद्गम कहॉ से हुआ यह कहना उचित होगा कि योग की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है, लेकिन यह योग की परम्परा कितनी प्राचीन है \ उसको किसने प्रारम्भ किया \ और कब किया \ इन सभी प्रश्नों का सीधा एक ही उत्तर देना शायद संभव नहीं है। परन्तु प्राचीन साहित्य में मिले उल्लेखों से ज्ञात होता है कि योग परम्परा को किसने प्रारम्भ किया है। जैसे गीता के चतुर्थ अध्याय के आरम्भ में श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं-

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।

विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।। 4/1

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।

स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप।। 4/2

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।। 4/3

अर्थात् हे अर्जुन, मैंने ही इस योग का उपदेश सृष्टि के आरम्भ में सूर्य देवता को दिया था, इसके पश्चात् सूर्य ने अपने पुत्र मनु को यह योग सिखाया, तथा मनु द्वारा यह योगविद्या इक्ष्वाकु को दी गयी और फिर एक राजर्षियों की लम्बी परम्परा चलती गयी और अन्त में वह योग लुप्त हो गया था जिसको आज मैंने पुनः तुम्हारे सामने प्रस्तुत किया है।

योग परम्परा के सम्बन्ध में इससे यह ज्ञात होता है कि भगवान् ने स्वयं सृष्टि के प्रारम्भ में इस परम्परा को प्रारम्भ किया था। परन्तु इस योग परम्परा के जन्म (उत्पत्ति) के समय को कितना समय या वर्ष हुए हैं, अभी यह कहना संभव नहीं है। हालांकि योग विद्या सृष्टि के प्रारम्भ से ही विद्यमान थी, इस मान्यता को और अधिक बल मिलता है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में कहा गया है-

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

अर्थात् हिरण्यगर्भ से ही सबसे पहले सृष्टि का निर्माण हुआ। उसी ने पृथ्वी, स्वर्ग आदि सभी को धारण किया। क्योंकि हिरण्यगर्भ को सभी विद्याओं एवं कलाओं का आदि प्रवर्तक माना जाता है। इसीलिए बृहद्योगियाज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है-

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।

अर्थात् 'हिरण्यगर्भ' ही योग के आदि प्रवक्ता है, अन्य कोई नहीं।

इसी प्रकार महाभारत में हिरण्यगर्भ को योग का उत्पत्तिकर्ता बताते हुए कहा गया है-

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते।

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।। महाभारत 12/349/65

अर्थात् सांख्य के वक्ता परमर्षि कपिल और योग के वक्ता हिरण्यगर्भ हैं। इन विषयों में इनसे प्राचीन व पुरातन वक्ता अन्य कोई नहीं है।

श्रीमद्भागवत् में कहा है-

'इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवान् जगाद यत्।। 5/19/13

अर्थात् हे योगेश्वर, वैदिक-योग का आदि प्रवक्ता हिरण्यगर्भ परमात्मा ही है।

हठयोग प्रदीपिका मे योग परम्परा की प्राचीनता के संबन्ध में कहा गया है-

श्रीआदिनाथाय नमोस्तु तस्मै येनोपदिष्टा। ह.प्र. 1/1

आदिनाथ अर्थात् भगवान् शिव ही योग के उपदेष्टा है।

प्रिय विद्यार्थियों उपरोक्त पृष्ठों को पढ़ने के बाद आप यह सरलता से समझ चुके होंगे कि हिरण्यगर्भ ही योग के आदि वक्ता है। हिरण्यगर्भ की ही योग का आदि प्रवर्तक माना जाता है। अत: अब निम्न प्रश्न आपके समक्ष अवश्य उत्पन्न हो रहे होगें कि

- योग के आदि वक्ता हिरण्यगर्भ कौन है ?
- हिरण्यगर्भ का अवतरण कब हुआ ?

अगले पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के बाद आप उपरोक्त प्रश्नों के उत्तरों को जानने में सक्षम हो जायेंगे।

जब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि हिरण्यगर्भ कौन है तो इस संबध में सात हिरण्यगर्भो का नाम सामने आता है तथा इन सात हिरण्यगर्भो में से कुछ हिरण्यगर्भो के नाम तत्वों के रूप में तथा कुछ ऐतिहासिक रूप में सामने आते है।

- **पहले हिरण्यगर्भ :-** सूर्य (सविता) देवता को पहला हिरण्यगर्भ कहा जाता है। सूर्य तत्व रूप में भी है और सूर्य नाम के एक ऐतिहासिक व्यक्ति भी रहे है। अगर हम सूर्य नामक व्यक्ति को (हिरण्यगर्भ) मानकर योग के आदि प्रवक्ता कहे तो महर्षि सूर्य द्वारा रचित कोई भी साहित्य उपलब्ध नहीं है। भलई स्वर्गीय पण्डित धरराज शास्त्री ने स्मृति संग्रह नामक ग्रन्थ में आचार्य सूर्य द्वारा रचित एक ग्रन्थ 'योगमार्तण्ड' है पर यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित ही नहीं है। इसलिए बिना ठोस प्रमाण के हम आचार्य सूर्य को योग का आदिवक्ता नहीं कह सकते है। अगर हम सूर्य नामक भौतिक तत्व को लें तो किसी काल में यह स्पष्ट नहीं हो सकता कि सविता देवता अर्थात सूर्य योग के आदि प्रवर्तक है।
- **दूसरे हिरण्यगर्भ :-** दूसरे हिरण्यगर्भ के रूप महत तत्व अर्थात बुद्धि को माना जाता है। भलई स्पष्ट है कि बुद्धि (महत) ही योग की आदि प्रवर्तक रही है। पर यह बुद्धि किस व्यक्ति की थी जिसने योग को प्रतिपादित किया। महाभारत में कहा है

  हिरण्यगर्भो भगवानेष बुद्धिरिति स्मृत

  उपरोक्त श्लोक में हिरण्यगर्भ बुद्धि तत्व को कहा गया है अगर बुद्धि तत्व है तो इस भौतिक तत्व का योग शास्त्र के साथ सम्बन्ध कैसे हो सकता है।
- **तीसरे हिरण्यगर्भ :-** तीसरे हिरण्यगर्भ के बारे में हमें अहिर्बध्न्युसंहिता में वर्णन मिलता है। कहा गया है कि ये एक अति प्राचीन सिद्ध योगी थे जिन्होंने दो योग संहिता की रचना की थी।

क. कर्मयोग संहिता

ख. निरोध संहिता

उपरोक्त 'निरोध संहिता' का नाम पढ़कर यह स्पष्ट हो रहा है, कि महर्षि पतंजलि ने ''चित्त वृत्ति निरोध:'' के लिए कुछ उपाय बताये पर योग सूत्र में महर्षि पतंजलि ने इस संहिता का कही उल्लेख नहीं किया है। अहिर्वध्न्युसंहिता से पहले श्रुति, स्मृति, ब्राह्मण, आरण्यक व पुराणों का काल रहा है और उपरोक्त ग्रन्थों में कही न कही योग का वर्णन मिलता है और अहिर्वध्न्युसंहिता इनके बाद कथित हिरण्यगर्भ को योग का आदि वक्ता मान लेना उचित होगा।

- **चौथे हिरण्यगर्भ :-** चौथे हिरण्यगर्भ का नाम 'योगशिखोपनिषद्' में स्पष्ट रूप से कहा गया है, कि ये हिरण्यगर्भ परम शिव जी का भक्त तथा परम शिष्य था। यदि यह सत्य है तो वह हिरण्यगर्भ निश्चित शैव रहे होंगे यह वात योग शिखोपनिषद में स्पष्ट हो जाती है। अगर इन्होंने कोई योग शास्त्र बनाया है तो उसका कोई प्रमाण मिलता। अत: इन्हें भी योग का आदि वक्ता नहीं मान सकते।
- **पांचवें हिरण्यगर्भ :-** पॉचवे हिरण्यगर्भ उत्तम नामक मन्वन्तर के ऊर्जा ऋषि के पिता के नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु वैदिक काल में इनका कोई सूक्त या मन्त्र नहीं है और योग को स्पष्ट करने वाली कोई कृति भी अभी तक प्रकाश में नहीं आई है।
- **छठे हिरण्यगर्भ :-** छठे हिरण्यगर्भ एक ऋषि कहे गये है जिनका अविर्भाव वैदिक काल में हुआ था तथा ये हिरण्यगर्भ प्रजापति के पुत्र बताये जाते है थे और इनके संबध में कहा गया है कि प्रजापति के आठ पुत्र व एक कन्या दक्षिणा नाम की हुई थी। इन्होंने कुल 127 मन्त्र दिये जिसमें ऋग्वेद के 10वें मण्डल में मिलता है। इन

सूक्तों का अध्ययन करे तो ज्ञात होता है कि मन्त्रों में सूक्ष्म रूप से योग को स्पष्ट किया है। अत: योग जो व्यापक है इसके आदिवक्ता इन्हें नहीं माना जा सकता है।

- **सातवें हिरण्यगर्भ :-** सातवें हिरण्यगर्भ प्रजापति परम परमेश्वर ब्रहमा जी को माना है। वस्तुत: ब्रहमा जी चारों वेदों के ज्ञाता कहे गये है। अगर मनु मानव जाति का पिता है तो ब्रहमा जी मानव जाति के पितामह है। ब्रहमसंहिता नामक योग का एक ग्रन्थ है जिसकी रचना ब्रहमा जी ने की है। वेदों में भी कई मन्त्र योग को स्पष्ट करते है और ब्रहमा जी इनके ज्ञाता रहे है अत: इन्हें योग के आदिवक्ता कहा जा सकता है।

  मुण्डकोपनिषद कहता है -
  ब्रहमा देवानां प्रथम : सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता मुण्डकोपनिषद 1।1।1

  देवताओं में सर्वप्रथम ब्रहमाजी ही हुए है जो कि विश्व के कर्ता है। सृष्टि के आदि कालिक देव होने के कारण तथा चारों वेदों के ज्ञाता होने के कारण हिरण्यगर्भ – (ब्रहमाजी) योगविद्या के आदिवक्ता कहे जा सकते है।

उपरोक्त पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के बाद आपको हिरण्यगर्भ नाम के भौतिक तत्व व ऐतिहासिक व्यक्तियों की जानकारी मिल गयी होगी। प्रिय विद्यार्थियों योग के आदि प्रवक्ता हिरण्यगर्भ जो भी ऐतिहासिक ऋषि रहे होगें पर इतना जरूर है कि वो हिरण्यगर्भ वास्तव में दूरदर्शी, वैज्ञानिक, तत्वदर्शी ऋषि होगें जिन्होंने योग जैसी सर्वकल्याणकारी विद्या हमें प्रदान की है तथा हिरण्यगर्भ ने जो योग हमें दिया वह बिखरा पड़ा था महर्षि पतंजलि ने इस बिखरे हुए योग के मोतियों को पिरोकर योग-सूत्र नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसलिए महर्षि पतंजलि को भी योग प्रणेता कहा जाना उचित होगा।

योग परम्परागत रूप से चला आ रहा है परन्तु मानव द्वारा इस योगविद्या का उपयोग कब आरम्भ किया, यह प्रश्न अभी भी बना हुआ है। इसलिए अलग-अलग कालों में योग के स्वरूप का अध्ययन करना उचित होगा।

1.3.2 वैदिक काल :- वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थों के रूप में जाने जाते हैं। माना जाता है कि प्राचीन समय में ऋषि मुनियों ने अपने योगबल एवं तपोबल के द्वारा ही ईश्वरीय ज्ञान को प्राप्त किया और उन्हें ग्रन्थबद्ध कर वेदों के रूप में प्रस्तुत किया। एक मान्यता यह भी है कि सृष्टि के आदि में वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थों के रूप में जाने जाते हैं। साथ ही यह माना जाता है कि प्राचीन समय में ऋषि मुनियों ने अपने योगबल एवं तपोबल के द्वारा ही ईश्वरीय ज्ञान को प्राप्त किया और उन्हें ग्रन्थबद्ध कर वेदों के रूप में प्रस्तुत किया। व एक मान्यता यह भी है कि सृष्टि के आदि में अग्नि, आदित्य, वायु तथा अंगिरा नाम के चार ऋषियों को यह ज्ञान परमात्मा ने उनके अन्तःकरण में प्रकट किया। इसी कारण वेद को अपौरुषेय भी कहा जाता है। इससे योग का सृष्टि के आदि में ही प्रकटीकरण सिद्ध होता है। मुख्य रूप से वेदों की संख्या चार है. ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। तथा वेदों में अनेक स्थानों पर स्पष्ट प्रमाण देखने को मिलते हैं। यद्यपि योग ग्रन्थों की तरह वेदों में योग का प्रत्यक्ष वर्णन तो कम ही उपलब्ध है। किन्तु वेदों में मुख्य रूप से योगविद्या को प्राण विद्याएं, ब्रह्मविद्या आदि नामों से कहा गया है।

वेदों में वर्णित ब्रह्मविद्या को विद्वानों ने योग विद्या का ही रूप माना है। ऋग्वेद में ब्रह्म स्वरूप परमपद को एक ऋचा में इस प्रकार बताया है-

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।

दिवीय चक्षुराततम्।। 1/11/20

योग साधना का परमलक्ष्य ब्रह्म की प्राप्ति तथा ब्रह्म का साक्षात् कहते हुए, वैदिक संहिताओं ने ब्रह्म को ही सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सच्चिदानन्दरूप, अनन्त, निर्विकार आदि माना है। ब्रह्म और योग में साम्यता को ऋग्वेद में बताते हुए कहा है-

ओम् खं ब्रह्म। 40/17

अर्थात् ओंकार स्वरूप ही ब्रह्म है।

वेद में कुछ प्रसंग ऐसे भी मिलते हैं जो शरीर में स्थित चक्र, प्राण शरीर आदि विषय पर प्रकाश डालते हैं। अथर्ववेद में मानव शरीर को आठ चक्र एवं नव द्वारों वाली देवताओं की अयोध्यापुरी कहा गया है-

'अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या'। अथर्व. 10/2/31

इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि वेदों में पर्याप्त रूप से योगचर्चा अलग-अलग स्थानों पर की गयी है। अतः हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार वेद भारत का प्राचीनतम ज्ञान है, उसी प्रकार योग भी भारत का प्राचीनतम ज्ञान है।

1.3.3 उपनिषद् काल- भारतीय आध्यात्मिक शास्त्रों में उपनिषदों का अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उपनिषद् भारतीय दर्शन शास्त्र का दर्पण व आध्यात्मिक विज्ञान के प्राणस्वरूप कहलाते हैं। उपनिषद् का अर्थ रहस्य व गुप्त उपदेश कहा गया है। हमारे ऋषि-मुनियों ने उपनिषदों में वर्णित योगविद्या व ब्रह्मविद्या को एक ही प्रकार का रहस्य माना है। उपनिषदों में योग विषयक ज्ञान पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलता है। हालांकि योगदर्शन की भांति उपनिषदों में योग ज्ञान क्रमिक एवं सुसम्बद्ध रूप में नहीं मिलता, फिर भी योगदर्शन की भांति उपनिषदों में योग का लक्ष्य आत्मदर्शन व समाधि ही बतलाया गया है।

संख्या की दृष्टि से उपनिषद् अनेक हैं। लेकिन मुख्य उपनिषद्- ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, बृहदारण्यक, छान्दोग्य, श्वेताश्वतरोपनिषद् माने गये हैं। कुछ उपनिषद् ऐसे भी हैं जिनमें केवल योगविषयक ही चर्चा की गयी है, वे इस प्रकार से हैं- अद्वयतारक, अमृतनाद, अमृतबिन्दु, मुक्तिक, तेजबिन्दु, त्रिशिखिब्राह्मण, ध्यान बिन्दु, नादबिन्दु, पाशुपतब्रह्म, ब्रह्मविद्या, वराह, शाण्डिल्य, हंस, योगकुण्डली, योगचूडामणि, योगतत्त्व, योगशिखोपनिषद् आदि। विभिन्न उपनिषदों में योग विषयक की ही चर्चा निम्न प्रकार से देखने को मिलती है-

कठोपनिषद कहता है

यदा प ंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।

बुद्धिश्चन विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्।।

तां योगमिति मन्यते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्।

अप्रमत्तस्तदा भवति योगो ही प्रभवाप्ययौ।। कठो. 2/3/10-11

अर्थात् जब पाँचों इन्द्रियां विषय से हटकर मन के साथ स्थिर हो जाती हैं एवं बुद्धि भी सभी प्रकार की चेष्टाओं से निवृत्त हो जाती है, उसी परमगति की स्थिति को योग कहते हैं।

- त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में योग दर्शन की तरह ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि की चर्चा यम के अन्तर्गत ही की गयी है-

  ''अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य दयार्जवम्।

  क्षमा धृतिमिताहारं शौचं चैव यमा दशाः।। (33)

- शाण्डिल्योपनिषद् (1/1) में आसनान्यष्टौ कहकर स्वस्तिकासन, पद्मासन, गोमुखासन, वीरासन, सिद्धासन, सिंहासन, भद्रासन तथा मयूरासन की परिभाषाएं दी गई हैं।

- छान्दोग्योपनिषद् में प्राण के महत्त्व को बताते हुए कहा है-

  ''सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति।''

  अर्थात् सभी भूत प्राण से ही उत्पन्न होते हैं तथा प्राणों में ही लीन होते हैं।

- इसी प्रकार जाबालदर्शनोपनिषद् में धारणा के विषय में बताया गया है कि-

  ''सर्वकारणमव्यक्तं निरुप्यचेतनम्, साक्षादात्मनि सम्पूर्णे धारयेत्प्राणनेन तु।। जाबाल0 (8/9)

  अर्थात् ज्ञान प्रसाद के द्वारा विशुद्ध सत्व होकर ध्यान करता हुआ आत्मा को देखे।

उपनिषदों में भी समाधि को योग का अंतिम अंग माना गया है। अतः हम कह सकते हैं कि उपनिषदों के काल में भी योग विद्या के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। उपनिषदों का पूर्णतः मनन करने पर ज्ञात होता है कि उपनिषदों में किसी न किसी रूप में योग का समर्थन किया गया है।

1.3.4 दर्शनों का काल - भारतीय दर्शन के न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त तथा जैन तथा बौद्ध आदि दार्शनिक सम्प्रदायों में योग का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। महर्षि पतंजलि के योगसूत्र को सूत्रबद्ध शैली में, इसी काल में लिखा गया तथा इस योग सूत्र को योग का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। पतंजलि के ग्रन्थारम्भ में कथन- 'अथ योगानुशासनम्। (यो.सू. 1/1) इसी ओर संकेत करता है। इसकाल में मुक्ति के सर्वोत्तम साधन के रूप में योग की अंतरंग साधना सभी पक्षों ने स्वीकार की है] योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने योग की वैज्ञानिकता व दर्शन को 195 सूत्रों में पिरोकर रखा है। महर्षि पतंजलि ने योग को चित्तवृति निरोध के रूप में परिभाषित किया है। तथा चित्त की पॉच वृतियॉ क्रमश: (प्रमाण,विपर्य, विकल्प निद्रा तथा स्मृति) बताई है और इन वृत्तियों के निरोध के लिए अभ्यास व वैराग्य नाम की दो साधनायें बताई है।

महर्षि पतंजलि ने उच्च कोटि के साधको के लिए अभ्यास व वैराग्य मध्यम के लिए क्रियायोग तथा अधम कोटि के साधको के लिए अष्टांग योग की चर्चा की है।

योग दर्शन के साथ अन्य दर्शनों में भी योग की चर्चा मिलती है। न्याय, वैशेषिक सांख्य मीमांसा, तथा वेदान्त – इन सभी दर्शनों में योग को किसी न किसी रूप में स्वीकार किया गया है। सांख्य तो योग का सैद्धान्तिक पक्ष कहलाता है। इसके बाद चौथी शताब्दी ईसवीं से टीका ग्रन्थों का काल आरम्भ हुआ।

1.3.5 टीकाकाल- चौथी शताब्दी के बाद दसवीं शताब्दी तक व्यासभाष्य तथा टीकाओं का काल जारी रहा। ऐसा माना जाता है कि योगसूत्र पर व्यासभाष्य की रचना चौथी शताब्दी में हुई। इसी काल में विज्ञानभिक्षु, वाचस्पति मिश्र, भोजदेव, नागोजी भट्ट आदि की टीकाएं लिखी गयी। इन टीकाओं में योग के सिद्धान्तों एवं मूलभूत मान्यताओं की विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है। यह समय भारत के इतिहास का उत्कृष्ण समय माना जाता है। इस काल में अनेक ग्रन्थ लिखे गये तथा विविध कला एवं विद्याओं का समुचित विकास हुआ।

1.3.6 भक्ति एवं हठयोग का उत्कर्ष काल:- यह काल लगभग 10वीं शताब्दी से 19 वीं शताब्दी तक माना जाता है। इस काल में भक्ति का विकास हुआ। इस काल के संत कबीर, तुलसी, आदि ने भक्ति की सगुण व निर्गुण मार्ग का प्रचार-प्रसार किया इस काल में नाथ सम्प्रदाय का भी प्रसार हुआ। हठयोग प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता आदि की रचना इसी काल में हुई। शारीरिक क्रियाओं द्वारा मन को वश में करना, इस काल में काफी प्रचलित था। तन्त्रग्रन्थों के माध्यम से भी योग का प्रचार-प्रसार साधकों में प्रचलित हुआ। इस काल में भारत पर इस्लाम एवं ईसाई धर्म के आक्रमणों के कारण अनेक आश्रमों, संस्थाओं, ग्रन्थों तथा परम्पराओं का पतन हुआ। समाज में अनेक अंधविश्वास, कुरीतियां तथा गलत धारणाएं, मान्यताएं फैल गयी थी।

1.3.7 आधुनिक काल - महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के माध्यम से सर्वप्रथम योग की भ्रान्त धारणाओं का खण्डन करके स्पष्ट दिशानिर्देश दिये। इनके पश्चात् स्वामी लक्ष्मणानन्द ने 'ध्यानयोग प्रकाश' में उनकी शिक्षा को प्रस्तुत किया। स्वामी रामकृष्ण परमहंस व उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने योग की परम्परा को आगे बढ़ाया। स्वामी शिवानन्द ने दिव्य जीवन संघ तथा स्वामी कुवलयानन्द जी ने कैवल्यधाम नामक संस्थाओं का निर्माण कर अनेकों शिष्यों को योग प्रशिक्षण प्रदान किया जिन्होंने देश-विदेशों में योग विद्या को वैज्ञानिक कसौटियों पर अनुसंधान करके योग को एक नयी दिशा प्रदान की। इसी प्रकार योगी श्यामाचरण लाहिड़ी तथा उनके शिष्य परमहंस योगानन्द द्वारा क्रियायोग विधि के माध्यम से योग का प्रचार-प्रसार किया गया। परमहंस योगानन्द ने योगदा सत्संग सोसाइटी के माध्यम से योग का प्रचार विदेशों तक किया। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने बिहार योग विद्यालय की स्थापना एवं स्वामी धीरेन्द्र ब्रह्मचारी द्वारा केन्द्रीय विद्यालयों तथा दिल्ली सरकार के विद्यालयों में योग शिक्षकों की नियुक्ति करवाकर सरकारी स्तर पर योग को अध्ययन-अध्यापन हेतु मान्यता दी गई। स्वामी रामदेव ने योग-प्राणायाम का चिकित्सीय पक्ष प्रस्तुत कर, पुनः योग को एक नयी पहचान दी है। श्रीरामशर्मा आचार्य जी ने शान्तिकुँज की स्थापना कर योग के ज्ञान व विज्ञान को ब्रहमवर्चस्व शोध संस्थान में प्रतिपादित किया है। भक्ति योग, कर्म योग, ज्ञानयोग, हठयोग, मन्त्रयोग, की विविध प्रक्रियाओं के साथ-साथ यज्ञ चिकित्सा पर अनेकानेक शोध व अनुसंधान शान्तिकुँज की ब्रहमवर्चस्व व देव संस्कृति विश्वविद्यालय में वर्तमान में हो रहे है। आज योग की विभिन्न विधियों के आधार पर योग की विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित हैं। अब योग विषय को अध्ययन-अध्यापन हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने स्वीकृति प्रदान कर दी है। अनेक संस्थान व विश्वविद्यालय योगशिक्षा में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, स्नातकोत्तर व पी-एच.डी. आदि पाठ्यक्रमों संचालन कर रहे हैं योग के प्रचार प्रसार में अनवरत चल रहे संस्थान वर्तमान में निम्नवत् है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, कैवल्यधाम, बिहार योग भारती, विवेकानन्द योग संस्थान, योग इंस्टीट्यूट सान्ताक्रुज-मुम्बई, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान दिल्ली, अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी, योगदा सत्संग सोसाइटी-रांची, पत॑जलि योगपीठ, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, गढ़वाल विश्वविद्यालय, कुमांऊ विश्वविद्यालय आदि।

अभ्यास प्रश्न :-

1. सत्य/असत्य बताइये

क. योग के आदि वक्ता हिरण्यगर्भ माने जाते है।

ख. सांख्य दर्शन के वक्ता महर्षि पतंजलि है।

2. बहुविकल्पीय प्रश्न

क. प्राचीन समय में कितने हिरण्यगर्भ के नामों की चर्चा हुई है।

अ. 4 ब. 6
स. 7 द. 9

ख. किस उपनिषद में चौथे हिरण्यगर्भ का नाम स्पष्ट होता है।

अ. योगशिखोषनिषद ब. तेजबिन्दु उपनिषद

स. अमृतनादोपनिषद द. कठोपनिषद

ग. चित्त की कितनी वृत्तियॉ है।

अ. 4 ब. 5

स. 6 द. 8

घ. श्यामाचरण लाहिड़ी के शिष्य कौन है ?

अ. सत्यानन्द सरस्वती ब. परमहंस योगानन्द

स. स्वामी शिवानन्द द. बाबा रामदेव

1.4 योग का उद्देश्य

सभी भारतीय दर्शनों के मुख्य प्रतिपाद्य विषय के रूप में- हेय, हेयहेतु, हान तथा हानोपाय- इस चतुर्व्यूहवाद का ही वर्णन किया गया है। योगदर्शन का भी यही अभिमत है। अतः अन्य दर्शनों की भाँति योगदर्शन का भी मुख्य उद्देश्य दुःख-निवृत्ति ही है। पतंजलि अपने योगसूत्र के आरम्भ में ही योग की पूर्णता की अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं- 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' अर्थात् योग सिद्ध हो जाने पर द्रष्टा (आत्मा) अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित हो जाता है। यह स्थिति दुःखों की सम्पूर्ण निवृत्ति के उपरान्त ही प्राप्त होती है। दुःखों का कारण चित्त की विभिन्न वृत्तियाँ ही हैं, जिनके कारण चित्त अस्वाभाविक अवस्था में बना रहता है तथा यथार्थ स्वरूप का ज्ञान कराने में असमर्थ रहता है।

चित्तवृत्तियों के मूल में अविद्यादि क्लेश उपस्थित होते हैं, जिसके फलस्वरूप चित्त में विभिन्न वृत्तियाँ बनी रहती हैं। इनके निवारण के उपायों के रूप में पतंजलि अभ्यास-वैराग्य, ईश्वर-प्रणिधान तथा क्रियायोग व अष्टांग योग का मुख्य रूप से वर्णन करते हैं। क्रियायोग का फल बताते हुए वे कहते हैं-

'समाधि भावनार्थःक्लेशतनूकरणार्थश्च'। योगसूत्र 2@2

अर्थात् क्लेशों को कमजोर करना ही क्रियायोग का मुख्य उद्देश्य है, जिससे समाधि की स्थिति प्राप्त हो सके। समाधि की उच्चतम स्थिति असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त हो जाने पर ही चित्त से क्लेशों की पूर्णरूप से निवृत्ति होती है। क्योंकि आगामी जन्म के कारणभूत चित्त में पूर्वजन्मों के संस्कार दग्धबीज होकर नष्ट हो जाते हैं। चित्त अपने मूलकारण प्रकृति में लीन हो जाता है तथा पुरुष के लिए कैवल्य का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। तभी आत्मा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है। उसी स्थिति को कैवल्य के नाम से जाना जाता है। आधुनिक समय में योग का उद्देश्य स्वयं स्वस्थ रहना, दूसरों को स्वास्थ्यलाभ कराना, धन-अर्जित करना, योग गुरु के नाम से यश प्राप्त करना आदि हो गए हैं किन्तु ये सभी गौण हैं। योग का मुख्य उद्देश्य स्वस्थ होना है। स्वस्थ शब्द के अर्थ पर विचार किया जाए तो स्वस्थ वही है जो स्व में स्थित है। आयुर्वेद शास्त्र का मन्तव्य भी यही है। पतंजलि भी जहाँ स्वरूपावस्थिति की बात करते हैं। तो उनका तात्पर्य भी स्व में स्थित होने से ही है। योग की भाषा में इसी को कैवल्य कहा जाता है। इस दृष्टि से यदि देखा जाये तो योग का मुख्य उद्देश्य कैवल्य प्राप्त करना ही है।

वास्तव में योग की वर्तमान में स्वास्थ्य लाभ के परिपेक्ष्य में लिया जाता है पर ऐसा नहीं है कि रोगी व्यक्ति को ही योगाभ्यास करना चाहिए योग तो स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करता है और बिमार व्यक्ति के रोग को दूर करता है।

जिज्ञासु पाठक योग के उद्देश्य को निम्न चित्र के आधार पर समझ सकते है।

1.5 योग का महत्व

प्राचीन काल में योग विद्या संन्यासियों या मोक्षमार्ग के साधकों के लिए ही समझी जाती थी तथा योगाभ्यास के लिए साधक को घर को त्याग कर वन में जाकर एकांत में वास करना होता था। इसी कारण योगसाधना को बहुत ही दुर्लभ माना जाता था। जिससे लोगों में यह धारणा बन गयी थी कि यह योग सामाजिक व्यक्तियों के लिए नहीं है। जिसके फलस्वरूप यह योगविद्या धीरे-धीरे लुप्त होती गयी। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से समाज में बढ़ते तनाव, चिन्ता, प्रतिस्पर्धा से ग्रस्त लोगों को इस गोपनीय योग से अनेकों लाभ प्राप्त हुए और योग विद्या एकबार पुनः समाज में लोकप्रिय होती गयी। आज भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्वभर में योगविद्या पर अनेक शोध कार्य किये जा रहे हैं और इससे लाभ प्राप्त हो रहे हैं। योग के इस प्रचार-प्रसार में विशेष बात यह रही कि यहां यह योग जितना मोक्षमार्ग के पथिक के लिये उपयोगी था, उतना ही साधारण मनुष्य के लिए भी महत्व रखता है। आज के आधुनिक एवं विकास के इस युग में योग अनेक क्षेत्रों में विशेष महत्व रखता है जिसका उल्लेख निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट किया जा रहा है-

1.5.1 स्वास्थ्य क्षेत्र में- वर्तमान समय में भारत ही नहीं अपितु विदेशों में भी योग का स्वास्थ्य के क्षेत्र में उपयोग किया जा रहा है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में योगाभ्यास पर हुए अनेक शोधों से आये सकारात्मक परिणामों से इस योग विद्या को पुनः एक नयी पहचान मिल चुकी है आज विश्व स्वास्थ्य संगठन भी इस बात को मान चुका है, कि वर्तमान में तेजी से फैल रहे मनोदैहिक रोगों में योगाभ्यास विशेष रूप से कारगर है। विश्व स्वास्थ्य संगठन का मानना है कि योग एक सुव्यवस्थित व वैज्ञानिक जीवन शैली है जिसे अपना कर अनेक प्रकार के प्राणघातक रोगों से बचा जा सकता है।

योगाभ्यास के अन्तर्गत आने वाले षट्कर्मों से व्यक्ति के शरीर में संचित विषैले पदार्थों का आसानी से निष्कासन हो जाता है। वहीं योगासन के अभ्यास से शरीर में लचीलापन बढ़ता है व नस-नाड़ियों में रक्त का संचार सुचारु होता है। प्राणायामों के करने से व्यक्ति के शरीर में प्राणिक शक्ति की वृद्धि होती है, साथ -साथ शरीर से पूर्ण कार्बनडाई-आक्साईड का निष्कासन होता है। इसके अतिरिक्त प्राणायाम के अभ्यास से मन में स्थिरता आती होती है, जिससे साधक को ध्यान करने में सहायता मिलती है । और जिससे साधक स्वस्थ मन व तन को प्राप्त कर सकता है।

1.5.2 रोगोपचार के क्षेत्र में- निःसंदेह आज के इस प्रतिस्पर्धा व विलासिता के युग में अनेक रोगों का जन्म हुआ है जिन पर योगाभ्यास से विशेष लाभ देखने को मिला है। सम्भवतः रोगों पर योग के इस सकारात्मक प्रभाव के कारण ही योग को पुनः प्रचार-प्रसार मिला। रोगों की चिकित्सा में योग के इस योगदान में विशेष बात यह है कि जहाँ एक ओर रोगों की एलोपैथी चिकित्सा में कई प्रकार के दुष्प्रभाव देखने को मिलते हैं, वहीं योग चिकित्सा से रोगी बिना किसी दुष्प्रभाव के लाभ प्राप्त करता है।

आज देश ही नहीं बल्कि विदेशों में अनेकों स्वास्थ्य से सम्बन्धित संस्थाएं योग चिकित्सा पर तरह-तरह के शोध कार्य कर रहीं हैं। आज योग द्वारा दमा, उच्च व निम्नरक्तचाप, हृदय रोग, संधिवात, मधुमेह, मोटापा, चिन्ता, अवसाद आदि रोगों का प्रभावी रूप से उपचार किया जा रहा है तथा अनेकों लोग इससे लाभान्वित हो रहे हैं। इन्टरनेट पर विविध रोगों पर हो रहे शोध व अनुसंधानों का अवलोकन किया जा सकता है।

1.5.3 खेलकूद के क्षेत्र में - योग अभ्यास का खेल कूद के क्षेत्र में भी अपना एक विशेष महत्व है। विभिन्न प्रकार के खेलों में खिलाड़ी अपनी कुशलता, क्षमता व योग्यता आदि बढ़ाने के लिए योग अभ्यास की सहायता लेते हैं। योगाभ्यास से जहाँ खिलाड़ी के तनाव के स्तर में कमी आती है, वहीं दूसरी ओर इससे खिलाड़ियों की एकाग्रता व बुद्धि तथा शारीरिक क्षमता भी बढ़ती है। क्रिकेट के खिलाड़ी बल्लेबाजी में एकाग्रता लाने, शरीर में लचीलापन बढ़ाने तथा शरीर की क्षमता

बढ़ाने के लिए रोजाना योगाभ्यास को समय देते हैं। यहाँ तक कि अब तो खिलाड़ियों के लिए सरकारी व्यय पर खेल-कूद में योग के प्रभावों पर भी अनेकों शोध हो चुके हैं जो कि खेल-कूद के क्षेत्र में योग के महत्त्व को सिद्ध करते हैं।

1.5.4 शिक्षा के क्षेत्र में - शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों पर बढ़ते तनाव को योगाभ्यास से कम किया जा रहा है। योगाभ्यास से बच्चों को शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक रूप से भी मजबूत बनाया जा रहा है। स्कूल व महाविद्यालयों में शारीरिक शिक्षा विषय में योग पढ़ाया जा रहा है। वहीं योग-ध्यान के अभ्यास द्वारा विद्यार्थियों में बढ़ते मानसिक तनाव को कम किया जा रहा है। साथ ही साथ इस अभ्यास से विद्यार्थियों की एकाग्रता व स्मृति शक्ति पर भी विशेष सकारात्मक प्रभाव देखे जा रहे हैं। आज कम्प्यूटर, मनोविज्ञान, प्रबन्धन विज्ञान के छात्र भी योग द्वारा तनाव पर नियन्त्रण करते हुए देखे जा सकते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में योग के बढ़ते प्रचलन का अन्य कारण इसका नैतिक जीवन पर सकारात्मक प्रभाव है, आजकल बच्चों में गिरते नैतिक मूल्यों को पुनः स्थापित करने के लिए योग का सहारा लिया जा रहा है। योग के अन्तर्गत आने वाले यम में दूसरों के साथ हमारे व्यवहार व कर्तव्य को सिखाया जाता है, वहीं नियम के अन्तर्गत बच्चों को स्वयं के अन्दर अनुशासन स्थापित करना सिखाया जा रहा है। विश्वभर के विद्वानों ने इस बात को माना है, कि योग के अभ्यास से शारीरिक व मानसिक ही नहीं बल्कि नैतिक विकास होता है। इसी कारण आज सरकारी व गैरसरकारी स्तर पर स्कूलों में योग विषय को अनिवार्य कर दिया गया है।

1.5.5 पारिवारिक महत्व- व्यक्ति का परिवार समाज की एक महत्त्वपूर्ण इकाई होती है तथा पारिवारिक संस्था व्यक्ति के विकास की नींव होती है। योगाभ्यास से आये अनेकों सकारात्मक परिणामों से यह भी ज्ञात हुआ है, कि यह विद्या व्यक्ति में पारिवारिक मूल्यों एवं मान्यताओं को भी जागृत करती है। योग के अभ्यास व इसके दर्शन से व्यक्ति में प्रेम, आत्मीयता, अपनत्व एवं सदाचार जैसे गुणों का विकास होता है और निःसंदेह ये गुण एक स्वस्थ परिवार की आधारशिला होते हैं।

वर्तमान में घटती संयुक्त परिवार प्रथा व बढ़ती एकल परिवार प्रथा ने अनेकों प्रकार की समस्याओं को जन्म दिया है आज परिवार का सदस्य संवेदनहीन, असहनशील, क्रोधी, स्वार्थी होता जा रहा है जिससे परिवार की धुरी धीरे-धीरे कमजोर होती जा रही है। लेकिन योगाभ्यास से इस प्रकार की दुष्प्रवृत्तियां स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं। भारतीय शास्त्रों में तो गृहस्थ जीवन को भी गृहस्थयोग की संज्ञा देकर जीवन में इसका विशेष महत्त्व बतलाया है। योग विद्या में निर्देशित अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान पारिवारिक वातावरण को सुसंस्कारित और समृद्ध बनाते हैं।

1.5.6 सामाजिक महत्व - इस बात में किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि एक स्वस्थ नागरिक से स्वस्थ परिवार बनता है तथा एक स्वस्थ व संस्कारित परिवार से एक आदर्श समाज की स्थापना होती है। इसीलिए समाजोत्थान में योग अभ्यास का सीधा प्रभाव देखा जा सकता है। सामाजिक गतिविधियाँ व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक दोनों पक्षों को प्रभावित करती हैं। सामान्यतः आज प्रतिस्पर्धा के इस युग में व्यक्ति विशेष पर सामाजिक गतिविधियों का नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। व्यक्ति धन कमाने व विलासिता के साधनों को संजोने के लिए हिंसक, आतंकी, अविश्वास व भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति को बिना किसी हिचकिचाहट के अपना रहा है। ऐसे यौगिक अभ्यास जैसे- कर्मयोग, हठयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, अष्टांग योग आदि साधन समाज को नयी रचनात्मक व शान्तिदायक दिशा प्रदान कर रहे हैं। कर्मयोग का सिद्धान्त तो पूर्ण सामाजिकता का ही आधार है "सभी सुखी हों, सभी निरोगी हों" इसी उद्देश्य के साथ योग समाज को एक नयी दिशा प्रदान कर रहा है।

1.5.7 आर्थिक दृष्टि से महत्व- प्रत्यक्ष रूप से देखने पर योग का आर्थिक दृष्टि से महत्व गौण नजर आता हो लेकिन सूक्ष्म रूप से देखने पर ज्ञात होता है कि मानव जीवन में आर्थिक स्तर और योग विद्या का सीधा संबन्ध है। शास्त्रों में वर्णित "पहला सुख निरोगी काया, बाद में इसके धन और माया" के आधारपर योग विशेषज्ञों ने पहला धन निरोगी शरीर को माना

है। एक स्वस्थ व्यक्ति जहाँ अपने आय के साधनों का विकास कर सकता है, वहीं अधिक परिश्रम से व्यक्ति अपनी प्रतिव्यक्ति आय को भी बढ़ा सकता है। जबकि दूसरी तरफ शरीर में किसी प्रकार का रोग न होने के कारण व्यक्ति का औषधियों व उपचार पर होने वाला व्यय भी नहीं होता है। योगाभ्यास से व्यक्ति में एकाग्रता की वृद्धि होने के साथ-साथ उसकी कार्यक्षमता का भी विकास होता है। आजकल तो योगाभ्यास के अन्तर्गत आने वाले साधन आसन, प्राणायाम, ध्यान द्वारा बडे-बड़े उद्योगपति व फिल्म जगत के प्रसिद्ध लोग अपनी कार्य क्षमता को बढ़ाते हुए देखे जा सकते हैं। योग जहाँ एक ओर इस प्रकार से आर्थिक दृष्टि से अपना एक विशेष महत्व रखता है, वहीं दूसरी ओर योग क्षेत्र में काम करने वाले योग प्रशिक्षक भी योग विद्या से धन लाभ अर्जित कर रहे हैं। आज देश ही नहीं विदेशों में भी अनेकों योगकेन्द्र चल रहे हैं जिनमें शुल्क लेकर योग सिखाया जा रहा है। साथ ही साथ प्रत्येक वर्ष विदेशों से सैकड़ों सैलानी भारत आकर योग प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं जिससे आर्थिक जगत् को विशेष लाभ पहुँच रहा है।

1.5.8 आध्यात्मिक क्षेत्र में महत्व - प्राचीन काल से ही योग विद्या का प्रयोग आध्यात्मिक विकास के लिए किया जाता रहा है। योग का एकमात्र उद्देश्य आत्मा-परमात्मा के मिलन द्वारा समाधि की अवस्था को प्राप्त करना है। इसी अर्थ को जानकर कई साधक योगसाधना द्वारा मोक्ष, मुक्ति के मार्ग को प्राप्त करते हैं। योग के अन्तर्गत यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि को साधक चरणबद्ध तरीके से पार करता हुआ कैवल्य को प्राप्त कर जाता है।

प्रिय विद्यार्थियों आप समझ गये होगें कि योग वास्तव में एक वैज्ञानिक जीवन शैली है, जिसका हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष पर गहराई से प्रभाव पड़ता है। इसी कारण से योग विद्या सीमित तौर पर संन्यासियों की या योगियों की विद्या न रह कर, पूरे समाज तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिए आदर्श पद्धति बन चुकी है। आज योग एक सुव्यवस्थित व वैज्ञानिक जीवन शैली के रूप में प्रमाणित हो चुका है। प्रत्येक मनुष्य अपने स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए, रोगों के उपचार हेतु, अपनी कार्यक्षमता को बढ़ाने, तनाव-प्रबन्धन, मनोदैहिक रोगों के उपचार आदि में योग पद्धति को अपनाते हुए देखा जा रहा है। प्रतिदिन टेलीविजन कार्यक्रमों में बढ़ती योग की मांग इस बात को प्रमाणित करती है कि योग वर्तमान जीवन में एक अभिन्न अंग बन चुका है। जिसका कोई दूसरा पर्याय नहीं है। योग की लोकप्रियता और महत्व के विषय में हजारों वर्ष पूर्व ही योगशिखोपनिषद् में कहा गया है-

योगात्परतरंपुण्यं योगात्परतरं शिवम्।
योगात्परतरंशक्तिं योगात्परतरं न हि।।

अर्थात् योग के समान कोई पुण्य नहीं, योग के समान कोई कल्याणकारी नहीं, योग के समान कोई शक्ति नहीं और योग से बढ़कर कुछ भी नहीं है। वास्तव में योग ही जीवन का सबसे बड़ा आश्रय है।

1.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ गये होंगे कि योग के आदि प्रवर्तक हिरण्यगर्भ रहे है भलई यह स्पष्ट नहीं है कि हिरण्यगर्भ कौन थे पर योग जैसी विद्या जिस महर्षि ने दी होगी वह दूरदर्शी ऋषि ने वर्तमान समसामयिक संकटों के निवारण में हमें एक योग रूपी उपहार दिया है। जिसके अनेकानेक महत्वों को आत्मसात् कर सहृदय जिज्ञासु पाठक एवं जन सामान्य समाज में इस परम्परागत विद्या को फैलाकर आनन्द (कैवल्य) की प्राप्ति भी कर सकता है। चूँकि योग की अन्तिम पराकाष्ठा मोक्ष की प्राप्ति ही है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि उद्देश्य व महत्व को सहज रूप से समझकर इस प्राचीनतम विद्या के फलों से स्वयं व समाज में इस विद्या की सही-सही अनुभूति को अभिव्यक्त कर सकेंगे।

1.7 शब्दावली

आर्ष :- प्राचीनतम प्रमाणिक ग्रन्थों के लिए प्रयुक्त शब्द
नवनीत :- मक्खन
पुरातन :- प्राचीन, पुराना
हठ-प्रदीपिका – हठयोग का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ जिसे स्वात्माराम जी ने लिखा है।
तपोबल- तप से प्राप्त बल
सविता – सूर्य देवता
महत तत्व – बुद्धि
आरण्यक - जंगलों में लिखे साहित्य
काया – शरीर
घेरण्ड संहिता – हठयोग की एक प्राचीनतम पुस्तक जिसे महर्षि घेरण्ड ने प्रतिपादित किया।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क. सत्य ख. असत्य

2. क. स ख. अ
   ग. ब घ. ब

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. योगांक – गीताप्रेस गोरखपुर

2. स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती – योग विज्ञान (सं-2007) योग निकेतन ट्रस्ट, ऋषिकेश

3. श्रीरामशर्मा आचार्य – साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान (सं0-1998) अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा

4. डॉ0 कामाख्या कुमार – योग महाविज्ञान (सं0 2007) स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स, नई दिल्ली

10. निबंधात्मक प्रश्न

1. योग के इतिहास पर प्रकाश डालिये ?

2. योग के महत्व को विस्तार से समझाइये ?

3. वैदिक काल तथा उपनिषदों के काल में योग के विकास की तुलनात्मक व्याख्या कीजिए।

4. आधुनिक काल में योग के विकास क्रम की सुदीर्घ व्याख्या कीजिए।

इकाई 2- योग का अर्थ व परिभाषायें

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 योग शब्द का अर्थ

2.4 योग की परिभाषाएं

2.4.1 वेदों के अनुसार

2.4.2 उपनिषदों के अनुसार

2.4.3 पुराणों के अनुसार

2.4.4 योग सूत्र के अनुसार

2.4.5 भगवत गीता के अनुसार

2.4.6 योग वाशिष्ठ के अनुसार

2.4.7 जैन दर्शन के अनुसार

2.4.8 बौद्ध दर्शन के अनुसार

2.4.9 योग की अन्य परिभाषायें

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उद्देश्य तथा योग के महत्व का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में योग शब्द के अर्थ को आप संस्कृत व्याकरण के अनुसार समझ सकेंगे तथा योग की विविध परिभाषाओं का भी अध्ययन करेंगे। योग वस्तुत: वास्तव में बड़ा गूढ शब्द है। कुछ लोग योग को आसनों व प्राणायाम के परिपेक्ष्य में लेते है वास्तव में ऐसा नहीं है आसन व प्राणायाम योग के अंग है। प्रस्तुत इकाई में आप योग शब्द के अर्थ व परिभाषाओं को प्राचीन आर्ष ग्रन्थों तथा विविध विद्वानों के मतानुसार योग का सम्यक विश्लेषण कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन कर लेने के बाद आप

- योग के वास्तविक अर्थ को जान सकेंगे।
- समझा सकेगें कि वेदों में योग का क्या स्वरूप है।
- उपनिषदों में वर्णित योग को स्वरूप का विश्लेषण कर सकेंगे।
- पुराणों के अनुसार योग को परिभाषित कर सकेगें।
- महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योग की परिभाषा का अवलोकन करेंगे।
- जैन व बौद्ध दर्शन के अनुसार योग के स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।
- योग के विषय में विविध चिन्तकों, विद्वानों तथा अनेकानेक ग्रन्थों की परिभाषाओं को श्रेणीबद्ध कर सकेगें।

2.3 योग शब्द का अर्थ

प्रिय विद्यार्थियों योग के नाम से आप सब परिचित होंगे अक्सर देखा गया है कि अनेकानेक विद्यार्थियों तथा आम लोगों के मन में निम्न प्रश्नों को जानने की उत्सुकता रहती है।

- योग क्या है ?
- योग शब्द संस्कृत व्याकरण के किस धातु से बना है ?
- योग की परिभाषाएं वेदों में क्या है ?
- योग को उपनिषदों व पुराणों में कैसे परिभाषित किया है ?
- क्या गीता में भी योग का वर्णन मिलता है ?
- योग दर्शन में योग का क्या स्वरूप है ?
- क्या जैन व बौद्ध दर्शन में भी योग का वर्णन है ?

अगले पृष्ठों को अध्ययन कर लेने के बाद आप निश्चित उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जान लेने में सक्षम हो जायेगे।

योग एक गूढ एवं जटिल शब्द है। संस्कृत व्याकरण का अगर अवलोकन करे तो योग शब्द युज् समाधौ धातु से बना है। पाणिनी के अनुसार तीन युज धातु है।

क. युज् समाधों – दिवादिगणीय

दिवादिगणीय युज् धातु का अर्थ है समाधि। युज् का अर्थ है जुड़ना अर्थात समाधि की प्राप्ति के लिए जो भी साधनायें बताई गयी है साधक उन साधनाओं की ओर जुड़े। चूँकि पहले की इकाई को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि योग बढ़ा व्यापक शब्द है। योग की अनेकानेक साधनाओं की चर्चा प्राचीनतम आर्ष ग्रन्थों में मिलती है। जो भी साधनायें समाधि की सिद्धि करें साधक उन्हीं साधनाओं को आत्मसात् करें यह योग का पहला अर्थ है।

ख. युजिर योगे – रूधादिगणीय

रूधादिगणीय युज धातु का अर्थ है, जोड़ना, मिलाना, मेल करना।

सृष्टि की समस्त वस्तुए जुड़ कर ही बनी हैं जितने भी भौतिक पदार्थ हमें दिखाई देते है वो सब जुड़कर (योग) के प्रतिफल है। गणितशास्त्र का अध्ययन करे तो पूरी गिनती जुड़कर ही होती है जैसे

1+1 = 2 9+9 = 18

अगर आपने रसायन शास्त्र का अध्ययन किया होगा तो पानी का सूत्र है H_2O अर्थात 2 अणु हाइड्रोजन व एक अणु ऑक्सीजन के मिलकर जल (H_2O) बनाती है यह योग का प्रतिफल है।

ग. युज् संयमने – चुरादिगणीय

चुरादिगणीय युज् धातु का अर्थ स्पष्ट है – युज् अर्थात जुड़ना संयम अर्थात मन को वश में करने की विद्या। मन को वश में करने की विद्या वास्तव में योग ही है और साधक को चाहिए कि वह उस विद्या को आत्मसात् करे। महर्षि पतंजलि ने धारणा, ध्यान व समाधि के योग को संयम कहा है।

वास्तव में संस्कृत व्याकरण के आधार पर 'योग' शब्द की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से की जा सकती है-

1. युज्यते एतद् इति योगः - इस व्युत्पत्ति के अनुसार कर्मकारक में योग शब्द का अर्थ चित्त की वह अवस्था है जब चित्त की समस्त वृत्तियों में एकाग्रता आ जाती है। यहाँ पर 'योग' शब्द का अर्थ उद्देश्य में प्रयोग हुआ है।

2. युज्यते अनेन इति योगः - इस व्युत्पत्ति के अनुसार करण कारक में योग शब्द का अर्थ वह साधन है जिससे समस्त चित्तवृत्तियों में एकाग्रता लाई जाती है। यहाँ 'योग' शब्द साधनार्थ प्रयुक्त हुआ है। इसी आधार पर योग के विभिन्न साधनों को जैसे हठ, मंत्र, भक्ति, ज्ञान, कर्म आदि को हठयोग, मंत्रयोग, भक्ति योग, ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि के नाम से पुकारा जाता है।

युज्यतेऽस्मिन् इति योगः - इस व्युत्पत्ति के अनुसार योग शब्द का अर्थ वह स्थान है जहाँ चित्त की वृत्तियों की एकाग्रता उत्पन्न की जाती है। अतः यहाँ पर अधिकरण कारक की प्रधानता है। योग क्या है इस विषय पर स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती ने योग विज्ञान नामक पुस्तक में योग की सुदीर्ध व्याख्या इस प्रकार की है।

1. यम नियम आदि योग के अंगों का निष्ठापूर्वक सतत अभ्यास करते हुए अन्तिम असम्प्रज्ञात समाधि के द्वारा विशुद्ध स्वरूपास्वरूपावस्थिति को प्राप्त कर लेना योग है।

2. योग समाधि की पराकाष्ठा पर पहुँचकर आत्मदर्शन पूर्वक स्वरूपस्थिति यानी आत्मस्थिति अवस्था को प्राप्त कर लेना योग है।

3. ध्यान परायण तथा समाधिनिष्ठ होकर स्थूल और सूक्ष्म अतीन्द्रिय तत्वों का योग दृष्टि के द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन करते हुए अन्त में चैतन्य स्वरूप आत्मा के स्तर तक लेना योग है।

4. आध्यात्मिक योग-साधना के द्वारा दैहिक तथा आत्मिक सर्वागीण विकास धारा के साथ-साथ आत्मस्फूर्ति को पा लेना, यही योग हैं।

5. योगनिष्ठ होकर योगी, दीर्घकाल तक योगाभ्यास करता हुआ समाधिलब्धं प्रत्यक्षात्मक आत्मज्ञान के परिणाम स्वरूप पूर्ण रूपेण ब्राही स्थिति को प्राप्त करके जीते जी जीवन्मुक्त बन जाना ही योग है।

6. भू-लोक, अन्तरिक्ष लोक द्यु-लोक में स्थित निखिल तत्व समूहों को योगदृष्टि यानी समाधि दृष्टि के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में साक्षात्कार करते हुए, उन तत्वों को लॉघते हुए अतिक्रमण करते हुए सर्वतो भवेन ब्रहास्वरूप में स्थिति प्राप्त कर लेना ही योग है।

2.4 योग की परिभाषाएँ

भारतीय चिन्तन पद्धति व दर्शन में योग विद्या का स्थान सर्वोपरि एवं अति महत्वपूर्ण तथा विशिष्ट रहा है। भारतीय ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर योग विद्या से सम्बन्धित ज्ञान भरा पड़ा है। वेदों उपनिषदों, पुराणों, गीता आदि प्राचीन व प्रमाणिक ग्रन्थों में योग शब्द वर्णित है। योग की विविध परिभाषाऐं का आपके अवलकोनार्थ प्रस्तुत है।

2.4.1 वेदों के अनुसार :- वेदों में ज्ञान व विज्ञान की धाराये विद्यमान है वेदों का वास्तविक उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना तथा आध्यात्मिक उन्नति करना है। योग को स्पष्ट करते हुए ऋग्वेद में कहा है।

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन्।

स धीनां योगमिनवति योगमिन्वति।। ऋग्वेद 1/18/7)

अर्थात विद्वानों का कोई भी कर्म बिना योग के पूर्ण अर्थात सिद्ध नहीं होता।

1. सद्वा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम्

गमद् वाजेगिरा स न: ॥
ऋ01/5/3 साम0 30/2/10 अथर्व 20/29/9

अर्थात वह अद्वितीय सर्वशक्तिमान अखण्ड आनन्द परिपूर्ण सत्य सनातन परमतत्व हमारी समाधि की स्थिति में दर्शन देने के निमित्त अभिमुख हो।

योगे-योगे तवस्तरं वाजे-वाजे हवामहे।

सखाय इन्द्र भूतये।। शुक्ल यजु0 11/14

अर्थात हम सखा (साधक) प्रत्येक योग अर्थात समाधि की प्राप्ति के लिए तथा हर परेशानी में परम ऐश्वर्यवान इन्द्र का आह्वान करते है।

वेदों में हठयोग के अंगों का वर्णन भी मिलता है।

अष्टचक्र नवद्वारा देवानां पूरयोधया

तस्यां हिरण्यमय: कोश: स्वर्गो ज्योतिषावृत: अथर्ववेद - 10/1/31

अर्थात आठ चक्रो, नव द्वारों से युक्त हमारा यह शरीर वास्तव में देवनगरी है। इसमें हिरण्यमय कोश है जो ज्योति व असीम आनन्द से युक्त है। वास्तव में यह असीम आनन्द की प्राप्ति योग से ही सम्भव है। संक्षेप में कहे तो योग का वर्णन वेदों में बिखरा पड़ा हुआ है तथा आत्मकल्याण ही इसका प्रतिपाद्य विषय है।

2.4.2 उपनिषदों में योग :- उपनिषद जिन्हें वेदान्त भी कहा जाता है इनकी कुल संख्या 108 बताई गई है। अनेकानेक उपनिषदों के अनुसार योग का विवेचन इस प्रकार है।

- योगशिखोपनिषद के अनुसार :-

  यो·पान प्राणयोर्ऐक्यं स्थरजो रेतसोस्तथा।

  सूर्य चन्द्रमसोर्योगाद् जीवात्म परत्मात्मनो।।
  एवं तु द्वन्द्व जालस्य संयोगों योग उच्चते।।

अर्थात्, प्राण और अपान की एकता सतरजरुपी कुण्डलिनी की शक्ति और स्वरेत रुपी आत्मतत्व का मिलन, सूर्य स्वर व चन्द्रस्वर का मिलन एवं जीवात्मा व परमात्मा का मिलन योग है।

- योग शिखोपनिषद में योग के प्रकारो की चर्चा करते कहा है –

  मन्त्रो लयो हठो राजयोगान्ता भूमिका: क्रमात्।
  एक एव चतुधाड्य महायोगाउभिधीयते।।

अर्थात् , मंत्र योग, लययोग, हठयोग और राजयोग ये चारों जो यथाक्रम चार भूमिकाएं हैं। चारों मिलकर यह एक ही चतुर्विध योग है। जिसे महायोग कहते है। उपनिषदों में मोक्षप्राप्ति के लिये ज्ञान के साथ-साथ योग को भी आवश्यक माना गया है।

- श्वेताश्वतर उपनिषद के अनुसार

  न तस्य रोगो न जरा न मृत्यु

  प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।। (2/22)

अर्थात्, योग की अग्नि से बना हुआ शरीर जिसे प्राप्त होता है उसे कोई रोग नहीं होता है न उसके बुढ़ापा आता है और मृत्यु भी नहीं होती है।

- अमृतनादोपनिषद के अनुसार :-

  प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामौन्थ धारणा।
  तर्कश्चैव समाधिश्व षडंगोयोग उच्यते।।

  अर्थात्, प्रत्याहार धारणा,प्राणायाम, तर्क और समाधि यह षडंग योग कहलाता है। अन्य एक उपनिषद में आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के छ: अंग बताये गए हैं।

- श्वेताश्वतर उपनिषद योग के फलों को स्पष्ट कर कहती है।

  लघुत्वमारोग्यं मलोलुपत्वं

  वर्ण प्रसादं स्वर सौष्ठवं च।

  गन्धा: शुभो मूत्रपुरीषमल्यं

  योग प्रवृत्रिं प्रथमा वदन्ति।। (2/13)

  अर्थात्, योग सिद्ध हो जाने पर शरीर हल्का हो जाता है। शरीर निरोगी हो जाता है, विषयों के प्रति राग नहीं रहता। नेत्रों को आकर्षित करने वाली शरीर को कांति प्राप्ति हो जाती है। अर्थात् योगी का शरीर आकर्षक हो जाता हैं। उसका स्वर मधुर हो जाता है, शरीर से दिव्य गंध आती है। शरीर में मलमूत्र की कमी हो जाती हैं।

- कठोपनिषद के अनुसार -

  मैत्रायण्युपनिषद् में कहा गया है-

  एकत्वं प्राणमनसोरिन्द्रियाणां तथैव च।

  सर्वभाव परित्यागो योग इत्यभिधीयते।। 6@25

  अर्थात् प्राण, मन व इन्द्रियों का एक हो जाना, एकाग्रावस्था को प्राप्त कर लेना, बाह्य विषयों से विमुख होकर इन्द्रियों का मन में और मन का आत्मा में लग जाना, प्राण का निश्चल हो जाना योग है।

- योगशिखोपनिषद् में कहा गया है-

  योऽपानप्राणयोरैक्यं स्थरजोरेतसोस्तथा।

  सूर्याचन्द्रमसोर्योगोद् जीवात्मपरमात्मनोः।

  एवं तु द्वन्द्व जालस्य संयोगो योग उच्यते।। 1@68&69

अर्थात् अपान और प्राण की एकता कर लेना, स्वरज रूपी महाशक्ति कुण्डलिनी को स्वरेत रूपी आत्मतत्त्व के साथ संयुक्त करना, सूर्य अर्थात् पिंगला और चन्द्र अर्थात् इड़ा स्वर का संयोग करना तथा परमात्मा से जीवात्मा का मिलन योग है।

2.4.3 पुराणों के अनुसार :- पुराणों की संख्या 18 बताई गयी है। अनेकानेक पुराणों में योग के संकेत मिले है।

- अग्निपुराण के अनुसार

  ब्रहमप्रकाशकं ज्ञानं योगस्थ त्रैचिन्तता।

  चित्तवृत्तिनिरोधश्च: जीवब्रह्मात्मनो: पर:।।

  अग्निपुराण 183।1-2

  अर्थात ब्रहम में चित्त की एकाग्रता ही योग है।

- **नारद पुराण के अनुसार :-** नारद पुराण में अष्टांग योग का वर्णन मिलता है। योग सूत्र में यम के 5 भेद है पर नारद पुराण में क्रमश: (अहिंसा,सत्य,अस्तेय,ब्रहमचर्य,अपरिग्रह, अक्रोधा अनुसूया) 7 भेद यमो के बताये है।

- **मत्स्य पुराण के अनुसार:-** मत्स्य पुराण का कर्मयोग मुख्य प्रतिपाद्य विषय है कहा गया है कि कर्मयोग से ही परम पद (समाधि) की सिद्धि होती है।

- **ब्रहम पुराण के अनुसार :-** ब्रहम पुराण में बताया गया है कि शीत व उष्णता में कमी भी योग का अभ्यास नहीं करना चाहिए। जलाशय के समीप जीर्ण घर में, चौराहो पर, सरीसृपो के निकट तथा श्मशान में योग की साधना नहीं करनी चाहिए।

- **स्कन्ध पुराण के अनुसार :-** स्कन्ध पुराण में किया- योग का विस्तृत वर्णन किया है। वासुदेव भगवान (विष्णु) का पूजन क्रिया-योग बताया है।

- **लिग पुराण में बताया है :-** योगो निरोधों वृत्तेषु चित्तस्य द्विजसताय:।

  साधनान्यपटधा चास्य कथितानीह सिद्धये।।

  अर्थात् चिन्त की वृतियों के विरोध को ही योग कहा जाता है।

2.4.4 योग सूत्र के अनुसार :- योग सूत्र जो महर्षि पतंजलि ने प्रतिपादित किया है इसमें चार पाद है। समाधि पाद, साधना पाद, विभूति पाद तथा कैवल्य पाद।

योग सूत्र के प्रणेता महर्षि पतंजलि ने योग को परिभाषित करते हुए कहा है-

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' ;ks-lw-1@2

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही योग है। चित्त का तात्पर्य, अन्तःकरण से है। बाह्यकरण ज्ञानेन्द्रियां जब विषयों का ग्रहण करती हैं, मन उस ज्ञान को आत्मा तक पहुँचाता है। आत्मा साक्षी भाव से देखता है। बुद्धि व अहंकार विषय का निश्चय करके उसमें कर्तव्य भाव लाते हैं। इस सम्पूर्ण क्रिया से चित्त में जो प्रतिबिम्ब बनता है, वही वृत्ति कहलाता है। यह चित्त का परिणाम है। चित्त दर्पण के समान है। अतः विषय उसमें आकर प्रतिबिम्बित होता है अर्थात् चित्त विषयाकार हो जाता है। इस चित्त को विषयाकार होने से रोकना ही योग है।

योग के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करते हुए महर्षि पत´जलि ने आगे कहा है-

'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।। 1@3

अर्थात् योग की स्थिति में साधक (पुरुष) की चित्तवृत्ति निरुद्धकाल में, कैवल्य अवस्था की भाँति चेतनमात्र (शुद्ध परमात्म) स्वरूप में स्थित होती है। इसीलिए यहाँ महर्षि पतंजलि ने योग को दो प्रकार से बताया है-

1. सम्प्रज्ञात योग

2. असम्प्रज्ञात योग

सम्प्रज्ञात योग में तमोगुण गौणतम रूप से नाम मात्र रहता है। तथा पुरुष के चित्त में विवेक-ख्याति का अभ्यास रहता है। असम्प्रज्ञात योग में सत्व चित्त में बाहर से तीनों गुणों का परिणाम होना बन्द हो जाता है तथा पुरुष शुद्ध कैवल्य परमात्मस्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

2.4.5 भगवत गीता के अनुसार :- भगवतगीता में जिज्ञासु शिष्य अर्जुन को स्वयं भगवान योगेश्वर श्रीकृष्ण ने योग की शिक्षा दी है-

- श्रीमदभगवद्गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने कुछ इस प्रकार से परिभाषित किया है-

योगस्थः कुरु कर्माणि संगत्यक्त्वा धनउजयः।

सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। 2/48

अर्थात् - हे धन´जय! तू आसक्ति त्यागकर समत्व भाव से कार्य कर। सिद्धि और असिद्धि में समता- बुद्धि से कार्य करना ही योग है। सुख-दुःख, जय-पराजय, हानि-लाभ, शीतोष्ण आदि द्वन्दों में एकरस रहना योग है।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृत-दुष्कृते।

तस्माद्योगाय युजस्व योगः कर्मसुकौशलम्।। 2/50

अर्थात् कर्मों में कुशलता ही योग है। कर्म इस कुशलता से किया जाए कि कर्म बन्धन न कर सके। अर्थात् अनासक्त भाव से कर्म करना ही योग है। क्योंकि अनासक्त भाव से किया गया कर्म संस्कार उत्पन्न न करने का कारण भावी जन्मादि का कारण नहीं बनता। कर्मों में कुशलता का अर्थ फल की इच्छा न रखते हुए कर्म का करना ही कर्मयोग है।

2.4.6 योग वाशिष्ठ के अनुसार:- योग वाशिष्ठ नामक ग्रन्थ की रचना महर्षि वाशिष्ठ ने की है तथा इस ग्रन्थ में महर्षि वाशिष्ठ ने श्रीरामचन्द्र जी योग के आध्यात्मिक विधाओं को सरलता से समझाया है। योग वाशिष्ठ को महारामायण के नाम से भी जाना जाता है। योग वाशिष्ठ कहता है कि संसार सागर से पर होने की युक्ति का नाम योग है।

2.4.7 जैन दर्शन के अनुसार:- योग की परिभाषा देते हुए जैन आचार्य यज्ञोविजय अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ द्वात्रिशिका में कहते है –

''मोक्षेण योजनादेव योगो ह्त्र निरूध्यते''

द्वात्रिशिका (10-1)

जिन-जिन साधनों से आत्मा की शुद्धि और मोक्ष का योग होता है। अर्थात योग के जिन-जिन साधनों से आत्म तत्व की शुद्धि होती है वही साधन योग है।

योग साधना के लिए जैन मत में महाव्रतो की वात भी की है जो क्रमश: अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह है। इनमें भी अहिंसा को बल दिया है। प्रिय विद्यार्थियों आपने अगर जैन आचार्यो को देखा होगा तो वो मुँह में सफेद कपड़ा बांधकर चलते है ताकि कोई भी छोटे-छोटे विषाणुओं की हिंसा ना हो सके। स्मरण रहे उपरोक्त पांचो महाव्रत योग के महत्वपूर्ण भाग अष्टांग योग के यम् है। उपरोक्त के अतिरिक्त जैन आचार्यो ने 10 धर्मो का पालन बताया है।

1. क्षमा 2. मृदुला 3. सरलता 4. शौच 5. सत्य 6. सयंम 7. त्याग 8. औदासिन्य 9. ब्रहमचर्य 10. अहिंसा

आप विचार कीजिए की उपरोक्त साधन वास्तव में योगियों के महत्वपूर्ण अंग परम्परागत समय से रहे है।

उपरोक्त तथ्यों व तर्को से स्पष्ट हो गया होगा कि योग का वर्णन कही ना कही जैन दर्शन में मिलता है।

2.4.8 बौद्ध दर्शन के अनुसार :- बौद्ध दर्शन को नास्तिक दर्शन माना जाता है परन्तु बौद्ध दर्शन में निर्वाण प्राप्ति की चर्चा की है ओर इस निर्वाण प्राप्ति के लिए कुछ उपाय बौद्ध आचार्यो ने बताये है। निर्वाण, समाधि का ही पर्यायवाची शब्द है। योग में जिसे हम समाधि कहते है महर्षि पंतजलि ने उसे कैवल्य नाम दिया जैनियों ने मुक्ति कहा, हिन्दुओं ने मोक्ष। नाम अनेक है पर अर्थ एक ही स्पष्ट होता है कि इस निर्वाण (समाधि) की प्राप्ति करना ही योग है। और इसके 8 मार्ग बताये गये है।

1. सम्यक दृष्टि :- हमारी चार आर्य सत्यो, दु:खों, दुख का कारण, दु:ख नाश व दु:ख नाश के लिए सम्यक दृष्टि रहे।

2. सम्यक संकल्प :- अनात्म पदार्थो को त्यागने के लिए संकल्प लें।

3. सम्यक वाक :- अच्छा बोले, अनुचित वचनों का त्याग करें।

4. सम्यक कर्म :- सम्यक कर्म का अर्थ है अच्छे कर्म करे जिसमें पूरा कर्मयोग आता है।

5. सम्यक आजीव :- न्यायपूर्वक, धर्मानुसार अपनी आजीविका चलाये।

6. सम्यक व्यायाम :- अर्थात बुराइयो को नष्ट कर अच्छे कर्मो के लिए प्रयत्नशील रहना सम्यक व्यायाम है।

7. सम्यक स्मृति :- काम, क्रोध, मोह, लोभ से सम्बन्धित अनात्म वस्तुओं का स्मरण ना करे।

8. स्म्यक् समाधि :- समाधि अर्थात मन को वश में कर चित्त को आत्मकल्यार्ण के लिए एकाग्र करें।

इस प्रकार हम देखते है कि बौद्ध दर्शन की समानता योग के महत्वपूर्ण ग्रन्थ योग दर्शन से मिलती है तथा योग दर्शन का भी प्रतिपाद्य विषय कैवल्य (समाधि) की प्राप्ति है जिसे बौद्ध आचार्य निर्वाण कहते है।

2.4.9 योग की अन्य परिभाषायें :- जिज्ञासु पाठको अभी तक आपने विविध ग्रन्थों तथा भारतीय चिन्तन में योग की परिभाषाओं व स्वरूप को आत्मसात् किया है। अब कुछ अन्य परिभाषाओं व स्वरूप को आपके अवलोकनार्थ इस उद्देश्य से प्रस्तुत है कि आप इन परिभाषाओं तथा पूर्व में वर्णित योग के विविध आयामो को अवश्य अपने जीवन में उतारेंगे।

1. महर्षि व्यास के अनुसार :- योग: समाधि: योग को समाधि बतलाया है।

2. श्रीगुरूग्रन्थ साहिब के अनुसार :- निष्काम कर्म करने में सच्चे धर्म का पालन है यही वास्तविक योग है। परमात्मा के शाश्वत और अखण्ड ज्योति के साथ अपनी ज्योति को मिला देना वास्तविक योग है।

3. महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार :- जीवात्मा व परमात्मा के संयोग की अवस्था का नाम योग है।

4. श्रीरामशर्मा आचार्य के अनुसार :- जीवन जीने की कला ही योग है।

5. शंकराचार्य जी के अनुसार :- ब्रहम को सत्य मानते हुए और इस संसार के प्रति मिथ्या दृष्टि रखना ही योग है कहा गया है – ''ब्रहमसत्यं जगत्मिथ्या''

6. रागेय राघव के अनुसार :- शिव और शक्ति का मिलन योग है। उपरोक्त विविध परिभाषाओं के अवलोकन के उपरान्त कहा जा सकता है –

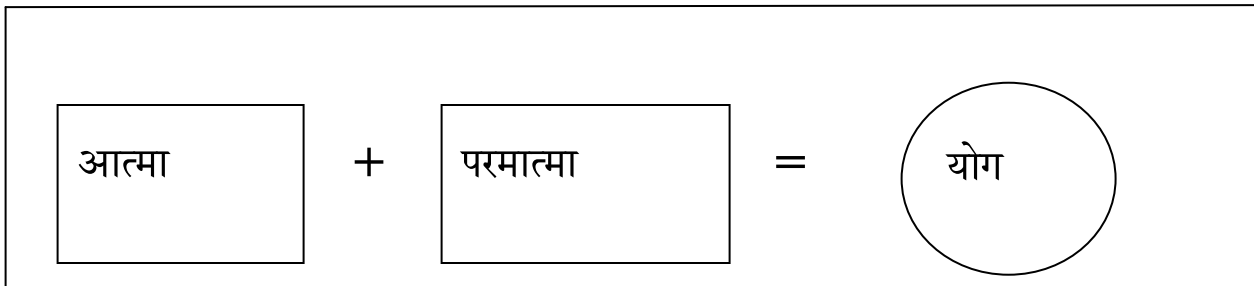

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. रिक्त स्थान भरिए :-

क. योग शब्द.....धातु से बना है।

ख. संस्कृत व्याकरण के अनुसार युज धातु के.....अर्थ है।

ग. मत्स्य पुराण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय.....है।

2. सत्य/असत्य बताइये।

क. वेदों में योग का वर्णन मिलता है।	सत्य/असत्य
ख. महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र की रचना की है।	सत्य/असत्य
ग. योग आत्म कल्याण का प्रतिपाद्य विषय नहीं है।	सत्य/असत्य
घ. आसन, प्राणायाम ही योग है।	सत्य/असत्य

3. बहुविकल्पीय प्रश्न

क. योग शब्द संस्कृत व्याकरण के किस धातु रूप में प्रयुक्त होता है।

अ. युजिर योंगे ब. युज् संयमने

स. युज समाधो द. उपरोक्त तीनो

ख. धारणा, ध्यान व समाधि का सम्मिलित रूप है।

अ. संयम ब. क्रियायोग

स. अष्टांग योग द. कैवल्य

ग. योगे-योगे तवस्तरं वाजे-वाजे, हवामहे, उक्त मन्त्र है :-

अ. शुक्ल यजुर्वेद का ब. कृष्ण यजुर्वेद का

स. ऋग्वेद का द. भगवतगीता का

घ. योग- कर्मसु कौशलम् यह श्लोक लिया गया है

अ. योगसूत्र से ब. योगवाशिष्ट से

स. उपनिषदों से द. गीता से

ड. किसने कहा है शिव और शक्ति का मिलन योग है -

अ. रागेय राघव ब. श्रीरामशर्मा आचार्य

स. शंकराचार्य द. महर्षि व्यास

2.5 सारांश

योग शब्द संस्कृत व्याकरण के युज धातु से बना है जिसका अर्थ है जुड़ना। समाधि की प्राप्ति के लिए जो भी विद्याये भारतीय चिन्तन में बताई गई हैं उन साधनाओं के ओर साधक अग्रसरित होना ही योग है। योग को जहॉ महर्षि पतंजलि ने चित्तवृत्ति निरोध के रूप में परिभाषित किया है तो वही दूसरी ओर भगवत गीता में योग को कर्मो की कुशलता के रूप में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने योग की महिमा का ज्ञान किया है। वेदों, उपनिषदों व पुराणों में भी योग को एक महत्वपूर्ण अंग माना है। जैन तथा बौद्ध दर्शन में भी क्रमश: मुक्ति व निर्वाण प्राप्ति के लिए इस परम्परागत विद्या की उपयोगिता को स्वीकार किया है। योग वास्तव में जीवन के अभीष्ठ (समाधि) की प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण सौपान है।

2.6 शब्दावली

सम्यक – ठीक,सही, सीधा

युज - जुड़ना, जोड़ना

सृष्टि – संसार, जगत्

योगागों – योग के अंगों के लिए प्रयुक्त शब्द

सतत् – निरन्तर, लगातार

अतीन्द्रिय – जिसकी इन्द्रियों पर नियंत्रण हो। इन्द्रियों से डरें।

चैतन्य – चेतना युक्त, परमेश्वर

भू-लोक – पृथ्वी

आठ चक्र – मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, बिन्दु, सहस्रार

देवनगरी – देवताओं का नगर

कुण्डलिनी – मूलाधार चक्र के समीप सोई हुई, सुप्त शक्ति

राग – चाह, सुख के प्रति रहने वाली एक अवस्था
परम पद – अर्थात योग की उच्च अवस्था या समाधि

निर्वाण – कैवल्य, समाधि, मुक्ति, मोक्ष

अनात्म – नष्ट होने वाली जैसे मानव शरीर, समस्त भौतिक पदार्थ

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क. युज् ख. तीन ग. कर्म योग
2. क. सत्य ख. सत्य ग. असत्य घ. असत्य

3. क. द ख. अ ग. अ घ. द ड. अ

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती – योग विज्ञान (2003)

सरस्वती स्वामी विज्ञानानन्द

योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति ऋषिकेष

2. डा0 कामाख्या कुमार – योग महाविज्ञान

कुमार डॉ0 कामाख्या

स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स, नई दिल्ली

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. योग के अर्थ को स्पष्ट करते हुए वेदों में योग विद्या का वर्णन कीजिए।

2. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

अ. उपनिषदों में योग ब. पुराणों में योग

स. भगवत् गीता में योग घ. योग वशिष्ठ में योग

3. जैन व बौद्ध दर्शन में वर्णित योग साधना की तुलनात्मक व्याख्या कीजिए।

इकाई 3:- यौगिक ग्रन्थों का सामान्य परिचय : योगसूत्र, श्रीमदभगवद् गीता, हठयोग प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 योगसूत्र का सामान्य परिचय

3.3.1 समाधिपाद

3.3.2 साधनपाद

3.3.3 विभूतिपाद

3.3.4 कैवल्यपाद

अभ्यास प्रश्न

3.4 श्रीमदभगवत गीता का सामान्य परिचय

3.4.1 अर्जुनविषाद योग

3.4.2 सांख्य योग

3.4.3 कर्मयोग

3.4.4 ज्ञानकर्म सन्यास योग

3.4.5 कर्मसन्यास योग

3.4.6 आत्मसंयम योग

3.4.7 ज्ञानविज्ञान योग

3.4.8 अक्षरब्रहम योग

3.4.9 राजविद्या राजगुह्य योग

3.4.10 विभूतियोग

3.4.11 विश्वस्वरूपदर्शन योग

3.4.12 भक्तियोग

3.4.13 क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ योग

3.4.14 गुणत्रय-विभाग योग

3.4.15 पुरूषोतम योग

3.4.16 दैवासुरसम्पद्भिभाग योग

3.4.17 श्रद्धात्रय विभाग योग

3.4.18 मोक्ष सन्यास योग

अभ्यास प्रश्न

3.5 हठयोग प्रदीपिका का सामान्य परिचय

3.5.1 आसन

3.5.2 प्राणायाम

3.5.3 मुद्रा एवं बन्ध

3.5.4 नादानुसंधान

अभ्यास प्रश्न

3.6 घेरण्ड संहिता का सामान्य परिचय

3.6.1 षटकर्म

3.6.2 आसन

3.6.3 मुदा व बन्ध

3.6.4 प्रत्याहार

3.6.5 प्राणायाम

3.6.6 ध्यान

3.6.7 समाधि

अभ्यास प्रश्न

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने योग की अर्थ व विविध परिभाषाओं का अध्ययन किया। हमारे समस्त प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में योग का वर्णन कही न कही अवश्य मिलता है। जहॉ एक ओर महार्षि पतंजलि ने योग सूत्र नामक पुस्तक में योग के विविध आयामों को सुस्पष्ट किया है वही दूसरी ओर भगवान श्रीकृष्ण ने भगवत गीता में योग की महिमा का ज्ञान स्वयं आने श्रीमुख से किया है। योग की अनेकानेक शाखाये भी है जिसमें हठयोग के महत्वपूर्ण ग्रन्थों हठप्रदीपिका तथा घेरण्ड संहिता में यौगिक अभ्यासों का वर्णन बड़े सरल-सरस व प्रभावपूर्ण तरीके से किया गया है। प्रस्तुत इकाई में योगसूत्र, भगवदगीता, हठयोगप्रदीपिका तथा घेरण्ड संहिता का सामान्य परिचय आपके सम्यक विश्लेषण के लिए किया जा रहा है।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- जान सकेंगे कि योग सूत्र के वर्ण्य विषय क्या है।
- भगवत गीता के 18 अध्याओं की विषयवस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे।
- हठयोग के प्रमुख ग्रन्थ हठप्रदीपिका के चारों अध्याओं की विषयवस्तु को जान सकेंगे।
- घेरण्ड संहिता नामक पुस्तक में वर्णित हठयोग की क्रियाओं का अध्ययन करेंगे।

जिज्ञासु पाठको तथा आम नागरिकों के समक्ष अक्सर योग विषयक प्रश्नों को जानने की इच्छा रहती है –

- योग सूत्र में कौन सी साधनाओं का वर्णन है ?
- भगवतगीता के 18 अध्याओं की विषयवस्तु क्या है ?
- आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध तथा षटकर्मो का वर्णन कौन सी पुस्तक में मिलता है ?
- क्या हठयोग में भी समाधि का वर्णन मिलता है ?
- नादानुसंधान क्या है ?

अगले पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के बाद आप उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जान सकेंगे –

3.3 योगसूत्र का सामान्य परिचय

महर्षि पतंजलि प्रणीत यह ग्रन्थ योग का प्रामाणिक आधारग्रन्थ कहलाता है। इससे पूर्व योग के तत्वों का एक जगह पर संकलन देखने को नहीं मिलता। योग की जो परम्परा सृष्टि के आदि काल से चली आ रही थीं, उसमें अनेक साधकों ने विभिन्न साधनाओं को सम्मिलित कर लिया था। महर्षि पतंजलि के समय भी वे साधनाएं विद्यमान थी जिनका

संकेत उनके द्वारा योगसूत्र में कर दिया गया है। मुख्य रूप से योग की साधना का वास्तविक स्वरूप प्रकट करना उनका उद्देश्य रहा है।

इस ग्रन्थ में चार अध्याय हैं जिन्हें समाधिपाद, साधनपाद] विभूतिपाद और कैवल्यपाद नाम दिया गया है। समाधिपाद में **51]** साधनपाद में **55]** विभूतिपाद में **55** तथा कैवल्यपाद में **34** सूत्र हैं। इस प्रकार कुल **195** सूत्रों का सृजन करके योगविद्या को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है। विविध पादो की विषयवस्तु का आपके अवलोकनार्थ वर्णन इस प्रकार है।

(क) समाधिपाद- इस पाद में 'अथ योगानुशासनम्' सूत्र से ग्रन्थ का प्रारम्भ किया गया है। अथ शब्द मंगलवाची तथा आरम्भवाची है। जिसके द्वारा लक्षण, भेद, उपाय तथा फल सहित शिक्षा दी जाए, वह अनुशासन कहलाता है। अतः इस सूत्र के माध्यम से परमेश्वर से सूत्रकार प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि 'मैं योग का लक्षण, भेद, उपाय तथा फलसहित वर्णन कर रहा हूँ, यह मेरा कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो।' योग का अर्थ चित्तवृत्ति निरोध के द्वारा दृष्टा की निजस्वरूप में प्रतिष्ठा होना बताया गया है। यह एक लम्बी प्रक्रिया है जिसके अधिकारी अलग-अलग स्थिति के साधक हैं। पूर्वजन्म में साधना कर चुके साधक जिन्हें समाधि प्राप्त नहीं हुयी वे पुनर्जन्म में उत्तम अधिकारी बनकर शीघ्र समाधि लाभ करें, उनके लिए उक्त प्रथम समाधिपाद का वर्णन किया गया है।

समाधिपाद में योग से कैवल्य या स्वरूपावस्थान के लक्ष्य को भी प्रकट कर दिया गया है। पांच प्रकार की चित्तवृत्तियों का वर्णन करके चित्त के निरोधोपाय के रूप में अभ्यास-वैराग्य की महत्ता बताई गई है। यही अभ्यास और वैराग्य की साधना राजयोग की साधना कहलाती है।

प्रमाण के तीन भेद- प्रत्यक्ष, अनुमान व आगम का वर्णन किया गया है। अभ्यास को दृढ़ करने के उपाय, वैराग्य की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेदों- वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत तथा अस्मितानुगत- का विस्तार से वर्णन किया गया है। परवैराग्य की अवस्था तथा इनके द्वारा प्राप्त होने वाली असम्प्रज्ञात समाधि को लक्ष्य कहा गया है। भवप्रत्यय समाधि विदेह तथा प्रकृतिलयों को प्राप्त होती है, अन्य के लिए उपाय प्रत्यय है जिसके साधन- श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा कहे गए हैं। तीव्र संवेग से शीघ्र समाधि लाभ होने तथा समाधिलाभ के उपाय रूप में ईश्वरप्रणिधान का उल्लेख किया गया है। ईश्वर का स्वरूप जिसमें अन्य पुरुषों से उसकी भिन्नता कही गई है, बताया गया है-

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। ;ks-lw- 1@24

ईश्वर-प्रणिधान के विशेष फल प्रत्तय चेतना का साक्षात्कार तथा अन्तरायों के अभाव का कथन किया गया है। ईश्वर-प्रणिधान से जीवात्मा तथा ईश्वर दोनों का साक्षात्कार सम्भव है। इसी को भक्तियोग के रूप में कहा जा सकता है। साधना के विघ्नों- व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व तथा अनवस्थितत्व के अतिरिक्त इन अन्तरायों के सहभुवः- दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास और प्रश्वास का वर्णन करके इनके निराकरण का दूसरा उपाय **'एकतत्वाभ्यास'** कहा गया है।

चित्त को समाहित करने के लिए चित्त की निर्मलता आवश्यक है। इस निर्मलता की प्राप्ति हेतु मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा की भावनाओं को धारण करना चाहिए-

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्। ;ks-lw-1@33

अर्थात् चित्त को सदैव प्रसन्न रखने के लिए उपाय रूप में सुखी व्यक्तियों को देखकर उनसे मित्रता का भाव, दुःखी के प्रति करुणा का भाव, पुण्यशाली के प्रति प्रसन्नता का भाव तथा पापी को देखकर उसकी उपेक्षा करने के भाव से चित्त में समरसता बनी रहती है तथा उद्वेग नहीं होता। प्राणायाम, विषयवती प्रवृत्ति, विशोका या ज्योतिष्मती प्रवृत्ति, वीतराग चित्त, स्वप्न तथा निद्रा, यथाभिमत ध्यान आदि के माध्यम से चित्त की एकाग्रता होने का वर्णन है। ऐसे एकाग्र चित्त में समापत्ति हो जाती है जो चार प्रकार की है- सवितर्का, निर्वितर्का, सविचार व निर्विचार। इनसे बुद्धि में प्रसन्नता तथा निर्मलता रूपी अध्यात्म प्रसाद ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है जिससे विवकेख्याति का उदय होने पर निर्बीज समाधि की भूमि तैयार हो जाती है। विवेकख्याति का निरोध हो जाने पर असम्प्रज्ञात या निर्बीज समाधि सिद्ध हो जाती है। यहाँ तक समाधिपाद का लक्ष्य 'असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति का उपाय' उत्तम अधिकारियों के लिए कहा गया है।

(ख) साधन पाद- साधनपाद मध्यम अधिकारियों के लिए साधना की विधि से प्रारम्भ होता है। तप, स्वाध्याय व ईश्वर-प्रणिधान रूप क्रियायोग को समाधि की प्राप्ति तथा क्लेशों को कमजोर करने के लिए उपाय के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पाँच क्लेशों- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश के स्वरूप का वर्णन तथा क्लेशों के कारण बनने वाले कर्माशय के फलस्वरूप जाति, आयु व भोग प्राप्त होने का उल्लेख किया गया है। परिणाम, ताप व संस्कार दुःखों का वर्णन, दुःखरूप जगत् का व्याख्यान करके हेय, हेयहेतु, हान तथा हानोपाय रूपी चतुर्व्यूह का वर्णन किया गया है। दृश्य, (प्रकृति) का स्वरूप तथा प्रयोजन निम्नलिखित सूत्र द्वारा प्रकट किया गया है-

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्। योगसूत्र 2@18

अर्थात् प्रकाश, क्रिया और स्थिति जिसका स्वभाव है, भूत और इन्द्रिय जिसका स्वरूप हैं, भोग तथा अपवर्ग जिसका प्रयोजन हैं, वह दृश्य है। सत्व, रजस् व तमस् गुण तथा इनसे जो भी बना है, वह दृश्य है। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, एक मन तथा पाँच महाभूत- इन **16** तत्वो को विशेष कहा गया है। पाँच तन्मात्रा तथा एक अहंकार को अविशेष, महत्व को लिंगमात्र तथा मूलप्रकृति को अलिंग कहा है। द्रष्टा देखने की शक्तिमात्र है। वह निर्विकार होते हुए भी चित्त की वृत्तियों के अनुसार देखता है। अविद्या के कारण द्रष्टा व दृश्य का संयोग होता है, जो दुःख का कारण है। विवकेख्याति द्वारा द्रष्टा व दृश्य का यथार्थ ज्ञान होने से कैवल्य की उपलब्धि होती है। योगांगों यमनियमादि के अनुष्ठान से अशुद्धि का नाश होने के कारण ज्ञान का प्रकाश विवकेख्याति पर्यन्त हो जाता है। यहाँ नवीन साधक या अधम साधकों के लिए अष्टांगयोग का वर्णन किया गया है जिसके प्रथम अंगों को बहिरंग कहा है तथा साधनपाद में यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार तक पाँच अंगों का वर्णन किया गया है तथा धारणा, ध्यान व समाधि को अंतरंग कहा गया है –

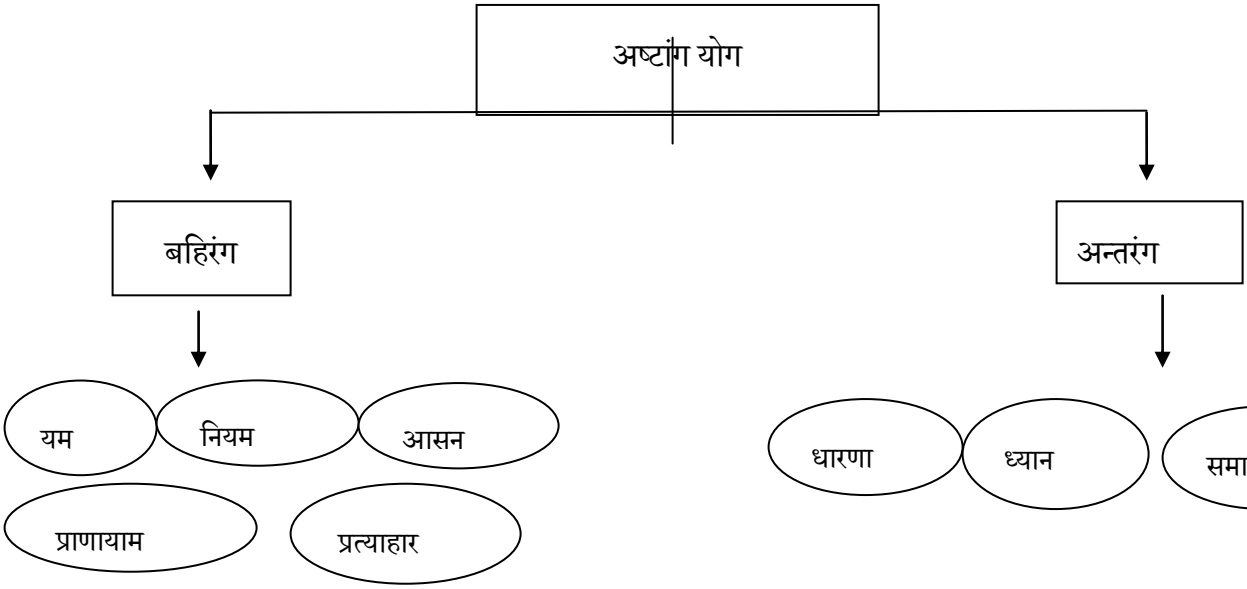

(ग) विभूतिपाद- विभूतिपाद का प्रारम्भ धारणा, ध्यान और समाधि के लक्षणों द्वारा होता है। इन तीनों के एक ही स्थान पर होने को संयम कहा है। संयम के सिद्ध होने पर समाधि प्रज्ञा का प्रकाश होता है। चित्त के निरोधपरिणाम, समाधिपरिणाम व एकाग्रता परिणाम की चर्चा की गई है। भूत व इन्द्रियों के धर्म, लक्षण व अवस्था परिणाम पर प्रकाश डाला गया है। इसके पश्चात् संयमजन्य विभूतियों का वर्णन किया गया है, जो निम्नप्रकार कही गई हैं-

1. अतीतानागतज्ञान, **2**. सर्वभूतरुतज्ञान, **3**. पूर्वजातिज्ञान, **4**. परचित्तज्ञान, **5**. अन्तर्धान, **6**. अपरान्तज्ञान, **7**. मैत्रयादिबलप्राप्ति, **8**. हस्त्यादिबलप्राप्ति, **9**. सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञान, **10**. भुवनज्ञान, **11**. ताराव्यूहज्ञान, **12**. तारागतिज्ञान, **13**. कायव्यूहज्ञान, **14**. क्षुत्पिपासानिवृत्ति, **15**. स्थिरता, **16**. सिद्धदर्शन, **17**. त्रैकालिक पदार्थज्ञान, **18**. चित्तसंवित्, **19**. पुरुषज्ञान, **20**. प्रातिभज्ञान, **21**. श्रावणज्ञान, **22**. वेदनाज्ञान, **23**. आदर्शज्ञान, **24**. आस्वादज्ञान, **25**. वार्ताज्ञान, **26**. परकायप्रवेश, **27**. जल, पंक तथा कण्टक के ऊपर स्वच्छन्द गमन, **28**. ऊर्ध्वलोकगमन, **29**. ज्वलन, **30**. दिव्य श्रोत्र, **31**. आकाशगमन, **32**. प्रकाशावरणक्षय, **33**. भूतजय, **34**. अणिमा, **35**. लघिमा, **36**. महिमा, **37**. गरिमा, **38**. प्राप्ति, **39**. प्राकाम्य, **40**. ईशित्व, **41**. वशित्व, **42**. कायसम्पत्, **43**. अभिघाताभाव, **44**. इन्द्रियजय, **45**. मनोजवित्व **46**. विकरणभाव, **47**. प्रधानजय, **48**. सर्वाधिष्ठातृत्व, **49**. सर्वज्ञत्व।

(घ) कैवल्यपाद- इस पाद में कहा है कि संयमजन्य सिद्धियों के अतिरिक्त जन्म, औषधि, मन्त्र, तप और समाधि द्वारा भी सिद्धियाँ होती हैं। तप आदि के द्वारा जैसे जैसे तामसिक व राजसिक वृत्तियों का नाश तथा सत्व का प्रकाश होता है तो वैसे-वैसे साधक में भक्ति-संचरण होता जाता है। इस प्रकार वह पूर्व की अपेक्षा अधिक शक्ति सम्पन्न हो जाता है। समाधि या ध्यान से उत्पन्न होने वाला चित्त वासना रहित होने के कारण श्रेष्ठ कहा गया है। कर्म के चार प्रकार बताए हैं- शुक्ल (पुण्य) कृष्ण (पाप) शुक्ल-कृष्ण (पुण्य-पाप) तथा अशुक्लाकृष्ण (पुण्य पाप रहित) । प्रथम तीन सामान्य मनुष्य के हैं तथा चतुर्थ

प्रकार के कर्म योगी के हैं। इन्हें ही अनासक्त कर्म कहा गया है। प्रथम तीन प्रकार के कर्मों के कारण ही वासनाएं चित्त में एकत्र होती हैं तथा उन्हीं के फल-भोग हेतु जन्म लेना पड़ता है। ये वासनाएं हेतु, फल, आश्रय व आलम्बन पर आधारित हैं। इनका हेतु अविद्या आदि क्लेश तथा सकाम तीनों प्रकार के कर्म, इनका फल जाति, आयु तथा भोग, वासनाओं का आश्रय चित्त तथा आलम्बन इन्द्रियों के विषय कहे गए हैं। इससे आगे पुरुष व चित्त में भेद बताकर पुरुष के स्वरूप को समाधि द्वारा जानने का वर्णन किया गया है। विवेकज्ञान होने पर साधक का चित्त कैवल्य की ओर गति करने वाला होता है किन्तु कभी-कभी पूर्वजन्म के संस्कारवश ऐसे चित्त में भी व्युत्थान की वृत्तियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। उनकी निवृत्ति क्लेशों की तरह कही गई है- 'हानमेषां क्लेशवदुक्तम्'। विवेकख्याति या प्रसंख्यान ज्ञान से भी विरक्त होकर योगी में निरन्तर विवेकख्याति का प्रवाह होने को धर्ममेघ समाधि कहा गया है। यह विवेकख्याति की परिपक्व अवस्था है। इसकी पराकाष्ठा ज्ञानप्रसाद नामी परवैराग्य को कहा गया है जिसका फल असम्प्रज्ञात समाधि है। जिसमें संस्कार दग्धबीज हो कर क्लेश-कर्म की निवृत्ति हो जाती है। इस समय ज्ञान का प्रकाश इतना अधिक होता है कि जानने योग्य कुछ शेष नहीं बचता। गुणों के परिणाम क्रम की समाप्ति हो जाती है। गुणों की प्रवृत्ति पुरूष के भोग व मोक्ष के लिए होती है। जब तक ये दोनों लक्ष्य पूर्ण नहीं होते तब तक शरीर इन्द्रियों आदि के क्रम को चलाते हैं। मोक्ष की स्थिति प्राप्त होने से परिणामक्रम टूट जाता है तथा पुरुषार्थ शून्य गुणों का अपने कारण (मूलप्रकृति) में प्रतिप्रसव हो जाता है, यही कैवल्य है या पुरुष की निज स्वरूप में प्रतिष्ठा कही जाती है-

'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।';ks-lw-1@3

यही योगसूत्र का प्रतिपाद्य विषय है।

अभ्यास प्रश्न

1. रिक्त स्थान भरिए –

क. योगसूत्र के रचनाकार.....है।
ख. योगसूत्र में कुल..... पाद है।

ग. समाधिपाद में सूत्रों की संख्या.....है।

घ. संयम के सिद्ध हो जाने पर .....का प्रकाश होता है।

2. सत्य/असत्य बताइये

क. योगसूत्र में सूत्रों की संख्या 295 है। सत्य/असत्य

ख. अष्टंगयोग का वर्णन योगसूत्र में नहीं है। सत्य/असत्य

ग. षटकर्म योगसूत्र के अभिन्न अंग है। सत्य/असत्य

घ. विवेकज्ञान होने पर साधक का चित्त कैवल्य की ओर गति करने वाला होता है। सत्य/असत्य

3. बहुविकल्पीय प्रश्न

क. अभ्यास व वैराग्य का वर्णन योग सूत्र के कौन से पाद में है।

अ. समाधिपाद ब. साधनपाद

स. विभूतिपाद द. कैवल्यपाद

ख. क्लेशो को कम करने के लिए योग सूत्र में कौन सी साधना बताई है।

अ. भक्तियोग ब. अष्टांगयोग

स. क्रियायोग द. ईश्वर प्रणिधान

3.4 श्रीमदभगवदगीता का सामान्य परिचय

पाठकों आप श्रीमदभगवदगीता के नाम से भली भॉति परिचित होंगे। महाभारत के युद्ध में जब अर्जुन ने युद्धभूमि में अपने नाते रिश्तेदारों, चचेरे-ममेरे भाईयों को अपने सामने देखा तो अर्जुन युद्धभूमि में धनुष वाण किनारे रख बैठ जाता है तथा अपने अराध्य सारथी कृष्ण से युद्ध के लिए मना कर देते है ऐसी स्थित में स्वयं योगेश्वर भगवान कृष्ण ने अर्जुन को जो शिक्षा दी वह गीता के नाम से प्रचलित है।

समस्त शास्त्रों का सार यह गीता ऐसा ग्रन्थ है जिसमें धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि सभी का समन्वय है। जो व्यक्ति किंकर्तव्यमूढ़ स्थिति में हताश और निराश होकर बैठ जाए, उसको भी निजकर्तव्य बोध कराकर जीवनमार्ग को प्रशस्त करने वाला ग्रन्थ है।

श्रीमद्भगवद्गीता में 18 अध्याय हैं जो महाभारत के भीष्मपर्व के 23 से 40 अध्यायों तक की रचना हैं जिसमें 700 लोक हैं। अध्यायों का नामकरण निम्नप्रकार किया गया है-

3.4.1 अर्जुन विषाद योग- इस अध्याय में 46 श्लोक हैं। अर्जुन दोनों सेनाओं के मध्य खड़ा होकर युद्ध के लिए तैयार सेना के महारथियों को देखकर मोहग्रस्त हो जाता है कि ये सभी तो मेरे दादा, गुरु, भाई, सम्बन्धी आदि हैं। मैं इन लोगों से युद्ध कैसे करुँगा\ किंकर्तव्यविमूढ़ होकर वह हताश और निराश होकर शस्त्र त्यागकर रथ में ही बैठ जाता है। यह अर्जुनविषाद योग नामक अध्याय की विषयवस्तु है।

3.4.2 सांख्य योग- यह अध्याय 72 श्लोक वाला है। इसमें भगवान् कृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि अर्जुन युद्धक्षेत्र में आकर तुम कैसी कायरों की सी बातें कर रहे हो यह दुर्बलता छोड़कर युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। किन्तु अर्जुन तैयार नहीं हुए तो उन्होंने कहा कि तुम यह समझते हो कि मैं पहले नहीं था या तुम नहीं थे या आगे नहीं रहेंगे। यह आत्मा न तो किसी काल में जन्म लेता है, न मरता है। यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता। जो इसे अविनाशी, अजन्मा, नित्य समझता है। वह कैसे किसको मारता है या मरवाता है जैसे पुराने वस्त्रों को उतारकर व्यक्ति नवीन वस्त्रों को धारण करता है और दुःखी नहीं होता। उसी प्रकार जीवात्मा भी पुराने शरीर को त्यागकर नया शरीर धारण करता है। यह आत्मा अजर, अमर है। शस्त्र इसे काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, पानी गीला नहीं कर सकता,

हवा सुखा नहीं सकती। अतः इसके लिए शोक करने की आवश्यकता नहीं है। यदि यह धर्मयुद्ध नहीं करेगा तो पाप तथा अकीर्ति प्राप्त करेगा। तू केवल निष्काम भाव से कर्म कर। कर्म करना तेरा अधिकार है। फल तो कर्म के अनुसार स्वतः मिल जाएगा। हे अर्जुन! जो अनुकूल परिस्थिति में प्रसन्नता प्रकट नहीं करता तथा प्रतिकूल परिस्थिति में दुःखी नहीं होता। सब कामनाओं का त्यागकर, ममतारहित, अहंकाररहित होकर विचरता है, वही शान्ति को प्राप्त होता है। इसी को प्राप्त करके निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

3.4.3 कर्मयोग- इस अध्याय में 43 श्लोक हैं जो कर्मयोग का प्रतिपादन करते हैं, प्रत्येक व्यक्ति क्षणभर भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता किन्तु उनमें आसक्ति छोड़कर कर्म करने से उसका फल नहीं भोगना पड़ता। यही निष्काम कर्मयोग है। श्रेष्ठ पुरुष जो आचरण करते हैं, वैसा ही अन्य लोग भी करते हैं। जैसा वह मार्ग चुन लेते हैं, वैसा ही लोक उनका अनुसरण करता है-

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनाः।

स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।। गीता **3@21**

3.4.4 ज्ञानकर्म संन्यास योग- इसमें कुल 42 श्लोक हैं, जो अर्जुन को योग की परम्परा का ज्ञान देते हैं कि अर्जुन अब तक मेरे और तुम्हारे अनेक जन्म हो चुके हैं, जिन्हें मैं जानता हूँ, तुम नहीं जानते। जब धर्म की हानि तथा अधर्म की वृद्धि होती है, तब मैं सज्जनों की रक्षा तथा दुष्टों को दण्डित करने के लिए तथा धर्म की स्थापना के लिए उपयुक्त रूप में प्रकट होता हूँ।

3.4.5 कर्मसंन्यास योग- इस अध्याय में 28 श्लोक हैं। इसमें संन्यास तथा कर्मयोग का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कर्मसंन्यास और कर्मयोग दोनों ही कल्याणकारी हैं। दोनों में कर्मसंन्यास से कर्मयोग सुगम होने के कारण श्रेष्ठ है। सांख्य तथा योग दोनों को अलग नहीं समझना चाहिए। जो व्यक्ति सब कामनाओं से रहित होकर सब कर्मों को प्रभु को अर्पित कर देता है, वह जल में कमलपत्र की तरह जल से लिप्त नहीं होता-

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।

लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।। गीता 5@10

3.4.6 आत्मसंयम योग- यह अध्याय 47 श्लोक वाला है। इसमें ध्यान योग का वर्णन, उसके उपयुक्त स्थान आदि का निर्देश किया गया है। शुद्ध स्थान में जिस पर कुशा, मृगछाला, वस्त्र बिछे हों, न ऊँचा न नीचा हो, ऐसे स्थान पर आसन लगाकर बैठे। मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि का अभ्यास करे। शरीर, सिर तथा गर्दन सीधी तथा अचल रखें, नासिकाग्र पर दृष्टि रखें, ब्रह्मचर्य व्रती हो, भयरहित होकर साधना करें। न अधिक खाने, न भूखा रहने, न बहुत सोने, न जागने वाले को यह योग सिद्ध नहीं हो सकता। यथायोग्य नियमित आहार-विहार करने, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने, यथायोग्य सोने व जागने वाले को ही योग सिद्ध होता है। मन को वश में करने के लिए दो ही उपाय हैं-अभ्यास और वैराग्य। क्योंकि असंयत मन वाला इस योग को प्राप्त नहीं हो सकता। साधना करके जो मोक्षप्राप्त नहीं कर पाता, वह योगी पुनः अच्छे कुल

में जन्म लेकर साधना करके कल्याणमार्ग पर बढ़ जाता है। वह नाश को प्राप्त नहीं होता। योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, ज्ञानियों से श्रेष्ठ है, सकाम कर्मरत लोगों से भी श्रेष्ठ है। अतः योगी बनो।

3.4.7 ज्ञानविज्ञानयोग- इसमें 30 श्लोक हैं। ईश्वर व जगत् सम्बन्धी ज्ञान-विज्ञान पर चर्चा की गई है। हजारों मनुष्यों में से कोई एक सिद्धि के लिए प्रयास करता है। उन सिद्धि करने वाले हजारों सिद्धों में से कोई एक परायण होकर तत्व को जानता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार- यह आठ प्रकार की परमात्मा की प्रकृति हैं, जो जड़ हैं, दूसरी जीवरूपा चेतन प्रकृति है जो जगत् को धारण किए है। सम्पूर्ण जगत् इन दो से ही उत्पन्न हुए हैं। कृष्ण कहते हैं कि अर्जुन! मैं ही जगत् का मूल कारण हूँ, मुझसे भिन्न अन्य कुछ नहीं है। मुझे चार प्रकार के लोग भजते हैं- अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी। ज्ञानी श्रेष्ठ है। जिनका मोह नष्ट हो गया है। वे ज्ञानी मुझे ब्रह्मरूप में भजते हैं, अन्य मुझे नहीं भजते।

3.4.8 अक्षरब्रह्म योग- इसमें 28 श्लोक हैं। श्रीकृष्ण ब्रह्म, अध्यात्म, धर्म आदि से सम्बन्धित अर्जुन के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहते हैं। परम अक्षर ब्रह्म है, अपना स्वरूप जीवात्मा अध्यात्म नाम से कहा जाता है। भूतों के भावों को उत्पन्न करने वाला जो त्याग हैं, वह 'कर्म' कहा जाता है। क्षर सब पदार्थ अधिभूत हैं, हिरण्यमय पुरुष अधिदैव हैं तथा मैं स्वयं वासुदेव ही 'अधियज्ञ' हूँ। जो व्यक्ति अन्तकाल में मेरा स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है, वह मुझे ही प्राप्त होता है।

3.4.9 राजविद्या राजगुह्ययोग- इस अध्याय में 34 श्लोक हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं कल्पान्त में सभी भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं तथा कल्पारम्भ में उनको फिर उत्पन्न करता हूँ। मेरे द्वारा प्रेरित प्रकृति समस्त जगत् को उत्पन्न करती है। जो भक्त मुझे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उसे मैं प्रीतिपूर्वक स्वीकार करता हूँ। इसलिए हे अर्जुन! तू जो करता है, खाता है, हवन करता है, दान देता है, जो तप करता है, वह सब कुछ मुझे अर्पित कर। इससे तू कर्मबन्धन से मुक्त हो जाएगा।

3.4.10 विभूतियोग- इस अध्याय में 42 श्लोक हैं। इसमें भगवान् की विभूति, योगशक्ति तथा प्रभाव सहित भक्तियोग का कथन, अर्जुन के पूछने पर भगवान् के द्वारा अपनी विभूतियों का और योगशक्ति का कथन किया गया है। श्रीकृष्ण कहते हैं, मैं देवताओं तथा महर्षियों का आदि कारण हूँ, जो मुझे अजन्मा, अनादि और ईश्वर रूप में जानता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। सबकी उत्पत्ति का कारण मैं ही हूँ। अर्जुन द्वारा विभूति तथा योगशक्ति देखने की इच्छा प्रकट करने पर श्रीकृष्ण द्वारा दिव्यविभूतियों को दिखाया जाता है।

3.4.11 विश्वरूपदर्शन योग- इसमें 55 श्लोक हैं जिनमें भगवान् के दिव्यरूपों का वर्णन है। अर्जुन को दिव्यदृष्टि देकर अपने रूपों का दर्शन कराते हैं- अनेक मुख, अनेकनेत्र, दिव्य आभूषणों से युक्त, दिव्यशस्त्रों से युक्त, दिव्य माला, वस्त्र, दिव्यगन्ध, दिव्य लेप, सब ओर मुख किए हुए परमदेव परमेश्वर को देख विस्मय से भरे हुए पुलकित शरीर अर्जुन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले- मैं आपके शरीर में सम्पूर्ण देवों, भूतों, ब्रह्मा, महादेव, समस्त शिष्यों, अनेक भुजाओं, उदर, मुख, नेत्रों तथा रूपों वाला देख रहा हूँ जिसका आदि, मध्य तथा अन्त नहीं दिखाई पड़ता। आप ही जानने योग्य हैं, आप ही अक्षर, अविनाशी ब्रह्म हैं। सभी धृतराष्ट्र-पुत्र, भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि आपके मुख में समाहित होते जा रहे हैं। आप उग्र रूप वाले कौन हैं श्रीकृष्ण ने कहा- लोकों का नाश करने वाला मैं महाकाल हूँ। युद्ध में

सभी प्रतिपक्षी योद्धा तुम्हारे द्वारा न मारे जाने पर भी मारे जाएंगे। क्योंकि ये मेरे द्वारा पहले ही मार दिए गए हैं। तू युद्ध में जीतेगा। अतः युद्ध कर।

3.4.12 भक्तियोग- इसमें 20 श्लोक हैं जिसमें साकार व निराकार उपासकों की श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है। भगवान् कहते हैं कि यदि तू चित्त को मुझमें लगाने में समर्थ नहीं है तो अभ्यास कर। यदि अभ्यास में भी असमर्थ हैं तो मेरे लिए कर्म कर। इस प्रकार मेरे लिए कर्म करता हुआ मुझे ही प्राप्त होगा। अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है तथा ध्यान से कर्मफल त्याग श्रेष्ठ है क्योंकि उससे तुरन्त शान्ति की प्राप्ति होती है। जो मुझमें ही सुख को प्राप्त करता है, उसको मैं अपनी नौका से स्वयं पार उतार देता हूँ।

3.4.13 क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ योग- इस अध्याय में 34 श्लोक हैं जिनमें क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का वर्णन किया गया है, अहिंसा, मानहीनता, दम्भहीनता आदि को धारण करने वाला ज्ञानी पुरुष जिसे जानकर अमृततत्व को प्राप्त होता है। वह अनादि परमब्रह्म न सत् कहा जाता है, न असत्। वह सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, सिर और मुखवाला है। सब में व्याप्त है। सब चराचर भूतों के बाहर व अन्दर भी वही कार्य और करण के उत्पन्न करने में हेतु प्रकृति है। सुख-दुःखों के भोक्तापन में हेतु पुरुष है। जो चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं, वे क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न होते हैं।

3.4.14 गुणत्रय-विभाग योग- इस अध्याय में 27 श्लोक हैं जिनमें प्रकृति के तीनों गुणों का वर्णन किया गया है। प्रकृति ही परमेश्वर की योनि है, उससे ही जड़ चेतन के संयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है। प्रकृति गर्भधारण करने वाली माँ तथा परमेश्वर बीज स्थापन करने वाला पिता है। सत्व, रजस् व तमस्- ये तीन गुण प्रकृति के हैं जो प्रकाशक, तृष्णा-आसक्ति तथा आलस्य-निद्रा रूप जान। सत्व गुण सुख में, रजोगुण क्रिया में, तथा तमोगुण प्रमाद में लगाता है। सत्व की वृद्धि से चेतना व ज्ञान, रजोगुण की वृद्धि से लोभ, प्रवृत्ति, आरम्भ, अशान्ति व भोगलिप्सा तथा तमोगणु की वृद्धि से अन्तःकरण व इन्द्रियों में अप्रकाश, कर्तव्यकर्मों में अप्रवृत्ति, प्रमाद और निद्रा उत्पन्न होते हैं। जब द्रष्टा इन गुणों को ही कर्ता देखता है तथा इनसे परे सच्चिदानन्द परमात्मा को जानता है तो वह जन्मादि को पारकर अमृततत्व को प्राप्त होता है।

3.4.15 पुरुषोत्तम योग- 20 श्लोकों के इस अध्याय में संसार वृक्ष, भगवत्प्राप्ति के उपाय, परमेश्वर के स्वरूप एवं क्षर, अक्षर एवं पुरुषोत्तम के स्वरूप का वर्णन किया गया है। ऊपर मूल नीचे शाखा वाले पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं। जिसके पत्ते वेद हैं, उसको जो तत्व से जानता है वह वेद को जानने वाला है। उस संसारवृक्ष को वैराग्य रूप शस्त्र से काटकर परमपद प्राप्त करना चाहिए। जिनकी कामनाएँ पूर्ण रूप से नष्ट हो गई हैं, वे सुख-दुःख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त हो जाते हैं। स्वयंप्रकाश परमपद को सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि प्रकाशित नहीं कर सकते। वही परमेश्वर का धाम है। इन सूर्य, चन्द्र व अग्नि में जो तेज है, वह उसी परमेश्वर का है। प्राणियों के शरीर क्षर, जीवात्मा अक्षर तथा अविनाशी परमेश्वर पुरुषोत्तम हैं।

3.4.16 दैवासुरसम्पद् विभाग योग- इस अध्याय में 24 श्लोक हैं, जिनमें दैवी आसुरी सम्पत्तियों का वर्णन किया गया है। निर्भयता, निर्मलता, दान, इन्द्रिय-दमन, भगवान्, देव तथा गुरुजनों की पूजा, वेद शास्त्रों का पठन-पाठन, भगवन्नामकीर्तन रूप स्वाध्याय, तप, अन्तःकरण की सरलता, लोक व शास्त्र विरुद्ध आचरण में लज्जा, तेज, क्षमा, धैर्य, शुचिता, शत्रुभाव का अभाव आदि दैवीसम्पदा कहलाती हैं। दम्भ, अभिमान, क्रोध, कठोरता, अज्ञान आदि आसुरी सम्पदा कहलाती हैं। काम, क्रोध, लोभ इनको नरकद्वार कहा है। शास्त्रानुकूल व्यवहार करना तथा विपरीत व्यवहार का त्याग करना चाहिए।

3.4.17 श्रद्धात्रय विभाग योग- इस अध्याय में 28 श्लोक हैं जिनमें सात्विक, राजसी व तामसी श्रद्धा का वर्णन किया गया है। शास्त्रविपरीत घोर तप करने वालों का वर्णन, आहार, यज्ञ, तप व दान के पृथक् भेदों का वर्णन किया गया है। सात्विक पुरुष देवों को, राजस् राक्षसों-यक्षों को तथा तामस भूत-प्रेतों को पूजते हैं। जो दम्भ, कामना आदि से तप करते हैं, वे असुर स्वाभाव होते हैं। आहार भेद भी सात्विक आदि भेद से तीन प्रकार का तथा यज्ञ, तप, दान भी तीन प्रकार के होते हैं। जो जैसी वृत्ति रखता है, वह वैसा ही प्रकार अपनाता है।

3.4.18 मोक्ष संन्यास योग- इस अध्याय में 78 श्लोक हैं। इसमें त्याग, सांख्य-सिद्धान्त, वर्णधर्म, पराभक्ति, निष्काम कर्मयोग तथा शरणागति का वर्णन किया गया है। यज्ञ, दान व तप त्याज्य कर्म नहीं हैं, अतः इन्हें अवश्य करना चाहिए। कर्मफल का त्याग करना उचित है। कर्मों की सिद्धि में सांख्य शास्त्र ने पाँच हेतु बताए हैं- अधिष्ठान (शरीर), कर्ता (जीवात्मा), करण (इन्द्रियाँ), चेष्टाएं तथा दैव। ज्ञान-अज्ञान, कर्तव्याकर्तव्य में भेद करने वाली बुद्धि सात्विक, ठीक-ठीक न जानने वाली बुद्धि राजसी, तथा केवल अज्ञान, अधर्म को ही ठीक समझने वाली बुद्धि तामसी कहलाती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के स्वाभाविक धर्म कहे गए हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'हे अर्जुन! तू मुझमें मन वाला हो, मेरा भक्त हो, मेरा ही पूजन कर, मुझे ही प्रणाम कर। सब धर्मों का त्याग करके केवल मुझ परमेश्वर की शरण में आ जा। मैं सब पापों से मुक्त कर दूंगा। शोक मत कर'। अर्जुन कहते हैं कि हे परमेश्वर! मेरा मोह नष्ट हो गया है, स्मृति प्राप्त हो गई तथा संशयरहित हो गया हूँ। अब आपके आदेशानुसार कार्य करूँगा।

इस प्रकार गीता का यह अन्तिम अध्याय पूर्ण होता है। अपने भक्त को भगवान् सब प्रकार से रक्षा करते हैं तथा तत्वज्ञान भी उन्हीं की कृपा से प्राप्त होता है। ऐसी इस अध्याय के अन्त में घोषणा की गई है।

अभ्यास प्रश्न

4. एक शब्द में उत्तर दीजिए –

क. भगवदगीता में कुल कितने अध्याय है।

ख. महाभारत में किस पर्व में भगवदगीता का वर्णन मिलता है।

ग. भगवदगीता में कुल कितने श्लोक है।

घ. श्रीमदभगवद गीता के दूसरे अध्याय का क्या नाम है।

3.5 हठयोग प्रदीपिका का सामान्य परिचय

इस ग्रन्थ के रचयिता स्वामी स्वात्माराम योगी हैं। इन्होंने हठयोग के चार अंगों का मुख्यतया वर्णन किया है-

इन्हीं को चार अध्यायों में बांटा गया है। कैवल्यधाम लोनावला से प्रकाशित 'हठप्रदीपिका' में पाँचवा अध्याय 'योग चिकित्सा' से संबन्धित दिया गया है। हठयोग के अंगों में घेरण्डसंहिताकार सप्तांग की बात करते हैं- षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्रा, प्रत्याहार, ध्यान, समाधि। यहाँ स्वात्माराम योगी द्वारा बताए गए चार अंगों पर विचार किया जा रहा है-

3.5.1 आसन- ''हठस्य प्रथमांगत्वादासनं पूर्वमुच्यते''

कहकर योगी स्वात्माराम ने प्रथम अंग के रूपमें आसन का वर्णन किया है। इन आसनों का उद्देश्य स्थैर्य, आरोग्य तथा अंगलाघव बताया गया है-

'कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चांगलाघवम्। g- iz- 1@17

आसनों के अभ्यास से साधक के शरीर में स्थिरता आ जाती है। चंचलता समाप्त हो जाती है, लचीलापन आता है, आरोग्यता आ जाती है, शरीर हल्का हो जाता है। हठयोगप्रदीपिका में पन्द्रह आसनों का वर्णन किया गया है-

1. स्वस्तिकासन, 2. गोमुखासन, 3. वीरासन, 4. कूर्मासन, 5. कुक्कुटासन, 6. उत्तानकूर्मासन, 7. धनुरासन, 8. मत्स्येन्द्रासन, 9. पश्चिमोत्तानासन, 10. मयूरासन, 11. शवासन, 12. सिद्धासन, 13. पद्मासन, 14. सिंहासन, 15. भद्रासन।

3.5.2 प्राणायाम- हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है कि-

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।

योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्।। g-iz-2@3

वायु के चलने पर चित्त भी चंचल बना रहता है तथा वायु के निश्चल होने पर चित्त भी निश्चल हो जाता है। योगी स्थिरता प्राप्त कर लेता है। इसलिए प्राणायामइ का अभ्यास साधना के लिए बहुत ही उपयोगी है। इसी प्रकार हठयोग प्रदीपिका में ही कहा गया है-

यावद् वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते।
मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत्।। g-iz- 2@3

जब तक शरीर में वायु स्थित है, तभी तक जीवन है। जब श्वास निकल जाता है तो मृत्यु हो जाती है। अतः प्राणायामका अभ्यास करके वायु को रोकने का प्रयास करना चाहिए।

प्राणायाम के लिए कहा गया है कि जैसे धातुओं के मल अग्नि द्वारा नष्ट कर दिए जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम द्वारा इन्द्रियों के दोषों को नष्ट किया जा सकता है-

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।। मनुस्मृति 6@71

हठप्रदीपिका में प्राणायाम के आठ भेद बताए गए हैं

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्टकुम्भकाः।। g-iz- 2@44

अर्थात् सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा तथा प्लाविनी- ये आठ कुम्भक हैं। सूर्यभेदन शरीर में उष्मा का संचार करते है जबकि सीत्कारी व शीतली शीतलता का संचार करने वाले हैं। भस्त्रिका त्रिदोषहरण करने वाला है। उज्जायी तथा नाड़ीशोधन शरीरक्रिया को संतुलित करने वाले हैं। भ्रामरी एकाग्रता व ध्यान के लिए उपयोगी है। मूर्च्छा तथा प्लाविनी का अभ्यास सामान्य स्थिति में नहीं करना चाहिए।

3.5.3 मुद्रा एवं बन्ध- हठयोग का मुख्य उद्देश्य कुण्डलिनी जागरण तथा उसके द्वारा राजयोग में प्रविष्ट होना है। मुद्रा कुण्डलिनी जागरण के लिए उपयुक्त साधन है। हठयोग प्रदीपिका में दस मुद्राओं (बंधसहित) का वर्णन उपलब्ध है-

महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।

उड्डीयानं मूलबन्धस्ततो जालंधराभिधः।।

करणी विपरीताख्या वज्रोलीशक्तिचालनम्।

इदं हि मुद्रा दशकं जरामरणनाशनम्।। ह.प्र. **3@6&7**

अर्थात् महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्डीयान बन्ध, मूलबन्ध, जालंधर बन्ध, विपरीत करणी, वज्रोली, शक्तिचालिनी- ये दस मुद्राएं साधक के बार्द्धक्य तथा मृत्यु का नाश करने वाली हैं। बन्धों का प्रयोग किए बिना प्राणायाम नहीं हो सकता तथा कुण्डलिनी जागरण के लिए प्राणायाम की अनिवार्यता है। अतः बन्धों का प्रयोग महत्त्वपूर्ण है।

3.5.4 नादानुसंधान- नाद$अनुसंधान का अर्थ है- नाद का अनुसंधान करना। नाद दो प्रकार के होते हैं- आहत और अनाहत। आहतनाद जो लोकप्रचलित है- तबला, सारंगी, हारमोनियम, ढोलक, मंजीरा, वीणा आदि, जो आघात देकर बजाए जाते हैं। ये संगीत के लिए उपयोगी हैं। अनाहत नाद है- जो साधक को साधना में अपने अन्दर से ही सुनाई पड़ते हैं। इनको पहले स्थूल पर ध्यान लगाने का प्रयास करना चाहिए तथा धीरे-धीरे स्थूल को छोड़कर सूक्ष्म पर ध्यान लगाएं। यही एकाग्रता समाधि की स्थिति प्रदान करने वाली है। मन का लय होने पर नादानुसंधान का कार्य पूर्ण हो जाता है। प्रथम तो नाना प्रकार के नाद सुनाई पड़ते हैं। अभ्यास दृढ़ होने पर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर नाद सुनाई पड़ने लगते हैं। पहले सागर, बादल, भेरी, झरना आदि मध्य में नफीरी आदि मृदुध्वनि तथा अन्त में किंकिणी, बांसुरी, वीणा, भौंरे की ध्वनि आदि अनेक प्रकार की सूक्ष्म ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। सूक्ष्म से स्थूल तथा स्थूल से सूक्ष्म पर जाने का अभ्यास करते-करते यह सूक्ष्म से सूक्ष्म पर जाएगा तो ध्यान की स्थिति दृढ़ होगी। समाधि की स्थिति प्राप्त होने पर कुण्डलिनी जागरण की स्थिति स्वतः आ जाएगी तथा साधना में सफलता प्राप्त हो जाएगी। नादानुसंधान की निम्न अवस्थाएं कही गई हैं-

आरम्भावस्था-इसमें ब्रह्मग्रन्थि का भेदन होता है।

घटावस्था- इसमें विष्णुग्रन्थि का भेदन होता है।

परिचयावस्था- इसमें रुद्र ग्रन्थि का भेदन होता है।

निष्पत्ति अवस्था- इसमें सहस्रार का द्वार खुल जाता है।

इस प्रकार चारों अवस्थाओ से होता हुआ साधक लक्ष्य की प्राप्ति में समर्थ होता है।
नादानुसंधान के अन्तर्गत ही स्वामी स्वात्माराम कुण्डलिनी तथा समाधि का वर्णन भी करते हैं-

(क) कुण्डलिनी –

कुटिलांगी कुण्डलिनी भुजंगी शक्तिरीश्वरी।
कुण्डल्यरुन्धाती चैते शब्दाः पर्यायवाचकाः।।ह.प्र. **3@10**

कन्दोर्ध्वं कुण्डली शक्तिः सुप्तामोक्षाय योगिनाम्।
बन्धनाय च मूढ़ानां यस्तां वेत्ति स योगवित्।। ह.प्र. **3@103**

उद्घाटयेत् कपाटं तु यथा कुंचिकया हठात्।

कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत्।।

येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम्।
मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।। ह.प्र. **3@101&102**

अर्थात् कुटिलांगी, कुण्डलिनी, भुजंगी, शक्ति, ईश्वरी, कुण्डली, अरुंघती ये सभी शब्द पर्यायवाची हैं। कन्दोर्ध्व (मूलाधार चक्र के पास) कुण्डलिनी शक्ति सोई हुई है जो अज्ञानियों के लिए बन्धन का कारण हैं तथा योगियों के लिए मोक्ष का कारण हैं। जो उसे जान लेता है, वही योगी कहलाता है।

जिस प्रकार चाबी के द्वारा आसानी से ताला खोल लिया जाता है, उसी प्रकार योगी कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर मोक्ष द्वार को खोल देता है जिससे ब्रह्म स्थान को बिना किसी बाधा के पहुँचा जा सकता है क्योंकि उसी द्वार को ढककर कुण्डलिनी सोई हुई है।

(ख) समाधि –

सलिले सैन्धवं यद्वत् साम्यं भजति योगतः।

तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते।।

यदा संक्षीयते प्राणो मानसं च प्रलीयते।

तदा समरसत्वं च समाधिरभिधीयते।।

तत्समं च द्वयोरैक्यं जीवात्मपरमात्मनोः।
प्रनष्टः सर्व संकल्पः समाधि सोऽभिधीयते।। ह.प्र.**4@5&7**

अर्थात् जैसे नमक व जल दोनों मिलकर एक हो जाते हैं, एक रूप होकर द्वैत समाप्त हो जाता है। उन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। उसी प्रकार आत्मा व मन की एकता समाधि कही जाती है। प्राण क्षीण होकर मनलीन हो जाने पर समरसता की स्थिति समाधि है। जीवात्मा व परमात्मा की एकता समाधि कही जाती है।

इस प्रकार स्वामी स्वात्माराम योगी ने जो ग्रन्थारम्भ में घोषणा की थी कि-

'केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते।'

उसी के अनुसार समाधि तक के लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से हठप्रदीपिका की रचना की गई है।

3. अभ्यास प्रश्न

5. एक शब्द में उत्तर दीजिए

क. हठप्रदीपिका के रचयिता कौन है।

ख. हठयोगप्रदीपिका में कुल कितने आसनों का वर्णन है।

ग. हठप्रदीपिका में प्राणायाम के कितने प्रकार बताये है।

घ. हठप्रदीपिका में प्राणायाम को क्या कहा है।

3.6 घेरण्ड संहिता का सामान्य परिचय

महर्षि घेरण्ड और चण्डिकापालि के संवाद-रूप में रचित घेरण्ड-संहिता महर्षि घेरण्ड की अनुपम कृति है। इस के योग को घटस्थ योग या सप्तांग योग कहा गया है। इसके सात अध्यायों में सात अंगों की चर्चा की गई है जो घटशुद्धि के लिए आवश्यक हैं- शोधनं दृढता चैव स्थैर्यं धैर्यं च लाघवम्।

प्रत्यक्षं च निर्लिप्तं च घटस्य सप्तसाधनम्।। घे.सं. **0@9**

शोधन, दृढ़ता, स्थिरता, धीरता, लघुता, प्रत्यक्ष तथा निर्लिप्तता- शरीर-शोधन के लिए सात साधन कहे गए हैं। इन सातों के लिए उपायरूप में सात साधनों को कहा गया है-

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन् भवेद्दृढम्।

मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता।।

प्राणायामाँल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्क्षमात्मान:।
समाधिना निर्लिप्तिं च मुक्तिरेव न संशय।। घे.सं. **0@10&11**

अर्थात् षट्कर्मों से शोधन, आसन से दृढ़ता, मुद्रा से स्थिरत, प्रत्याहार से धीरता, प्राणायाम से लघुता, ध्यान से आत्मसाक्षात्कार तथा समाधि से निर्लिप्तभाव प्राप्त करके मुक्ति अवश्य ही हो जाएगी, इसमें सन्देह नहीं है।

3.6.1 षट्कर्म- धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक व कपालभाति- ये षट्कर्म घेरण्ड की भी मान्यता है किन्तु इनके भेद करके इनकी संख्या बढ़ा दी है। जैसे-

धौति- अन्तधौति, दन्तधौति, हृद्धौति तथा मूलशोधन चार प्रकार कहे हैं। फिर अन्तधौति के चार प्रकार- वातसार, वारिसार, अग्निसार, व बहिष्कृत। दन्तधौति के चार प्रकार- दन्तमूल, जिह्वामूल, कर्णरन्ध्र कपालरन्ध्र। हृद्धौति के तीन प्रकार हैं- दण्ड, वमन, वस्त्र कहे गए हैं। मूलशोधन का कोई भेद नहीं है। वस्ति के दो भेद जलवस्ति व स्थलवस्ति, नेति के रूप में सूत्रनेति, कपालभाति के तीन भेद- वात्क्रम, व्युत्क्रम व शीत्क्रम कहे गए हैं। नौलि व त्राटक के कोई भेद नहीं हैं।

3.6.2 आसन- आसनों के रूप में 32 आसनों का वर्णन किया गया है- सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, स्वस्तिकासन, सिंहासन, गोमुखासन, वीरासन, धनुरासन, मृतासन (शवासन), गुप्तासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन, गोरक्षासन, पश्चिमोत्तान आसन, उत्कटासन, संकटासन, मयूरासन, कुक्कुटासन, कूर्मासन, उत्तानकूर्मासन, मण्डूकासन, उत्तानमण्डूकासन, वृक्षासन, गरुडासन, वृषासन या वृषभासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजंगासन, योगासन।

3.6.3 मुद्रा व बन्ध- घेरण्डसंहिता में 25 मुद्राओं का वर्णन किया गया है- मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, उड्डीयानबन्ध, महाबन्ध, पार्थिवी धारणा, आम्भसी धारणा, आग्नेयी धारणा, वायवीय धारणा, आकाशीधारणा, महामुद्रा, नभोमुद्रा, खेचरीमुद्रा, महावेध मुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, योनिमुद्रा, वज्रोली मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, तड़ागी मुद्रा, माण्डुकीमुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा, काकी मुद्रा, मातंगिनी मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा।

3.6.4 प्रत्याहार- घेरण्ड संहिता में कहा है-

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।

ततस्ततो नियम्यैतद् आत्मन्येव वशं नयेत्।। घे. सं. **4@2**

चंचल मन को नियन्त्रित करने के लिए इन्द्रियों को नियन्त्रित करना परमावश्यक है। इन्द्रियों का नियन्त्रण ही प्रत्याहार है।

3.6.5 प्राणायाम- प्राण के नियन्त्रण से मन नियन्त्रित होता है। अतः प्राणायाम की आवश्यकता बताई गई है। हठयोगप्रदीपिका की भांति प्राणायामों की संख्या इसमें भी आठ बताई गई है किन्तु दोनों में थोड़ा अन्तर है। घेरण्डसंहिता में कहा गया है-

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा।

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भका।। घे.सं**0 5@46**

सहित, सूर्य भेदन, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा तथा केवली- ये आठ कुम्भक (प्राणायाम) कहे गए हैं। इनके अभ्यास के लिए उपर्युक्त योगमठ कैसा होना चाहिए यह भी वर्णन किया गया है।

3.6.6 ध्यान- घेरण्डसंहिता में ध्यान के तीन प्रकार बताए गए हैं-

स्थूलं ज्योतिस्तथा सूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः।

स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं तथा।

सूक्ष्मं बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली पर देवता।। घे.सं. **6@1**

(क) स्थूल ध्यान- हृदय या सहस्रार चक्र में गुरु या इष्ट देव के वाहन, आभूषण सहित ध्यान को स्थूल ध्यान कहा गया है।

(ख) ज्योतिर्ध्यान- मूलाधार में आत्मा का निवास है। वहाँ तेजोमय ब्रह्म का ध्यान किया जाता है। भ्रूमध्य में प्रकाश पुंज के रूप में प्रणव की स्थिति मानी गई है। वहां भी ध्यान करना ज्योतिध्यान कहलाता है। इसी को प्रणव ध्यान भी कहते हैं।

(ग) सूक्ष्म ध्यान- शाम्भवी मुद्रा में कुण्डलिनी शक्ति के ध्यान को सूक्ष्म ध्यान कहा गया है।

3.6.7 समाधि- घेरण्डसंहिता में समाधि के छह भेद कहे गए हैं-

- ध्यान योग समाधि-शाम्भवी मुद्रा से यह सिद्ध होती है।
- नाद योग समाधि- भ्रामरी प्राणायाम के अभ्यास से सिद्ध होती है।
- रसानन्द योग समाधि- खेचरी मुद्रा के अभ्यास से सिद्ध होती है।
- लयसिद्धि योग समाधि- यह योनि मुद्रा से सिद्ध होती है।
- भक्तियोग समाधि- अनन्यश्रद्धा व अनन्य प्रेम से यह समाधि सिद्ध होती है।
- राजयोग समाधि- मन के नियन्त्रण से सिद्ध होती है।

इस प्रकार साधनभूत सप्तांगों का वर्णन करके घेरण्ड ऋषि ने अपना उद्देश्य मुक्ति के लक्ष्य को प्रस्तुत किया है।

अभ्यास प्रश्न

6. एक शब्द में उत्तर दीजिए :-

क. घेरण्ड ऋषि ने किस राजा को सर्वप्रथम हठयोग की शिक्षा दी।

ख. घेरण्ड संहिता में कुल कितने अध्याय है।

7. सत्य/असत्य बताइये :-

क. घेरण्ड संहिता में 15 आसनों का वर्णन मिला है।

ख. घेरण्ड संहिता के प्रथम अध्याय में षटकर्मों का वर्णन मिलता है।

ग. घेरण्ड संहिता में समाधि के 6 भेद बताये है।

घ. घेरण्ड संहिता में 20 मुद्राओं का वर्णन मिला है।

ड. सीत्कारी प्राणायाम का वर्णन घेरण्ड संहिता में मिलता है।

3.7 सारांश

योग के अनेकानेक अभ्यासों का वर्णन अनेकानेक ग्रन्थों में मिलता है। महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योगसूत्र की विषयवस्तु अगर देखे तो महर्षि पतंजलि ने बड़े रोचक ढंग से योग की प्रमाणिकता मनोवैज्ञानिकता द्वारा दाशर्निक चिन्तन को प्रतिपादति किया है। उत्तम, मध्यम व अधम कोटि के साधको के लिए क्रमश: अभ्यास वैराग्य क्रियायोग तथा अष्टांगयोग की साधना जन्मानस के लिए दी है। भगवदगीता में तो योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को ज्ञानयोग, कर्मयोग, आत्मसंयमयोग, ज्ञानविज्ञान योग के साथ-साथ यह कहा है कि हे अर्जुन, तू मुझमें मन वाला हो, मेरा भक्त त्याग करके केवल मुझ परमेश्वर की शरण में आ जा। मैं सब पापों से तुझे मुक्त कर दूगॉ। हठयोगप्रदीपिका में जहॉ एक ओर हठयोग के अभ्यासों का (आसन, प्राणायाम, मुद्रा-बंध) का वर्णन स्वात्माराम जी ने किया है वही दूसरी आरे महर्षि घेरण्ड ने सात अध्याओं में हठयोग की सुदीर्घ व्याख्या की है।

3.8 शब्दावली

कैवल्य- समाधि, मोक्ष, मुक्ति

पंच चित्तवृत्ति – प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति

प्रज्ञा -	बुद्धि
व्याधि -	रोग
स्त्यान -	अर्कमण्यता, काम ना करने की इच्छा
विरति -	वैराग्य, बिना राग वाला
अंगमेजयत्व -	अंगों का कम्पन
एकतत्वाभ्यास -	एकतत्व अर्थात ईश्वर
मुदिता -	प्रसन्नता
वीतराग -	राग द्वेश समाप्त वाला साधक
यथाभिमत -	जिसको जैसा अभिमत हो
समाप्ति -	समाधि, कैवल्य

ईश्वर प्राणिधान - सर्वत्र ईश्वर का बोध

ताप - दु:ख

महत् - बुद्धि

हेय - संसार

हेयहेतु - अविद्या

हान - मोक्ष का उपायभूत

दृष्टा - आत्मा

दृश्य - प्रकृति

भूत - संसार

योगांग - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि

प्रत्याहार - इन्द्रिय संयम

शुक्ल - पुण्य

कृष्ण - पाप

अशुक्लाकृष्ण - पुण्य पाप रहित

पराकाष्ठा - अन्तिम स्थिति

परमपद - अन्तिम पद अर्थात समाधि की प्राप्ति

अधिष्ठान - शरीर

कर्ता - जीवात्मा

करण - इन्द्रिय

तत्वज्ञान - आत्मा का ज्ञान

स्थैर्य - स्थिरता

लाघव - हल्कापन

कुण्डलिनी - एक सुप्त शक्ति, जिसके पर्यायवाची है – भुजंगी, ईश्वरी, अरूंधती, कुटिलांगी।

धौति - धोना, सफाई करना

सार - तत्व

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.

क. महर्षि पतंजलि ख. चार ग. 51 घ. समाधि प्रज्ञा

2.

क. असत्य ख. असत्य ग. असत्य घ. सत्य

3.

क. अ ख. स

4.

क. 18 ख. भीष्म ग. 700 घ. साख्य योग

5. क. स्वात्माराम सुरी ख. 15 ग. 8 घ. कुम्भक

6. क. राजा चण्डिकापालि ख. 7

7. क. असत्य ख. सत्य ग. सत्य घ. असत्य ड. असत्य

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महर्षि पतंजलि – पातंजल योग सूत्र (2001) – गीता प्रेस गोरखपुर

2. महर्षि व्यास – (2003) भगवद्गीता- गीताप्रेस गोरखपुर

3. स्वात्मा राम सुरी (2001) हठप्रदीपिका कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग, मन्दिर समिति लोनावाला

4. महर्षि घेरण्ड - घेरण्ड संहिता (2003) कैवल्यधाम लोनावाला

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. योगसूत्र के साधनपाद की विषयवस्तु पर प्रकाश डालिए।

2. भगवदगीता की विषयवस्तु को स्पष्ट कीजिए।

3. हठप्रदीपिका के वर्ण्य विषयों को सविस्तार समझाइये ।

4. घेरण्ड संहिता में वर्णित सप्त साधनों की सुदीर्घ व्याख्या कीजिए।

इकाई- 4 ज्ञानयोग एवं कर्मयोग

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 ज्ञानयोग

4.3.1 वहिरंग साधना
4.3.2 अंतरंग साधना

4.4 कर्मयोग

4.4.1 कर्म के भेद

4.4.2 गीता के अनुसार कर्म

4.4.3 योगसूत्र के अनुसार कर्म

4.4.4 वेदान्त के अनुसार कर्म

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

वर्तमान में योग की अनेको पद्धतियॉ प्रचलित है। सभी पद्धतियों के मूल में एक ही भाव अन्तर्निहित है कि आत्मकल्याण कर परमलक्ष्य को प्राप्त करना। इस संसार में प्रचलित मत-मतान्तरों व दार्शनिक-सम्प्रदायों में विभिन्नता होने के कारण सबने अपने अलग-अलग मार्ग चुन लिए तथा प्रकारान्तर में एक सम्प्रदाय उस साधना पद्धति के लिए तैयार कर दिया। यह सर्वविदित है कि इस संसार में सबकी रूचि एक जैसी नहीं होती। अत: जो व्यक्ति या साधक जिस साधना पद्धति को सरलता से ग्रहण कर सके वही अपनाना उचित होगा। यही विचार योग की विभिन्न पद्धतियों के मूल में निहित प्रतीत होता है। पाठकों जिस प्रकार समुद्र में सारी नदियॉ समाहित होकर एक हो जाती है उसी प्रकार ज्ञान, कर्म, भक्ति, राजयोग इत्यादि नदियॉ उस परम ब्रहम में एकाकार हो जाती है उस परम ब्रहम में एकाकार होने का नाम ही योग है।

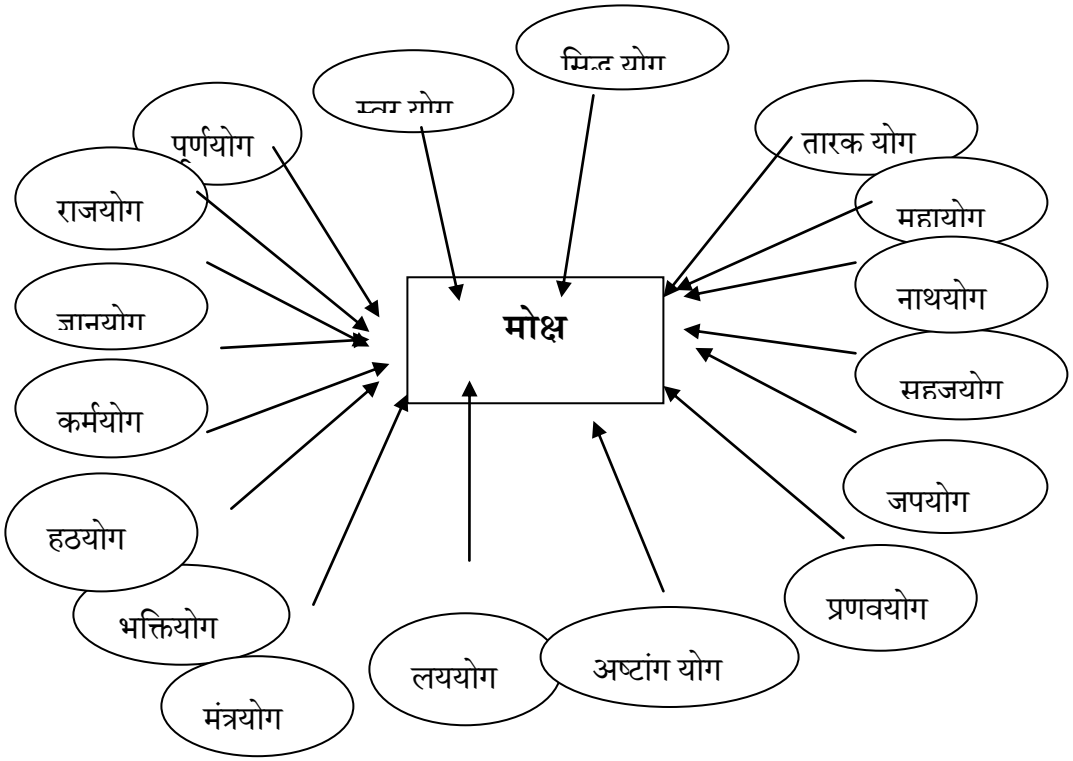

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको योग की दो परम्पराओं ज्ञानयोग एवं कर्मयोग की संक्षिप्त जानकारी देना है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आपको निम्नलिखित तथ्यों का ज्ञान हो जायेगा।

- ज्ञानयोग योग की महत्वपूर्ण शाखा है।
- ज्ञानयोग के दो महत्वपूर्ण साधन है।
- कर्मयोग से भी समाधि सिद्धि की जा सकती है।
- कर्म संस्कारों के विद्यमान रहते मनुष्य को कैवल्य की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

4.3 ज्ञानयोग

ज्ञान व विज्ञान की धारायें वेदों में व्याप्त है सभी धर्मो के मूल वेद ही हैं। वेद का अर्थ ज्ञान के रूप में लेते है 'ज्ञान' अर्थात् जिससे व्यष्टि व समष्टि के वास्तविक स्वरूप का बोध होता है। ज्ञान, विद् धातु से व्युत्पन्न शब्द है जिसका अर्थ किसी भी विषय, पदार्थ आदि को जानना या अनुभव करना होता है। ज्ञान की विशेषता व महत्त्व के विषय में बतलाते हुए कहा गया है-

''ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा''

अर्थात् जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है उसी प्रकार ज्ञान रूपी अग्नि, कर्म रूपी ईंधन को भस्म कर देती है। ज्ञानयोग साधना पद्धति, ज्ञान पर आधारित होती है इसीलिए इसको ज्ञानयोग की संज्ञा दी गयी है। ज्ञानयोग पद्धति में योग का बौद्धिक और दार्शनिक पक्ष समाहित होता है।

ज्ञानयोग 'ब्रह्मसत्यं जगतमिथ्या के सिद्धान्त के आधार पर संसार में रह कर भी अपने ब्रह्मभाव को जानने का प्रयास करने की विधि है। जब साधक स्वयं को ईश्वर (ब्रह्म) के रूप में जान लेता है- 'अहं ब्रह्मास्मि' का बोध होते ही वह बंधनमुक्त हो जाता है। उपनिषद मुख्यतया इसी ज्ञान का स्रोत हैं। ज्ञानयोग साधना में अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम शरीर व मन को महत्व दिया गया है। ज्ञान योग के दो महत्वपूर्ण साधन है। ज्ञानयोग के साधनों को स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती ने इस प्रकार बताया है।

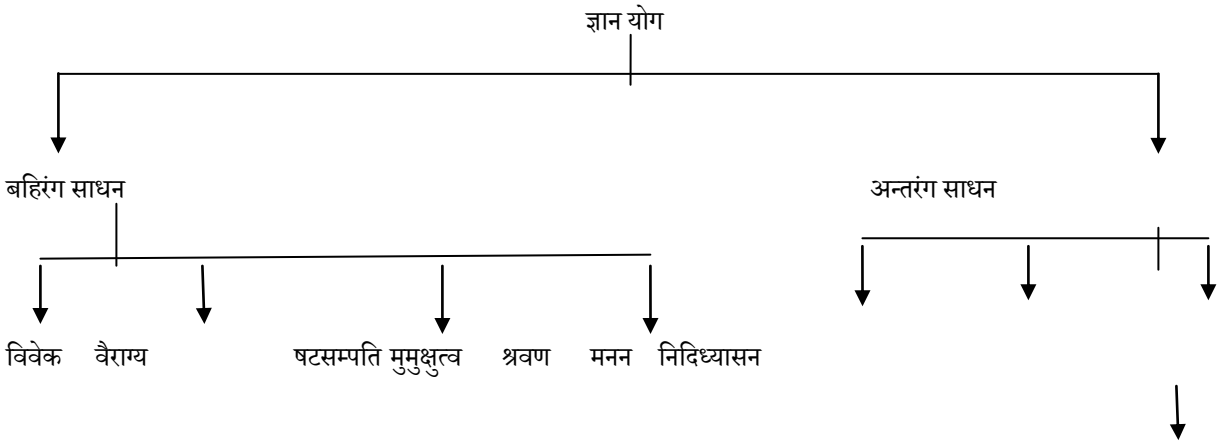

1.शम
2. दम
3. उपरति
4. तितिक्षा
5. श्रद्धा
6. समाधान

1. यम
2. नियम
3. त्याग
4. मौन
5. देश
6. काल
7. आसन
8. मूलबन्ध
9. देह स्थिति
10. दृक् स्थिति
11. प्राणायाम
12. प्रत्याहार
13. धारणा
14. ध्यान
15. समाधि

4.3.1 बहिरंग साधन :- बहिरंग का अर्थ है बाहर के या प्रारम्भिक। ज्ञान योग के निम्न 4 प्रारंभिक साधन बताये है।

क. विवेक :- विवेक एक जाना-पहचाना शब्द है नित्य और अनित्य का ज्ञान ही विवेक है साधक यदि विवेकानुसार कार्य करता है तो समझ लेना चाहिए कि उसे ज्ञान की प्राप्ति हो गई। व्यक्ति अज्ञान के कारण ही अनित्य कर्म करता है और जिस कारण जन्म जन्मान्तरों तक उसके फलों का भोग करना पड़ता है। आचार्य रामानुजाचार्य खाद्य तथा अखाद्य के विवेक पर बल देते हैं। भोजन के दोषों को मध्यनजर रखते हुए ही खाद्य पदार्थो का सेवन करना चाहिए तभी व्यक्ति अपने अभिष्ठ की प्राप्ति कर सकता है। व प्रिय पाठकों स्मरण रखने योग्य बात है तामसिक वस्तुओं का सेवन शरीर व मन दोनों के लिए अच्छा

नहीं है, इनके सेवन से कभी भी परमात्मा का मिलन नहीं हो सकता। ध्यान रहे जिस व्यक्ति ने विवेक का सहारा लिया उसका पतन कभी नहीं हो सकता। अभी तक अपने इस लौकिक संसार के प्रति विवेक को समझा अध्यात्मिक तथा यौगिक दृष्टि के अनुसार नित्य व अनित्य का ज्ञान विवेक है। नित्य वस्तु एकमात्र ब्रहम है, ब्रहम के अलावा समस्त संसार झूठा है। कहा भी गया है कि

'ब्रहमसत्यं जगतमिथ्या'

ख. वैराग्य :- भारतीय चिन्तन में वैराग्य एक जाना-पहचाना शब्द है। जिस व्यक्ति को कोई राग नहीं वह वैराग्य है। तथा चाह व्यक्ति को दो प्रकार की हो सकती है –

1. इस संसार के ऐश्वर्यो की
2. स्वर्गीय सुख भोगों को भोगने की

असली वैराग्य वह है जो इन दोनों इच्छाओं से परे हो। अर्थात् इस लोक और स्वर्ग आदि लोकों के भोगों की इच्छा का परित्याग कर देना वैराग्य है।

ग. षट सम्पत्ति :- षट् का अर्थ है छ: और सम्पत्ति का अर्थ है साधन ये इस प्रकार है।

1. शम :- शम का अर्थ है इन्द्रियों का निग्रह कर लेना। मनुष्य की 11 इन्द्रियॉ मानी जाती है जिसमें 5 ज्ञानेन्द्रिय 5 कर्मेन्द्रिय और एक मन। वैसे शम का अर्थ इन्द्रिय के निग्रह के रूप में लेते है परन्तु मन एक ऐसी इन्द्रिय है जो स्वभाव से बड़ी चंचल है वायु से भी तेज गति से चलती रहती है इस इन्द्रिय पर नियन्त्रण करना मुश्किल जरूर पर असम्भव नहीं हैं। कहा गया है।

शमो नाम अन्तरिन्द्रिनिग्रह:

अन्तरिन्द्रिय नाम मन:

तस्य निग्रह: ।।

इसलिए शम का तात्पर्य है इस अन्तरिन्द्रिय मन का निग्रह कर लेना।

भगवद् गीता में कहा है –

असंशयं महावाहों मनोदुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येन च गृह्यते

अर्थात

हे महाबाहो अर्जुन। निश्चय ही मन बड़ा चंचल है परन्तु अभ्यास और वैराग्य द्वारा इसे वश में किया जाता है।

योगसूत्र में भी चित्त की वृत्तयों के निरोध के लिए अभ्यास व वैराग्य नामक दो साधनाये बताई गयी है।

2. दम:- दम का अर्थ है दमन करना 10 इन्द्रियों के उनके विषयों से अलग करने की विद्या दम है। जिस प्रकार एक घुड़सवार लगाम खींचकर घोड़े पर काबू कर लेता है तथा अपने अनुसार उसे मार्ग पर ले जाता है ठीक उसी प्रकार जब हमारी इन्द्रियॉ इधर-उधर गमन करें तो दम रूपी लगाम से हमको विषयों से अलग करें। मन को इसी प्रकार ब्रहमचिन्तन में लगाये रखने की विद्या दम है ।

3. उपरति :- किसी वस्तु की प्राप्ति हो जाने पर उदासीन भाव धारण करना उपरति है। संसार की विषय वस्तुओं के प्रति कोई आसक्ति नहीं रखना उपरति है। जगद् की वस्तुओं के प्रति राग-रहित होकर अपने-अपने धर्म में तत्पर रहना भी उपरति कहलाता है।

4. तितिक्षा :- तितिक्षा का शाब्दिक अर्थ है सहनशीलता समस्त दृन्दों को सहन करते हुए अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधना में निरन्तर रत रहना तितिक्षा है। लाभ-हानि, जय-पराजय, सुख-दु:ख, शीत-उष्ण आदि दृन्दों को सामान्य रूप से सहन कर लेना तितिक्षा है। जब साधक कोई तप करता है तो जरूरी है कि वे सारे दृन्दों को सहन करे कहा भी गया है-

तपो द्वन्द्व सहनम्

अर्थात् द्ववन्द (सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास) को सहन कर लेना तप है। महर्षि पतंजलि ने साधन-पाद में कहा है।

कायेन्द्रियशिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपस:

2/43 योगसूत्र

अर्थात् तप करने से जब अशुद्धि का क्षय हो जाता है तब शरीर तथा इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है और यह सब तितिक्षा से ही सम्भव है।

5. श्रद्धा :- प्राचीन आर्ष ग्रन्थों, (वेद, उपनिषदों, पुराणों स्मृतियों, आरण्यको, गीता, योगसूत्र) तथा गुरू वाक्यों में दृढ़ निष्ठा एवं अटल विश्वास का नाम श्रद्धा है। श्रद्धा का दूसरा नाम आस्था भी है। प्रिय विद्यार्थियों जो व्यक्ति श्रद्धा रहित रहता है उसे ब्रहमज्ञान की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। कहा गया है- 'संशयात्मा विनश्यति' अर्थात जो संशयआत्मा है उसका विनाश होता है। अत: योगी को चाहिए संशय रहित होना चाहिए। महर्षि पतंजलि ने चित्त विक्षेपों में संशय को विघ्न माना है। अत: गुरूवाक्यों और प्राचीन आर्ष ग्रन्थों की वैज्ञानिकता मनोवैज्ञानिकता तथा दार्शनिकता पर संशय न करते हुए श्रद्धा रखनी आत्म कल्याण के लिए आवश्यक है।

6. समाधान :- चित्त की एकाग्रता समाधान है चित्त स्वभाव से चंचल है क्योंकि चित्त में वृत्तियॉ विक्षेप हमेशा विद्यमान रहते है। यौगिक अभ्यासों (जिसमें पतंजलि ने अभ्यास वैराग्य, चित्त प्रसादन के उपाय बताये है) के द्वारा चित्त को एकाग्र करें तथा चित्त को ब्रहम में स्थिर किये रखना ही समाधान है।

घ. मुमुक्षत्व :- मोक्ष प्राप्ति की इच्छा रखना मुमुक्षत्व कहलाता है। और इस संसार में सभी वस्तुएँ अनित्य है तथा यह संसार की प्रत्येक वस्तु में दु:ख भरा पड़ा है। समस्त भौतिक पदार्थो से विरक्त रहकर मोक्ष प्राप्ति की इच्छा रखना मुमुक्षत्व है।

4.3.2 अन्तरंग साधन :- अन्तरंग साधना के निम्न तीन भेद है जो इस प्रकार है -

1. श्रवण :- अर्थात सुनना। वेदवाक्यों को सुनना। संशयरहित होकर गुरूमुख से प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में वर्णित साधनाओं तथा ब्रहमज्ञान को सुनना श्रवण कहलाता है।

2. मनन :- श्रवण की गई बातों को बारम्बार मन में लाना मनन कहलाता है। गुरू के मुख से कैवल्य विषयक सुनी गयी विषय को अन्त:करण में बैठाकर बार-बार चिन्तन करना मनन कहलाता है।

3. निदिध्यासन :- निदिध्यासन का अर्थ है अनुभूति करना या आत्मसाक्षात्कार करना। वेदान्त दर्शन में निदिध्यासन को योग माना गया है। स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती द्वारा वर्णित पुस्तक योग विज्ञान में निदिध्यासन के निम्नलिखित 15 अंग बताये है :-

1. यम :- इन्द्रियों को वश में कर यह अनुभव करना कि यह सब ब्रहम है यम कहलाता है।

2. नियम :- सजातीय वृत्ति का प्रवाह और विजातीय वृत्ति का तिरस्कार यही परमानन्द रूप नियम है।

3. त्याग :- समस्त संसार को झूठ मानते हुए यह समझा जाय कि ब्रहम ही सत्य है। इस प्रकार का ज्ञान करने से जगतरूप प्रपंच का त्याग हो जाता है। यही त्याग है।

4. मौन :- जिसे न पाकर मन सहित वाणी आदि इन्द्रियों लौट आती हों और तुष्णीभूत हो जाती हो वही योगियों का मौन है।

5. देश :- अन्त:करण के अन्दर एक एकान्त क्षेत्र (देश) में मन को लगाना।

6. काल :- अखण्ड स्वरूप अद्वितीय ब्रहम में नित्य बुद्धि रखना काल है।

7. आसन :- जिस अवस्था में बैठकर ब्रहम का चिन्तन किया जाये तो उसे आसन समझना चाहिए। चार महत्वपूर्ण ध्यान के आसन है - सिहासन, पद्मासन, स्वस्तिकाआसन, सुखासन।

8. मूलबन्ध :- जो समस्त भूतों का मूल है उसमें जब चित्त को बॉध दिया जाता है तो यही मूल बन्ध कहलाता है। व स्मरण रहे कि हठयोग में मूलबन्ध अलग बताया गया है।

9. देह स्थिति :- जब मन ब्रहम में एकाग्र हो जाता है तो उस समय शरीर के अंगों की स्थिति निश्चल हो जाती है और यही देह स्थिति का अभिप्राय है।

10. दृक स्थिति :- दृष्टि को ज्ञानमयी बना करके जगत को ब्रहममय देखें तो यही दृक स्थिति कहलाती है।

11. प्राणायाम :- श्वास भरते हुए अनुभव करे कि में ही ब्रहम हूँ। जिसे पूरक कहते है। उस वृत्ति की निश्चल स्थिति का नाम कुम्भक प्राणायाम है और जगत रूप प्रपंच का निषेध यानि अभाव वृत्ति का नाम रेचक प्राणायाम है। इसे ही ज्ञानयोगी प्राणायाम कहते है।

12. प्रत्याहार :- प्रत्याहार का सामान्य अर्थ इन्द्रिय संयम है। बहिर्मुखी इन्द्रियों को विषयों से हटा कर अन्तर्मुखी बना लेना प्रत्याहार है।

13. धारणा :- किसी देश विशेष में चित्त को बॉध लेना धारणा है। जहॉ भी मन चला जाये वहॉ पर ब्रहम दृष्टि करके मन को लगा देना धारणा है।

14. ध्यान :- धारणा की उच्च अवस्था ध्यान है। निश्चय ही मैं सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रहम से अभिन्न हूँ, इस सद्वृत्ति को रखना ध्यान है।

15. समाधि :- ध्यान की परिपक्व अवस्था समाधि है। समाधि की अवस्था में अपना भी आभास नहीं रहता और स्वरूप शून्य हो जाता है यह समाधि है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. एक शब्द में उत्तर दीजिए

क. ज्ञानयोग के कितने साधन बताये है।

ख. नित्य और अनित्य का ज्ञान क्या कहलाता है।

ग. तीनों द्वन्दों को सहन करना क्या कहलाता है।

घ. धारणा की उच्च अवस्था का क्या नाम है।

4.4 कर्मयोग

कर्म शब्द कृ धातु से बनता है। कृ धातु में 'मन' प्रत्यय लगने से कर्म शब्द की उत्पत्ति होती है। कर्म का अर्थ है क्रिया, व्यापार, भाग्य आदि। हम कह सकते हैं कि जिस कर्म में कर्ता की क्रिया का फल निहित होता है वही कर्म है।

कर्म करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। तथा कर्म के बिना मनुष्य का जीवित रहना असम्भव है। कर्म करने की इस प्रवृत्ति के संबन्ध में गीता में कहा गया है-

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। (गीता **3@5)**

अर्थात् इस विषय में किसी भी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता कि मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता, क्योंकि सभी मानव प्रकृतिजनित गुणों के कारण कर्म करने के लिए बाध्य होते हैं। मनुष्य को न चाहते हुए भी कुछ न कुछ कर्म करने होते हैं और ये कर्म ही बन्धन के कारण होते हैं। साधारण अवस्था में किये गये कर्मों में आसक्ति बनी रहती है, जिससे कई प्रकार के संस्कार उत्पन्न होते हैं। इन्हीं संस्कारों के कारण मनुष्य जीवन-मरण के चक्र में फंसा रहता है। जबकि ये कर्म यदि अनासक्त भाव से किये जाते हैं तो यह मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बन जाते हैं।

कर्म से व्यक्ति बंधन में बंधता है किन्तु गीता ने कार्य में कुशलता को योग कहा है। योग की परिभाषा देते हुए गीता में कहा है- **"**योगः कर्मसु कौशलम'' (गीता 2@50)

अर्थात् कर्मों में कुशलता ही योग है। कर्मयोग साधना में मनुष्य बिना कर्म बंधन में बंधे कर्म करता है तथा वह सांसारिक कर्मों को करते हुए भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

कर्मयोग का गूढ़ रहस्य अर्जुन को बताते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन ! शास्त्रों के द्वारा नियत किये गये कर्मों को भी आसक्ति त्यागकर ही करना चाहिए क्योंकि फलासक्ति को त्यागकर किये गये कर्मों में मनुष्य नहीं बंधता। इसीलिए इस प्रकार वे कार्य मुक्तिदायक होते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि फल की इच्छा का त्याग करने पर कर्मों की प्रवृत्ति नहीं रहेगी, जबकि ऐसा नहीं है क्योंकि कर्म तो कर्तव्य की भावना से किये जाते हैं तथा यही कर्मयोग भी सीखाता है।

कर्मयोग की साधना में अभ्यासरत साधक धीरे-धीरे सभी कर्मों को भगवान को अर्पित करने लगता है, और साधक में भक्ति भाव उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्था में साधक जो भी कर्म करता है वह परमात्मा को अर्पित करते हुए करता है। साधक परमात्मा में अपनी श्रद्धा बनाए रखते हुए उत्साह के साथ कर्म करता है। इस सम्बन्ध में गीता में कहा गया है-

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।। (गीता **9@27)**

अर्थात् हे अर्जुन! तू जो भी कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दानादि देता है, जो तप करता है, वह सब मुझको अर्पण कर।

ईश्वर के प्रति समर्पित कर्म व उसके फल सम्बन्ध को बताते हुए कहा गया है-

'ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।

लिप्यते न स पापेन पद्मपत्र मिवाम्भसा।।' गीता 5@10

अर्थात् ब्रह्म को अर्पित करके अनासक्ति पूर्वक कर्म करने वाला उसके फल से वैसे ही अलग रहता है जैसे जल में कमल का पत्ता।

कर्मयोग की साधना में रत व्यक्ति में उच्च अवस्था की स्थिति आने पर स्वयं कर्ता की भावना समाप्त हो जाती है। इस अवस्था में साधक अनुभव करता है कि मेरे द्वारा जो भी कर्म किये जा रहे हैं, उन सबको करने वाले ईश्वर ही हैं। इस प्रकार से साधक कर्म करता हुआ भी बंधन से मुक्त रहता है। उसके द्वारा किये गये कर्म से किसी भी प्रकार के संस्कार उत्पन्न नहीं होते। इस प्रकार के कर्म मुक्ति को दिलाने वाले होते हैं।

कर्मयोग की साधना से साधक के लौकिक व पारमार्थिक दोनों पक्षों का उत्थान होता है। कर्मयोग के मार्ग से ही साधक गृहस्थ जीवनयापन करते हुए भी साधना कर सकता है तथा मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

4.4.1 कर्म के भेद :- प्रिय विद्यार्थियों अभी तक आपने कर्म शब्द की उत्पत्ति के साथ-साथ निष्काम कर्म के बारे में जाना और यह भी समझा कि अपने समस्त कर्मो को भगवान में अर्पित कर देना चाहिए। अक्सर कई योग साधकों के मन में प्रश्न उठते है कि

- कर्म के भेद कौन-कौन से है।
- क्या पूजा-पाठ, सन्ध्या भी कर्म है।
- निषिद्ध कर्म क्या है।
- विहित कर्म क्या है।
- भगवत गीता में कितने प्रकार के कर्म बताये है।

अगले पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के बाद आप निश्चित रूप से उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जानने में सक्षम हो जायेंगे।

कर्म मुख्य रूप से दो प्रकार के होते है :-

क. विहित कर्म

ख. निषिद्ध कर्म

क. विहित कर्म :- विहित कर्म अर्थात अच्छे कर्म, सुकृत कर्म। विहित कर्म के भी चार भेद है :-

विहित कर्म

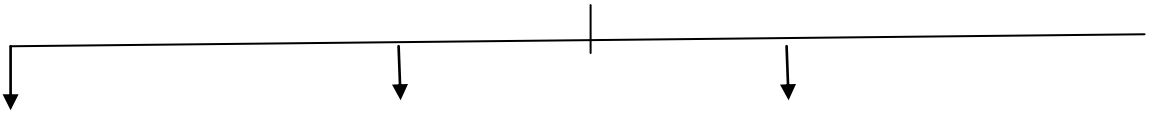

नित्य कर्म नैमित्तिक कर्म काम्यकर्म प्रायश्चित कर्म

(अ) नित्य कर्म :- नित्यकर्म कर्म का अर्थ है, प्रतिदिन किये जाने वाला कर्म जैसे सन्ध्या, पूजा, अर्चना, वन्दना इत्यादि।

ब. नैमित्तिक कर्म :- जो कर्म किसी प्रयोजन के लिए किये जाते है उदाहरणार्थ, किसी त्योहार या पर्व आ जाने पर अनुष्ठान किसी की मृत्यु हो जाने पर श्राद्ध, तर्पण इत्यादि, जैसे पूत्र के जन्म होने पर जातकर्म, बड़े होने पर यज्ञोपवीत इत्यादि।

स. काम्य कर्म :- ऐसे कर्म जो किसी कामना या किसी प्रयोजन के लिए किये जाते है। जैसे नौकरी प्राप्ति के लिए, पूत्र की प्राप्ति के लिए, स्वर्ग की प्राप्ति के लिए यज्ञ, वर्षा को रोकने के लिए, अकाल पड़ने पर वर्षा करने के लिए हवन या अनुष्ठान, पुण्यफल की प्राप्ति की इच्छा के लिए दान इत्यादि ये काम्य कर्म है।

द. प्रायश्चित कर्म :- प्रायश्चित कर्म जैसा कि नाम से स्पष्ट होता है कि अगर व्यक्ति से कोई अनैतिक काम या पाप हो जाये तो उसके प्रायश्चित के लिए वो जो कर्म करता है उसके प्रायश्चित कर्म कहते है तथा जन्म-जन्मान्तरों के पापों का क्षद करने के लिए तपचर्यादि इत्यादि –

प्रायश्चित कर्म कहलाते है।

ख. निषिद्ध कर्म :- निविद्ध कर्म अर्थात जो कर्म शास्त्र के अनुकूल नहीं है, चोरी, हिंसा, झूठ, व्याभिचार इत्यादि कर्म निषिद्धकर्म है। पाठको हम जो भी कर्म करते है हमारा मन (आत्म तत्व) उसे करने या न करने के लिए प्रेरित करता है कोई व्यक्ति उस आत्मा की आवाज के अनुसार कर्म करता है और कोई अनसुना करता है। अगर आत्मा की आवाज अर्थात परमेश्वर का भय न करते हुए हम जो कर्म करते है वह निषिद्ध कर्म है।

4.4.2 गीता के अनुसार कर्म :- भगवदगीता में तीन प्रकार के कर्म बताये है जो इस प्रकार है -

क. कर्म :- शास्त्र के अनुकूल, वेदों के अनुकूल किये गये कर्म।

ख. अकर्म :- अकर्म का अर्थ है कर्म का अभाव यानि तुष्णीभाव।

ग. विकर्म :- अर्थात जो निषिद्ध (पाप) कर्म है वह विकर्म है।

4.4.3 योग सूत्र के अनुसार कर्म :- महर्षि पतंजलि ने कैवल्यपाद के सातवें सूत्र में कर्म के भेद बताये है।

कर्माशुक्लाकष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्

योगसूत्र 4/7

अर्थात शुक्लकर्म, कृष्णकर्म, शुक्लकृष्णकर्म, तथा अशुक्लाकृष्णकर्म ये कर्म के चार भेद है :-

क. शुक्लकर्म :- जो कर्म श्रेष्ठ है अर्थात वेदों में बताई गई विद्याओं के आधार पर जो कर्म किये जाते है। इस शुक्ल कर्म से स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है।

ख. कृष्णकर्म :- जो कर्म पाप कर्म है उन्हें कृष्णकर्म कहा है। अर्थात शास्त्रविरूद्ध पापकर्मो को कृष्णकर्म कहा गया है। इन कृष्णकर्मो से दु:ख तथा नरक की प्राप्ति होती है तथा इन कर्मो के फलों को जन्म जन्मान्तर तक भोगना पड़ता है।

ग. शुक्लकृष्णकर्म :- ऐसे कर्म जो पाप व पुण्य के मिश्रण हो। कहा गया है कि शुक्लकृष्णकर्म से पुन: मनुष्य को जन्म की प्राप्ति होती है।

घ. अशुक्लाकृष्णकर्म :- जो न तो पाप कर्म हो न पुण्य कर्म और न पाप-पुण्य मिश्रित कर्म हो इन सब से भिन्न ये कर्म निष्काम कर्म है क्योंकि ये कर्म किसी भी कामना के नहीं किये जाते है। इन कर्मो को करने से अन्त:करण की शुद्धि होती है। अन्त:करण शुद्ध पवित्र तथा दर्पण की भॉति स्वच्छ छवि वाला निर्मल बन जाता है। शीघ्र ही ऐसे साधक को वास्तविक तत्व ज्ञान (आत्मा के ज्ञान) की प्राप्ति होती है या अन्त में निश्चित उसे कैवल्य की प्राप्ति होती है।

4.4.4 वेदान्त के अनुसार कर्म :- वेदान्त दर्शन में कर्म के तीन भेद बताये गये है:-

क. संचित कर्म :- संचित कर्म का अर्थ है कि पूर्वजन्म में हमने जो अनेको शरीर धारण किये है उन शरीरों में हमने जो कर्म किये वो संचित कर्म कहलाते है। हमारे जन्म–जन्मान्तरों के संस्कार चित्त में संचित पड़े रहते हैं, इन्हीं कर्म-संस्कारों के समूहों को संचित कर्म कहते है।

ख. प्रारब्ध कर्म :- प्रारब्ध कर्म ऐसे कर्म है जो संचित कर्मों में अति प्रबल है ये कर्म इतने बलवान होते है कि कर्मों का फल भोगने के लिए अगले जन्म में जाते है। पाठको यह निश्चित है कि हमारे सुख या दु:ख की उत्पत्ति प्रारब्ध कर्म के अनुसार ही होती है।

ग. क्रियमान कर्म :- इन्हें आगामी कर्म के नाम से भी जाना जाता है। आगामी अर्थात आगे किये जाने वाला कर्म, व्यक्ति ने जिन कर्मो का आरम्भ अभी नही किया है वही आगामी कर्म है जो भविष्य में फल प्रदान करते है। आगामी कर्म मनुष्य के अधीन है इनको चाहे तो हम बना सकते है चाहे तो बिगाड़ सकते है।

अभ्यास प्रश्न

1. सत्य/असत्य बताइये

क. कर्म करना व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

ख. योग: कर्मसु कौशलम् यह योगसूत्र से लिया है।

ग. विहित कर्म के चार भेद है।

घ. कृष्ण कर्म का अर्थ पाप कर्म से है।

ड. वेदान्त के अनुसार कर्म के दो प्रकार है।

4.5 सारांश

योग की अन्तिम पराकाष्ठा समाधि की प्राप्ति हैं। इस समाधि की प्राप्ति के लिए ज्ञानयोग तथा कर्मयोग महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है तथा जब व्यक्ति को वास्तविक ज्ञान हो जाता है तो वह सर्वत्र उस ब्रहम का अनुभव करने लगता है, जिससे समस्त संसार उसे मिथ्या दिखाई देने लगता है तब साधक ज्ञान योग की उच्च पराकाष्ठा की प्राप्ति कर लेता है। कर्मयोग के शास्त्रों में निष्काम कर्म की बात की है। कोई भी व्यक्ति किसी भी काल में बिना कर्म किये नहीं रह सकता है क्योंकि समस्त समुदाय प्रकृति जनित गुणों के द्वारा कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है। कर्म ही बन्धन के कारण है तथा मुक्ति के भी। अगर साधक निष्काम कर्म करे, तो वह निश्चित कर्मयोग की उच्च अवस्था में पहुँचकर आत्मा व परमात्मा का मिलन अवश्य कराता है।

4.6 शब्दावली

अनित्य :- जो नित्य नहीं है जैसे यह संसार व समस्त पदार्थ

राग :- चाह, इच्छा

लोक :- संसार

शम :- इन्द्रियों का निग्रह

चित्त :- मन बुद्धि और अहंकार का सम्मलित रूप्

आरण्यक :- जंगलों में लिखे गये साहित्य

दवन्द :- (सर्दी, गर्मी, वर्षा) ये तीन दवन्द है जो चित्त को असंतुलित करते है।

काया :- शरीर

तितिक्षा :- सहनशीलता

स्मृतियॉं :- स्मृति के आधार पर लिखे साहित्य

मुमुक्षत्व :- मोक्ष प्राप्ति की इच्छा

विहित कर्म :- अच्छे, सुकृत कर्म

काम्य :- कामना, इच्छा

विकर्म :- पाप कर्म

शुक्ल कर्म :- श्रेष्ठ कर्म

कृष्ण कर्म :- पाप कर्म

तत्व ज्ञान :- आत्मा का ज्ञान

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क. दो ख. विवेक ग. तितिक्षा घ. ध्यान

2. क. सत्य ख. असत्य ग. सत्य घ. सत्य ड. असत्य

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. सरस्वती स्वामी विज्ञानानन्द - योग विज्ञान – (2007) योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति ऋषिकेश

2. महर्षि पतंजलि – योग दर्शन (2001) गीताप्रेस गोरखपुर

3. शिवानन्द स्वामी - श्रीमदभगवद्गीता (2005) द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर ऋषिकेश।

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. ज्ञानयोग के अन्तरंग साधनों की सुदीर्घ व्याख्या कीजिए।

2. षटसम्पति क्या है विस्तार पूर्वक समझाइये।

3. कर्मयोग साधना का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

4. कर्मयोग क्या है, योगसूत्र के अनुसार कर्म के भेदों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

इकाई 5 :- भक्तियोग एवं अष्टांग योग

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 भक्तियोग

5.3.1 नवधा भक्ति

5.3.2 रागात्मिका भक्ति

5.3.3 पराभक्ति

5.4 अष्टांग योग

5.4.1 बहिरंग साधन

5.4.2 अन्तरंग साधन

5.5 सारांश

5.6 शब्दावली

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.9 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने योग ज्ञानयोग तथा कर्मयोग के बारे में अध्ययन किया। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि समाधि (कैवल्य) की प्राप्ति के लिए अनेकानेक साधन योग शास्त्रों में बताये गये है। यह साधक की इच्छा है कि वह अपनी रूचि के अनुसार कौन सा मार्ग चुनता है। व साधक भले ही कोई भी मार्ग चुने उसकी साधना की अन्तिम परिणति समाधि की प्राप्ति ही है। प्रस्तुत इकाई में आप भाव प्रधान साधको के लिए वर्णित भक्ति योग तथा अधम कोटि के साधको के लिए अष्टांग योग का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप

- भक्तियोग को विस्तार से समझ सकेंगे।
- नवधा भक्ति की नौ धाराओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- योग के अति महत्वपूर्ण अंग अष्टांग योग के अभ्यासों को समझ सकेंगे।

5.3 भक्तियोग

जिज्ञासु पाठको भक्ति शब्द से आप निश्चित परिचित होंगे। आपने-अपने घर के मन्दिर में, उपासना गृहों में तीर्थो में, लोगों को पूजा पाठ करते देखा होगा। भारतीय चिन्तन में ज्ञान तथा कर्म के साथ भक्ति को कैवल्य प्राप्ति का साधन माना है। आपको कुछ प्रश्न अवश्य उत्तर जानने के लिए प्रेरित कर रहे होंगे जैसे

- भक्ति क्या है?
- भक्ति के भेद क्या है?
- भक्त के क्या कोई प्रकार होते है?
- भक्ति से कैसे समाधि की सिद्धि होती है?

मुझे विश्वास है कि आगामी पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के बाद आपको उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर मिल जायेंगे।

भक्तियोग प्रेम की उच्च पराकाष्ठा है। ईश्वर के प्रति अत्यधिक प्रेम ही भक्ति है जब व्यक्ति संसार के भौतिक पदार्थो से मोह त्यागकर अनन्य भाव से ईश्वर की उपासना करता है तो वह भक्ति कहलाती है।

प्रश्न उठता है कि भक्ति शब्द संस्कृत व्याकरण के किन धातु से बना है।

'भज् सेवायाम्' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर भक्ति शब्द बनता है जिसका अर्थ सेवा, पूजा उपासना और संगतिकरण करना आदि होता है। भक्ति भाव से ओतप्रोत साधक पूर्ण रूप से ब्रह्म] ईश्वर के भाव में भावित होकर सर्वतोभावेन तदरूपता की अनुभूति को अनुभव करता है। इसलिए कहा गया है-

'भक्ति नाम प्रेम विशेषः'

अर्थात् ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम विशेष का नाम ही भक्ति है।

भक्ति योग का मार्ग भावप्रधान साधकों के लिए अधिक उपयुक्त माना गया है। इस मार्ग में साधक का चित्त आसानी से एकाग्र हो जाता है। यह मार्ग अति सरल होने के कारण जनसाधारण में काफी लोकप्रिय व प्रचलित है।

भक्ति योग की परिभाषा देते हुए नारद भक्ति सूत्र में कहा गया है-

'सा तस्मिन् परम प्रेमरूपा'1/2

अर्थात् प्रभु के प्रति परम प्रेम को भक्ति कहते हैं। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में भक्ति को परिभाषित करते हुए कहा गया है-

'सा भक्तिः परानुरक्तिरीश्वरे' 1/2

अर्थात् ईश्वर में परम अनुरक्ति भक्ति है। इस प्रकार प्रभु के प्रति अनन्य प्रेम में डूब जाना भक्ति कहलाता है। जैसा की स्पष्ट हो चुका है कि अपने आराध्य से उत्कट प्रेम का नाम भक्ति है। यह तो निश्चित है कि साधक ईश्वर की भक्ति किसी प्रयोजन से करता है गीता में भक्ति के प्रयोजन को भक्त के भेद के परिपेक्ष्य में आप समझ सकते है।

चतुर्विधा भजन्ते मां जता: सुकृतिनोडर्जुन।

आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।

गीता (7/16)

अर्थात हे भरतवंशी अर्जुन। चार प्रकार के पुण्यशाली मनुष्य मेरा भजन करते है यानि उपासना करते है। वे है आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी।

1. आर्त भक्त :- पाठको अपने मानस पटल पर द्रोपदी के चीर हरण की कहानी को लाइये जब द्रोपदी ने देखा कि दु:सासन द्वारा चीर हरण किया जा रहा है, तो उसने आर्त भाव से भगवान कृष्ण को पुकारा है और भगवान कृष्ण स्वयं उसकी रक्षा के लिए आये। कहने का तात्पर्य है कि आर्त भक्त वो कहलाते है जब वे गम्भीर संकट में फंस जाते है तो वे अपने आराध्य को आर्त भाव से पुकारते है और उसकी शरण में जाते है।

2. जिज्ञासु भक्त :- जिज्ञासु जैसा नाम से स्पष्ट है कि जिज्ञासा रखने वाले अर्थात किसी वस्तु को जानने की इच्छा रखने वाले। अब प्रश्न उठता है कि वह वस्तु क्या है - वह है आत्मा को जानने की इच्छा, ब्रहम को जानने की इच्छा ऐसे भक्त जिज्ञासु भक्त कहलाते है।

उदाहरण के रूप में आप जाने कि एक बार राजा चण्डिकापालि, घेरण्ड ऋषि के आश्रम में जाकर कहने लगें कि तत्व ज्ञान का कारण जो घटस्थ योग है उसके बारे में मुझे बतायें। महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्डिकापालि के प्रश्न की प्रशंसा करते हुए उसे आत्म कल्याण के लिए घटस्थ योग की शिक्षा दी। हम कह सकते है कि राजा चण्डिकापालि जिज्ञासु भक्त थे।

नोट :- स्मरण रहे कि हठयोग की महत्वपूर्ण पुस्तक घेरण्ड संहिता की रचना राजा चण्डिकापालि व घेरण्ड ऋषि के संवाद का प्रतिफल है।

3. अर्थार्थी भक्त :- समस्त संसार के व्यक्ति इस श्रेणी में आते है ऐसे भक्त किसी सांसारिक वस्तु, मकान, जमीन, धन, स्त्री, वैभव, मान-सम्मान, परीक्षाओं में सफलता विवाह के लिए अपने आराध्य को भजते है। ऐसे भक्त अर्थार्थी भक्त कहलाते है।

4. ज्ञानी भक्त :- ज्ञानी भक्त ऐसे भक्त है जो आत्म-कल्याण, ब्रहम की प्राप्ति के लिए अपने आराध्य को भजते है।

उपरोक्त चार प्रकार के भक्तों में ज्ञानी भक्त श्रेष्ठ है।

5.3.1 नवधा भक्ति :- नवधा भक्ति, भक्ति योग का बड़ा महत्वपूर्ण पक्ष है। नौ प्रकार से भगवान की भक्ति की जाती है। भगवत पुराण में कहा है –

श्रवणं, कीर्तनं, विष्णो: स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्य सख्यमात्मनिवेदनम् ।।

अर्थात :- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन दास्य, साख्य और आत्मनिवेदन ये भक्ति के नौ भेद है।

1. श्रवण भक्ति :- परमपिता परमेश्वर, अपने आराध्य ईष्ट के दिव्य गुणों व लीला आदि के विषय में सुनना श्रवण भक्ति कहलाती है।

2. कीर्तन भक्ति :- कीर्तन से आप भली भॉति परीचित होंगे। भगवान के दिव्य गुणों, लीला का गायन इत्यादि के माध्यम से कथन कीर्तन भक्ति कहलाती है।

3. स्मरण भक्ति :- सर्वत्र भगवान का स्मरण करना। अपने आराध्य की लीला, गुणों का निरन्तर अनन्य भाव से स्मरण करना स्मरण भक्ति कहलाती है।

4. पादसेवन भक्ति :- भगवान के चरणों की सेवा करना पाद सेवन भक्ति कहलाती है। यह भक्ति एक तो भगवान के चरणों का चिन्तन करते हुए तथा दूसरी उनकी प्रतिमा में चरणों को धोकर श्रद्धाभाव से साधना करते हुए की जाती है।

5. अर्चन भक्ति :- अर्चन भक्ति का अर्थ है पूजन करना यह पूजन मानसिक रूप से या स्थूल रूप से अपने आराध्य की हो सकती है।

6. वन्दन भक्ति :- भाव भरे मन से भगवान की वन्दना करना वन्दन भक्ति का उदाहरण है। वैदिक ऋचाओं, भक्तों के द्वारा भगवान की स्तुति करना वन्दन भक्ति का उदाहरण है।

7. दास्य भक्ति :- अपने आप को भगवान का दास समझना, अपने आप को भगवान का सेवक समझना दास्य भक्ति का उदाहरण है। जैसे हनुमान जी श्री रामचन्द्र जी के प्रति रखते थे।

8. साख्य भक्ति :- साख्य का अर्थ है मित्र अपने आराध्य को अपना मित्र समझना जैसे सुदामा-कृष्ण, अर्जुन-कृष्ण इस भक्ति के उदाहरण है।

9. आत्मनिवेदन भक्ति :- आत्मनिवेदन भक्ति अपने को भगवान के स्वरूप में अर्पण कर देना कहलाती है।

5.3.2 रागात्मिका भक्ति :- जब नवधा भक्ति अपनी चरम अवस्था में होती है तब रागात्मिका भक्ति की शुरूवात होती है। जब नवधा भक्ति अपनी चरम अवस्था को पार कर जाती है और अन्त:करण में एक अलौकिक भगवत प्रेम भाव उत्पन्न होने लगे तो रागात्मिका भक्ति एक आनुभूतिक अवस्था है। ऐसी अवस्था में साधक अपने आराध्य की झलक का अनुभव कर सकात है। उसे अपने आराध्य दिखाई देने लगते है वह भी सजीव। उनकी झलक वह कभी आसमान में, कभी पेड़ों में, कभी जलाशय में तो कभी अपने मन्दिर में उसको उनकी प्रतिमा सजीव दिखाई देने लगती है।

5.3.3 पराभक्ति :- पराभक्ति रागात्मिका भक्ति की चरम अवस्था है। यह साधक की उत्कृष्ट ओर अन्तिम पराकाष्ठा है। पराभक्ति में द्वैत नहीं रहता है इस अवस्था में उपासक और आराध्य एक हो जाते है और साधक को एक मात्र ब्रहम का साक्षात्कार होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

सत्य/असत्य बताइयें।

1. क. ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम ही भक्ति है।

ख. पराभक्ति, नवधा भक्ति की उच्च अवस्था है।

ग. नवधा भक्ति के 10 भेद बताये गये है।

घ. ब्रहम का साक्षात्कार पराभक्ति से होता है।

ड. रागात्मिका भक्ति में अपने आराध्य की छवि दिखाई देने लगती है।

5.4 अष्टांग योग

अष्टांग योग महर्षि पतंजलि द्वारा रचित व प्रयोगात्मक सिद्धान्तों पर आधारित योग के परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक साधना पद्धति है। महर्षि पतंजलि से भी पूर्व योग का सैद्धान्तिक एवं क्रियात्मक पक्ष विभिन्न ग्रंथों में उपलब्ध था परन्तु उसका स्वरूप बिखरा हुआ था। बिखरे हुए योग के ज्ञान को सूत्र में एक करने का कार्य महर्षि पतंजलि द्वारा ही हुआ है। कहा गया है- चित्त की मलिनता योग शास्त्र के द्वारा, वाणी (पद-वाक्य) की मलिनता (अशुद्धि) व्याकरण शास्त्र के द्वारा और शरीर की मलिनता वैद्यक शास्त्र के द्वारा जो दूर करता है, उस मुनिश्रेष्ठ पतंजलि को मैं अंजलिबद्ध रूप से प्रणाम करता हूँ।

महर्षि पतंजलि ने अपने योगसूत्र नामक ग्रंथ में तीन प्रकार की योग साधनाओं का वर्णन किया है। प्रथम साधना उत्तम कोटि के साधकों के लिए है जिन्हें केवल अभ्यास और वैराग्य के माध्यम से ही समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है।

उत्तम कोटि के साधक ईश्वरप्रणिधान द्वारा भी साधना करके समाधि भाव की प्राप्ति के पश्चात परम लक्ष्य सुगमता से प्राप्त कर सकते हैं। इसी आधार पर सूत्रों में कथन है कि मध्यम कोटि के साधकों के लिए महर्षि पतंजलि ने दूसरे अध्याय में क्रियायोग का वर्णन किया है। क्रिया योग का अर्थ बताते हुए कहा गया है-

तप: स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोग: 2/1

तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान की संयुक्त साधना क्रिया योग कहलाती है। जिसका उद्देश्य समाधि भाव को प्राप्त करना व क्लेशों को क्षीण करना है।

तृतीय प्रकार की साधना सामान्य कोटि के साधकों के लिए है जिनका न तो शरीर शुद्ध है और न ही मन। ऐसे साधकों को प्रारम्भ से ही साधनारत रहते हुए महर्षि पतंजलि द्वारा प्रस्तुत अष्टांगयोग का आश्रय लेना चाहिए। 'अष्टांग' शब्द दो शब्दों के मेल से बना है अर्थात् अष्ट $ अंग, जिसका अर्थ है आठ अंगों वाला। अतः अष्टांगयोग वह साधना मार्ग है जिसमें आठ साधनों का वर्णन मिलता है जिससे साधक शरीर व मन की शुद्धि करके परिणामस्वरूप एकाग्रता भव को प्राप्त कर समाधिस्थ हो जाता है तथा कैवल्य की प्राप्ति कर लेता है। अष्टांग योग के विभिन्न भेद इस प्रकार से है-

5.4.1 बहिरंग योग :- महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग को दो भागों में बॉटा है :-

बहिरंग योग एवं अन्तरंग योग।

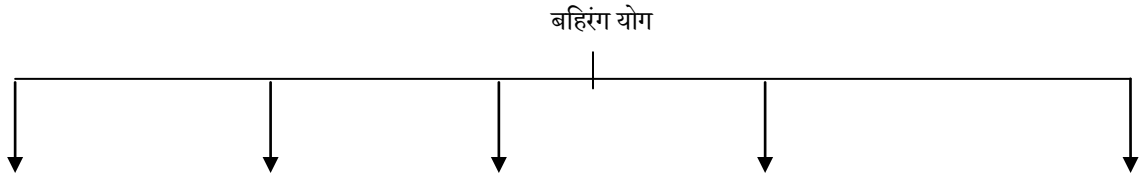

यम :- जो अवांछनीय कार्यों से मुक्ति दिलाता है, निवृति दिलाता है वह यम कहलाता है।

यम की उत्पत्ति संस्कृत के दो धातु से माना गया है।

1. यम उप्रमे 2. यम बंधने

यम उप्रमे :- ब्रहम में रमन करना

यम बंधने :- सामाजिक बंधन।

त्रिशिख ब्रहमणोपनिषद के 29 वें श्लोक में कहा गया है

देह इन्द्रियसु वैराग्य यम इति उच्यते बुधै: ।

अर्थात :- यम शरीर और इन्द्रियों में वैराग्य की स्थिति है ऐसा बुद्धिमान लोग मानते है।

यमयते नियम्यते चित्ति अनेन इति यम: ।

अर्थात :- चित्त को नियम पूर्वक चलाना यम कहलाता है।

पातन्जल योग सूत्र :- यहॉ पांच प्रकार के यमों का वर्णन मिलता है।

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रहमचर्यापरिग्रहा यमा: । 2/30 योग सूत्र

अर्थात :- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रहमचर्य और अपरिग्रह ये पांच यम है। इन्हें सार्वभौम महाव्रत भी कहा गया है। ये महाव्रत तब बनते हैं जब इन्हें जाति, देश, काल तथा समय की सीमा में न बांधा जाये। इसमें सर्वप्रथम अहिंसा है।

क. अहिंसा :- अहिंसा का अर्थ है – सदा और सर्वदा किसी प्राणी का अपकार न करना, कष्ट न देना।

याज्ञवल्क्य संहिता में कहा गया है।

मनसा वाचा कर्मणा सर्वभूतेषू सर्वदा।

अक्लेश जननं प्रोक्तमहिंसात्वेन योगिभि:।।

अर्थात :- मन, वचन एवं कर्म द्वारा सभी जनों को क्लेश न पहुँचाने को ही महर्षि जनों ने अहिंसा कहा है।

व्यासभाव्य :- में व्यास जी ने कहा है कि –

अहिंसा सर्वदा सर्वभूतानामनभिदोह:।

अर्थात :- सभी प्राणियों के प्रति हर प्रकार से विद्रोह भाव का परित्याग करना अहिंसा है।

पातंजल योग सूत्र में अहिंसा के फल के बारे में लिखा है-

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सनिधौ वैरत्याग:। 2/35

अर्थात :- अहिंसा की पूर्णता और स्थिरता होने पर साधक के सम्पर्क में आने वाले सभी प्राणियों की हिंसा बुद्धि दूर हो जाती है। यह अहिंसा का मापदण्ड है।

ख. सत्य :- सत्य का अर्थ है- मन, वचन और कर्म में एकरूपता। अर्थात अर्थानुकूल वाणी और मन का व्यवहार होना, जैसा देखा और अनुमान करके बुद्धि से निर्णय किया अथवा सुना हो, वैसा ही वाणी से कथन कर देना और बुद्धि में धारण करना।

मनुस्मृति :- में कहा है सत्य, मित एवं हित भाषी हों।

सत्यं ब्रुयात प्रियं ब्रुयात मा ब्रुयात सत्यमपियम्

अर्थात :- सत्य बोले, परन्तु प्रिय शब्दों में बोले, अप्रिय सत्य न बोलें। परन्तु प्रिय लगने के लिए असत्य भाषण न करें, ऐसा पुरातन विधान है। जैसे – नेत्रहीन को अन्धा कह देना सत्य है, चोर को चोर कह देना भी सत्य है- किन्तु यह अप्रिय सत्य है।

मुण्डकोपनिषद कहता है :- सत्यमेवजयते नानृतं।

अर्थात :- सत्य की जीत होती है, असत्य की नहीं।

आयुर्वेद चरकसूत्र में कहा गया है-

'ऋतं ब्रुयात्' सत्य बोलना चाहिए।

महाभारत शांतिपर्व :- सत्य बोलना अच्छा है, परन्तु सत्य में भी ऐसी बोली बोलना अच्छा होता है, जिससे सब प्राणियों का वास्तविक हित होता है वह हमारी नजरों मन में सत्य है।

पातन्जल योग सूत्र :- में सत्य के फल के बारे में कहा है –

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलान्जयत्वम्। 2/36

अर्थात :- सत्य की प्रतिष्ठा होने पर वाणी और विचारों में क्रिया फल दान की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसा व्यक्ति जो कुछ भी बोलता है, वह फलित होने लगता है अर्थात वह वाक् सिद्ध हो जाता है।

ग. अस्तेय :- स्तेय का अर्थ है- अधिकृत पदार्थ को अपना लेना। इसे भी बुद्धि वचन और कर्म से त्याग देना अस्तेय है।

शांडिल्योपनिषद के 1/1 श्लोक में कहा गया है-

अस्तेयं नाम मनोवाक् कायकर्मभि: परद्रव्येषु नि:स्पृहता।

अर्थात :- शरीर, मन और वाणी द्वारा दूसरों के द्रव्य की इच्छा न करना अस्तेय कहलाता है।

याज्ञवल्क्य संहिता में कहा गया है :-

मनसा वाचा कर्मणा परद्रव्येषु निस्पृह:।

अस्तेयनिति सम्प्रोक्तं ऋषिभ्ज्ञि: तत्व दर्शिभि:।।

अर्थात :- मन, वचन और कर्म से दूसरे के द्रव्य की इच्छा न करना अस्तेय है। तत्वदर्शी ऋषियों ने ऐसा ही कहा है।

व्यास भाष्य – में महर्षि व्यास लिखते है कि-

स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परत: स्वीकरणम् तत्प्रतिषेध: पुनरस्पृहारूपमस्तेयमिति।

अर्थात :- अशास्त्रीय ढंग से अर्थात् धर्म के विरूद्ध अन्यय पूर्वक किसी दूसरे व्यक्ति के द्रव्य इत्यादि को ग्रहण करना स्तेय है, पर वस्तु में राग का प्रतिषेध होना ही 'अस्तेय' है।

योग सूत्र :- में अस्तेय सिद्धि के विषय में कहा है -

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोप्रस्थानम्। 2/37

अर्थात :- अस्तेय की दृढ़ स्थिति होने पर सर्व रत्नों की प्राप्ति होती है।

घ. ब्रहमचर्य :- मन को ब्रहम या ईश्वर परायण बनाये रखना ही ब्रहमचर्य है। 'वीर्य धारणं ब्रहम्चर्यमू' शरीरस्थ वीर्य शक्ति की अविचल रूप में रक्षा करना या धारण करना ब्रहमचर्य है।

व्यास शाख्य :- महर्षि व्यास ने लिखा है :-

ब्रहमचर्य गुष्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयम:।

अर्थात :- गुप्त इन्द्रिय (उपस्थेन्द्रिय) के संयम का नाम ब्रहमचर्य है।

'शाडिल्योपनिषद में इसकी और सूक्ष्म व्याख्या करते हुए कहते है –

ब्रहमचर्य नाम सर्वावस्थासु मनोवाक काय कर्मभि: सर्वत्तमंथुन त्याग:।

अर्थात :- सभी अवस्था में सर्वत शरीर, मन और वाणी द्वारा मैथुन का त्याग ब्रहमचर्य कहलाता है।

ब्रहमचर्य सिद्ध कर लेने वाले साधकों के संबंध में पातंजल योग सूत्र में कहा गया है-

ब्रहमचर्यप्रतिष्टाया वीर्यलाभ:। 2/38

अर्थात :- ब्रहमचर्य की प्रतिष्ठा होने पर साधक को वीर्य लाभ होता है। वीर्य लाभ होने से साधना के अनुकूल गुण समूह पैदा होते है। जिससे गोणाभ्यासी को आत्मज्ञान प्राप्त होता है।

ड. अपरिग्रह :- संचय वृत्ति का त्याग 'अपरिग्रह' है।

व्यास भाष्य :- विषयानामर्जन रक्षण क्षय, संग, हिंसा दोष दर्शनादस्वीकरणम् अपरिग्रह।

अर्थात :- विषयों के अर्जन में, रक्षण उनका क्षय, उनके संग और उनमें हिंसादि दोष को विषयों को स्वीकार न करना ही अपरिग्रह है।

मनुस्मृति – 2/13

इन्द्रियाणां पसंगेन दोषमृच्छत्य संशयम्।

सन्नियम्य तु तान्येव तत: सिद्धिं नियच्छति।।

अर्थात :- इन्द्रियों के विषयों में आशक्त होने से व्यक्ति नि:संदेह दोषी बनता है परन्तु इन्द्रियों को वश में रखने से विषयों के भोग से पूर्ण विरक्त हो जाता है। ऐसे आचरण से अपरिग्रह की सिद्धि होती है।

पूर्ण अपरिग्रह को प्राप्त साधक में काल-ज्ञान संबंधी सिद्धि आ जाती है, पतन्जलि योग सूत्र का इस संबंध में कथन है –

अपरिग्रहस्थैर्य जन्मकथन्तासम्बोध:। 2/39

अर्थात :- अपरिग्रह के स्थिर होने से जन्म–वृतान्त का ज्ञान प्राप्त होता है। इसका अर्थ हुआ कि पूर्वजन्म में हम क्या थे, कैसे थे। उस जन्म की परिस्थितियॉ ऐसी क्यों हुई एवं हमारा भावी जन्म कब,कहॉ, कैसा होगा। इस ज्ञान का उदय होना अपरिग्रह साधना द्वारा ही सम्भव होता है।

2. नियम :- नियम का तात्पर्य आन्तरिक अनुशासन से है। यम व्यक्ति के जीवन को सामाजिक एवं वाह्य क्रियाओं के सामंजस्य पूर्ण बनाते है और निगम उसके आन्तरिक जीवन को अनुशासित करते हैं।

नियमों के अन्तर्गत शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणीधान आते हैं। अपने जीवन में इस अनुशासन को उत्पन्न और विकसित करना आवश्यक है। योग सूत्र में कहा है -

शौचसन्तोषतप:स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानिणि नियमा:। 2/32

अर्थात :- शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान ये 5 नियम है

क. शौच – शौच का अर्थ है परिशुद्धि, सफाई, पवित्रता। न खाने लायक चीज को न खाना, निन्दितों के साथ संग न करना और अपने धर्म में रहना शौच है। शौच मुख्यत: दो है बाह्य और आभ्यान्तर।

शौच या पवित्रता दो प्रकार की कहीं गई है।

1. बाह्य 2. आभ्यान्तर शौच।

1. बाह्य शौच :- जल व मिट्टी आदि से शरीर की शुद्धि, स्वार्थ त्याग, सत्याचरण से मानव व्यवहार की शुद्धि, विद्या व तप से पंचभूतों की शुद्धि, ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि ये सब बाह्य शुद्धि कहलाती है।

2. आन्तरिक शौच :- अंहकार, राग, द्वेष, ईर्ष्या, काम, क्रोध आदि मलों को दूर करना आन्तरिक पवित्रता कहलाती है।

योग सूत्र :- में इसके फल के विषय में कहा है कि –

शौचात्स्वाङग्.जुगुप्सा परैरसंसर्ग:। 2/40

अर्थात :- शौच की स्थिरता होने पर निजी अंग समूह के प्रति घृणा और परदेह संसर्ग की अनिच्छा होती है।

ख. सन्तोष :- सन्तोष नाम सन्तुष्टि का है। अन्त:करण में सन्तुष्टि व भाव उदय हो जाना ही सन्तोष है।

अर्थात :- अत्यधिक पाने की इच्छा का अभाव ही सन्तोष है।

मनुस्मृति कहती हैं – सन्तोष ही सुख का मूल है। इसके विपरित असंतोष या तृष्णा ही दु:ख का मूल है।

योग सूत्र :- में सन्तोष का फल बताते हैं –

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभ:। 2/42

अर्थात :- चित्त में सन्तोष भाव दृढ़ प्रतिष्ठित हो जाने पर योगी को निश्चय सुख यानी आनन्द प्राप्त होता है।

ग. तप :- अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और योग्यता के अनुसार स्वधर्म का पालन करना और उसके पालन में जो शारीरिक या मानसिक अधिक से अधिक कष्ट प्राप्त हो, उसे सहर्ष करने का ना ही 'तप' है।

तपो द्वन्दसहनम् :- सब प्रकार के द्वन्दों को सहन करना तप है। तप के बिना साधना, सिद्धि नहीं होती है, अत: योग साधना के काल में सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, आलस तथा जड़तादि द्वन्दों को सहन करते हुए अपनी साधना में उसका रहना 'तप' कहा जाता है।

योग सूत्र :- में तप का फल बताते हुए कहा है –

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयान्ततपस:। 2/43

अर्थात :- तप के प्रभाव से जब अशुद्धि का नाश हो जाता है तब शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है। तप के द्वारा क्लेशों तथा पापों का क्षय नाश हो जाने पर शरीर में तो अणिमा महिमादि सिद्धि आ जाती है, और इन्द्रियों में सूक्ष्म व्यवहित अर्थात दूर दर्शन, दूर अवण दिव्य गन्ध, दिव्य रसादि सूक्ष्म विषयों को ग्रहण करने की शक्ति भी आ जाती है। अत: योगी के लिए तप साधना नितांत आवश्यक है।

घ. स्वाध्याय :- स्वाध्याय का तात्पर्य है आचार्य विद्वान तथा गुरूजनों से वेद उपनिषद् दर्शन आदि मोक्ष शास्त्रों का अध्ययन करना। यह एक अर्थ है। स्वाध्याय का दूसरा अर्थ है स्वयं का अध्ययन करना यह भी स्वाध्याय ही है।

योग भाष्य :- 2/1 में महर्षि व्यास जी ने लिखा है -

'स्वाध्याय: प्रणव श्रीरूद्रपुरूषसूक्तादि: मन्त्राणां जप: मोक्ष्य शास्त्राध्ययभ्च'।।

अर्थात :- प्रणव अर्थात ओंकार मन्त्र का विधि पूर्वक जप करना रूद्र सूक्त और पुरूषसूक्त आदि वैदिक मन्त्रों का अनुष्ठान पूर्व जप करना तथा दर्शनोपनिषद एवं पुराण आदि आध्यात्मिक मोक्ष शास्त्रों का गुरूमुख से श्रवण करना अर्थात अध्ययन करना स्वाध्याय है।

पं0 श्री राम शर्मा के अनुसार – अच्छी पुस्तके जीवन देव प्रतिमायें है, जिनकी आराधना से तत्काल प्रकाश और उल्लास मिलता है।

पातंजल योग सूत्र में स्वाध्याय के फलों का वर्णन किया है –

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोग: 2/44

अर्थात :- स्वाध्याय से इष्टदेवता की भलीभांति प्राप्ति (साक्षात्कार) हो जाती है।

शास्त्राभ्यास, मंत्रजप और अपने जीवन का अध्ययन रूप स्वाध्याय के प्रभाव से योगी जिस ईष्ट देव का दर्शन करना चाहता है, उसी का दर्शन हो जाता है।

ड. ईश्वर प्रविधान :- ईश्वर की उपासना या भक्ति विशेष को ईश्वर प्रविधान कहते है।

परमेश्वर के निर्मित अर्पित कर देना ईश्वर प्रविधान है।

अथर्ववेद कहता है – हे वरणीय परमेश्वर । हम जिस शुभ संकल्प इच्छा से आप की उपासना में लगे हुए है आप उसमें पूर्णत: प्रदान करें सिद्धि दें और हमारे समस्त कर्म तथा कर्मफल आप के निमित अर्पित है, इसी का नाम ईश्वर प्रणिधान है।

योग सूत्र – के 1/23 सूत्र में – 'ईश्वरप्रणिधानाद्वा'

अर्थात :- ईश्वर प्राणिधान से समाधि की सिद्धि, शीघ्र होने की बात कही है, और यही बात 2/45 सूत्र में कहा है

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।।

अर्थात :- ईश्वर प्राणीधान से समाधि की सिद्धि हो जाती है। ईश्वर प्रणिधान से ईश्वर की अनुकम्पा होती है। उस अनुभव से योग के समस्त अनिष्ट दूर हो जाते है तब योग सिद्धि में नहीं होता, योगी शीघ्र ही योगसिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

3. आसन :- आसन शब्द संस्कृत भाषा के 'अस्' धातु से बना है जिनका दो अर्थ है। पहला है सीट (Seat) बैठने का स्थान, दूसरा अर्थ शारीरिक अवस्था

शरीर मन और आत्मा जब एक संग और स्थिर हो जाता है, उससे जो सुख की अनुभूति होती है वह स्थिति आसन कहलाती है।

तेजबिन्दुपनिषद में आसन के विषय में कहा है –

सुखेनैव भवेत् यस्मिन्नजस्रं ब्रहमचिन्तनम्।

अर्थात – जिस स्थिति में बैठकर सुखपूर्वक निरन्तर परमब्रहम का चिन्तन किया जा सके उसे ही आसन समझना चाहिए। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है –

योग सूत्र के अनुसार –

''स्थिरसुखमासनम्'' 2/46 यो0सू0

अर्थात :- स्थिर और सुख पूर्वक बैठना आसन कहलाता है।

4. प्राणायाम :- प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है। प्राण + आयाम ।

प्राण का अर्थ होता है, जीवनी शक्ति, आयाम के दो अर्थ है। पहला- नियन्त्रण करना या रोकना तथा दूसरा लम्बा या विस्तार करना।

प्राणवायु का निरोध करना 'प्राणायाम' कहलाता है।

योग सूत्र में प्राणायाम को इस प्रकार प्रतिपादित किया है -
''तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम:। 2/49

अर्थात :- उसकी (आसनों की) स्थिरता होने पर श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक गति के नियमन करना ''प्राणायाम है।

5. प्रत्याहार :- पातंजल योग में प्राणायाम के पश्चात् प्रत्याहार का कथन एवं विवेचन उसकी उपयोगिता की दृष्टि से किया गया है। प्रत्याहार का सामान्य अर्थ होता है, पीछे हटना उल्टा होना, विषयों से विमुख होना। इसमें इन्द्रिया अपने बहिर्मुख विषयों से अलग होकर अन्तर्मुख हो जाती है, इसलिए इसे प्रत्याहार कहा गया है। इन्द्रियों के संयम को भी प्राणायाम कहते है।

त्रिशिखिब्राहनणोपनिषद के अनुसार :-

चित्तस्थ्यान्तर्मुखी भाव: प्रत्याहारस्तु सत्तम्।

अर्थात :- चित्त का अन्तर्मुखी भाव होना ही प्रत्याहार है।

महर्षि पतन्जलि ने प्रत्याहार का लक्षण निम्न प्रकार से प्रतिपादित किया है।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्त स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार:।

अर्थात :- अपने विषयों के साथ इन्द्रियों का संबंध न होने पर, चित्त के स्वरूप का अनुकरण की भांति करना अर्थात् चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाना प्रत्याहार कहलाता है।

प्रत्याहार का फल बतलाते हुए महर्षि पतंजलि लिखते है –

तत: परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्। 2/55 यो0 सू0

अर्थात :- उस प्रत्याहार से इन्द्रियों की सर्वोत्कृष्ट वश्यता होती है अर्थात प्रत्याहार से इन्द्रियां एकदम वशीभूत हो जाती है।

5.4.2 अन्तरंग साधन

महर्षि पतंजलि ने निम्न तीन अन्तरंग साधन बताये है।

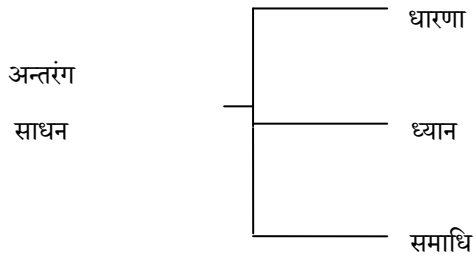

1. धारणा :- महर्षि पतन्जलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग के अन्तरंग यह योग का छठा अंग है। मन (चित्त) को एक विशेष स्थान पर स्थिर करने का नाम 'धारणा' है। यह वस्तुत मन की स्थिरता का घोतक है।

हमारे सामान्य दैनिक जीवन में विभन्न प्रकार के विचार आते जाते रहते है। दीर्घकाल तक स्थिर रूप से वे नहीं टिक पाते और मन की सामान्य एकाग्रता केवल अल्प समय के लिए ही अपनी पूर्णता में रहती है। इसके विपरीत धारणा में सम्पूर्णत: चित्त की एकाग्रता की पूर्णता रहती है।

महर्षि पतन्जलि द्वारा धारणा का निम्न लक्षण बतलाया गया है-

''देशबन्धश्चितस्य धारणा''। 3/1 यो0 सू0

अर्थात :- (बाहर या शरीर के भीतर कही भी) किसी एक स्थान विशेष (देश) में चित्त को बांधाना धारणा कहलाता है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि जब किसी देश विशेष में चित्त की वृत्ति स्थिर हो जाती है और तदाकार रूप होकर उसका अनुष्ठान होंने लगता है तो वह 'धारणा' कहलाता है।

2. ध्यान :- धारणा की उच्च अवस्था ध्यान है – ध्यान शब्द की उत्पत्ति ध्येचित्तायाम् धातु से होती है जिसका अर्थ होता है, चिन्तन करना। किन्तु यहाँ पर ध्यान का अर्थ चिन्तन करना नहीं अपितु चिन्तन का एकाग्रीकरण अर्थात् चित्त को एक ही लक्ष्य पर स्थिर करना।

सामान्य: ईश्वर या परमात्मा में ही अपना मनोनियोग इस प्रकार करना कि केवल उसमें ही साधक निगमन हो और किसी अन्य विषय की ओर उसकी वृत्ति आकर्षित न हो 'ध्यान' कहलाता है। योग शास्त्र के अनुसार जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाना जाये उसी में चित्त का एकाग्र से जाना अर्थात् केवल ध्येय मात्र में एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह चलना, उसके बीच में किसी दूसरी वृत्ति का नहीं उठना 'ध्यान' कहलाता है।

महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र में ध्यान को इस प्रकार प्रतिपादित किया है –

''तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।'' 3/2 यो0 सू0

अर्थात् :- इस देश में ध्येय विषयक ज्ञान या वृत्ति का लगातार एक जैसा बना रहना ध्यान है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिसमें धारणा की गई उसमें चित्त जिस वृत्ति मात्र से ध्येय में लगता है, वह वृत्ति जब इस प्रकार समान प्रवाह से लगातार उदित होता रहे कि कोई दूसरी वृत्ति बीच में न आये उसे 'ध्यान' कहते है।

3. समाधि :- अष्टांग योग में समाधि का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है। साधना की यह चरम अवस्था है, जिसमें समाधि स्वयं योगी का बाह्य जगत् के साथ संबंध टूट जाता है। यह योग की एक ऐसी दशा है, जिसमें योगी चरमोत्कर्ष की प्राप्ति कर मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। और यही योग साधना का लक्ष्य है। अत: मोक्ष्य प्राप्ति से पूर्व योगी को समाधि की अवस्था से गुजरना पड़ता है। योग शास्त्र में समाधि को मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन बताया गया है, योग भाष्य में सम्भवत: इसलिए योग को समाधि कहा गया है। यथा – ''योग: समाधि:'' पातंजालि योगसूत्र में चित्त की वृलियो के निरोध को योग कहा गया है। योगश्चित वृत्ति निरोध:। समाधि अवस्था में भी योगी की समस्त प्रकार की चित्तवृत्तियों निरूद्ध हो जाती है।

महर्षि पतंजलि ने समाधि का स्वरूप निम्न प्रकार से बताया है-

''तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि:।'' 3/3 यो0सू0

अर्थात् :- जब (ध्यान में) केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीती होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है, तब वह (ध्यान ही) समाधि हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न

2. सत्य/असत्य बताये

(क) यम का वर्णन अन्तरंग साधन में मिलता है।

(ख) नियमों की संख्या छ: बताई है।

(ग) धारणा की उच्च अवस्था का नाम ध्यान है।

(घ) अस्तेय की प्रतिष्ठा होने पर सारे रत्नों की प्राप्ति हो जाती है।

5.5 सारांश

भक्तियोग जहॉ एक ओर भाव प्रधान साधको के लिए एक उत्तम साधना पद्धति है, वही दूसरी ओर महर्षि पतंजलि ने सामान्य साधको के लिए अष्टांग-योग को प्रतिपादित किया। भक्तियोग की साधना में साधक ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम रखकर अपने अभिष्ठ की प्राप्ति करता है। साधक भक्तियोग साधना में नवधा भक्ति, रागात्मिका भक्ति या उच्च अवस्था की परा भक्ति का सहारा लेता है। अष्टांग योग में साधक बहिरंग व अन्तरंग साधनों का उपयोग करते हुए आठ सीढ़ियों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि) का उपयोग कर कैवल्य की प्राप्ति करता है। साधना चाहे जो भी हो पर निष्कर्ष निकलता है, कि योग का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है।

5.6 शब्दावली

आराध्य :- ईष्ट, ईश्वर, परमात्मा जिनकी आप पूजा करते है।

अर्थार्थी :- धन, वैभव की इच्छा वाला।

जिज्ञासु :- जानने की इच्छा रखने वाला

अवांछनीय :- गलत, गन्दे

निवृति :- दूर करना, निकालना

मित :- मीठा

ब्रुयात :- बोलना

पुरातन :- प्राचीन

अस्तेय :- चोरी ना करना

सत्य :- इन्द्रिय जनित ज्ञान

शौच :- शुद्धता

स्वाध्याय :- अपना अध्ययन, अच्छी पुस्तकों का अध्ययन

तृष्णा - असंतोष

प्रत्याहार – इन्द्रिय संयम

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क. सत्य	ख. असत्य	ग. असत्य	घ. सत्य
ड. सत्य			
2. क. असत्य	ख. असत्य	ग. सत्य	घ. सत्य

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पातंजल योग प्रदीप – (1999) गीताप्रेस गोरखपुर

2. योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती (2007) योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति ऋषिकेष

5.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. नवधा भक्ति की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

2. योग के अन्तरंग पक्षों की विस्तारपूर्वक चर्चा करें।

3. अष्टांग योग क्या है। बहिरंग पक्षो की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

4. सिद्ध कीजिए कि यम व नियम योग की आधारशिला है।

5. टिप्पणी लिखिए

क. भक्तियोग ख. अष्टांग योग

इकाई 6 :- प्रमुख योगियों के जीवन परिचय – महर्षि पतंजलि, गोरक्षनाथ, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, कुवल्यानन्द

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 महर्षि पतंजलि का जीवन परिचय
6.4 गोरक्षनाथ का जीवन परिचय
6.5 महर्षि दयानन्द का जीवन परिचय
6.6 स्वामी विवेकानन्द का जीवन परिचय
6.7 श्री अरविन्द का जीवन परिचय
6.8 स्वामी कुवल्यानन्द का जीवन परिचय
6.9 सारांश
6.10 शब्दावली
6.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.13 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भारतवर्ष की इस शस्य श्यामला धरा पर समय-समय पर अनेकानेक महापुरूषों, योगियों का अवतरण हुआ है। इन योगियों ने अपने जीवन के कुछ ही क्षणों में कुछ ऐसा कर दिया जिससे इनका नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है। इन योगियों द्वारा प्रतिपादित योग-साधना वर्तमान तनाव व रोगों से भरी दुनिया में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। प्रस्तुत इकाई में भारतवर्ष के कुछ प्रमुख योगियों का जीवन दर्शन आपके समक्ष आत्मसात् करने हेतु रखा जा रहा है।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप

- महर्षि पतंजलि के जीवनवृत्त का अध्ययन करेंगे।
- महायोगी गोरक्षनाथ के जन्म की दन्तकथा तथा इनकी योगसाधना को जान सकेंगे।
- आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द के जीवन परिचय का विश्लेषण कर सकेंगे।
- स्वामी विवेकानन्द के जीवन परिचय को जान सकेंगे।
- श्री अरविन्द के जीवनवृत्त का अध्ययन करेंगे।
- स्वामी कुवल्यानन्द के बारे में जान सकेंगे।

6.3 महर्षि पतंजलि का परिचय

महर्षि पत´जलि योग के आदि प्रवर्तक के रूप में जाने जाते हैं। योग की सूत्र रूपी विभिन्न बूंदों का संकलन कर इन्होंने योगसूत्र नामक सागर की रचना की है जिसके अन्तर्गत योग की सभी पद्धतियों का समावेश हो जाता है। इनके संबन्ध में विस्तृत वर्णन पतंजलि चरित्र तथा लघुमुनि त्रिकल्पतरु में प्राप्त होता है। व्याकरण के ग्रन्थों के अनुसार अपने पिता की अंजलि से अर्घ्यदान करते समय दिव्यरूप से ऊर्ध्वलोक से आकर गिरने के कारण इनका नाम पतंजलि पड़ा। इनके द्वारा रचित कृतियों में योगदर्शन मुख्य है। यह योग का आधारभूत ग्रन्थ माना जाता है। जो चार पाद- समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद तथा कैवल्य पाद में विभाजित है।

महर्षि पतंजलि का जीवन परिचय-यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है कि महर्षि पतंजलि का जन्म कब हुआ, किन्तु इस बात में कोई संदेह नहीं है कि महर्षि पतंजलि भगवान् कपिल के पश्चात् और अन्य चारों दर्शनकारों से बहुत पूर्व हुए हैं। कुछ विद्वानो का मत है कि पाणिनि व्याकरण का महाभाष्य तथा वैद्यक की चरक संहिता व योगदर्शन की रचना महर्षि पतंजलि ने की है। जैसे कि कहा गया है कि-

‘योगेन चित्तस्य पदेन वाचा मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।

योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतंजलिं प्रा´जलिरानतोऽस्मि ।।

अर्थात् महर्षि पतंजलि ने मनुष्य के चित्त की शुद्धि के लिए योगसूत्र, वाणी की शुद्धि के लिए व्याकरण के ग्रन्थ महाभाष्य तथा शरीर की शुद्धि के लिए चरक संहिता की रचना की। ये ग्रन्थ अपने क्षेत्र के अद्वितीय ग्रन्थ माने जाते हैं। क्योंकि इसके पश्चात् इन क्षेत्रों में जो भी कार्य हुआ, इन्हीं ग्रन्थों को आधार मानकर हुआ।

एक अन्य मान्यता के अनुसार महर्षि पतंजलि को शेषनाग का अवतार माना गया है। महर्षि पतंजलि को काशी में एक बावड़ी पर पाणिनि मुनि के समक्ष सर्प रूप में प्रकट होना बतलाया गया है। पाणिनि मुनि घबराकर 'को भवान्' के स्थान पर 'कोर्भवान्' बोलते हैं। सर्प उत्तर देता है। 'सपोऽहम्'। पाणिनि पूछते हैं ''रेफः कुतो गतः'' सर्प उत्तर देता है ''तव मुखे''। इसके पश्चात् सर्प के आदेशानुसार एक चादर की आड़ लगा दी गयी। शेषनाग अपने हजारों मुखों से एक साथ प्रश्नकर्त्ताओं के उत्तर देने लगे। इस प्रकार सारा महाभाष्य तैयार हो गया। किन्तु सर्प की आज्ञा थी कि कोई पुरुष चादर को उठाकर अन्दर न देखे, एक व्यक्ति द्वारा उल्लंघन किये जाने पर शेषनाग की फुंकार से ब्राह्मणों के सारे कागज जल गये। ब्राह्मणों की दुःखी अवस्था को देखकर एक यक्ष ने जो वृक्ष पर बैठा पत्तों पर भाष्य लिखता जाता था, वे पत्ते उनके पास फेंक दिये। उन पत्तों में से कुछ को बकरी खा गयी। इसी लिए कुछ स्थानों में भाष्य में असंगति सी पायी जाती है।

''याराशर्प शिलालिभ्यां भिक्षुनट सूत्रयोः''। (अ0 4/3/110)

अष्टाध्यायी के उपर्युक्त सूत्र में व्यास जी का पाणिनि मुनि से पूर्व होना सिद्ध होता है फिर भी पाणिनि मुनि की अष्टाध्यायी पर महाभाष्यकर्ता योगसूत्रकार पतंजलि किस प्रकार हो सकते हैं ?

जे.एच. बूड्स का मत- योगसूत्र के महर्षि पतंजलि व्याकरण महाभाष्यकार पतंजलि से भिन्न व्यक्ति थे। क्योंकि दोनों आचार्यों ने द्रव्य के लक्षण को भिन्न-भिन्न दिया है। इनकी जन्मतिथि के संबन्ध में बहुत कुछ निश्चित न होने पर भी सूत्रों में विज्ञानवाद का खण्डन होने के कारण यह कहा जाता है कि ये वसुबंध के परवर्ती थे और इसी कारण पतंजलि से इनका बहुत बाद में होना निश्चित् प्रायः है। इनका जीवन काल (300-400 ई.) के मध्य में निश्चित किया जा सकता है। बुड्स महोदय ने कई तथ्यों के आधार पर यह निश्चित् किया है कि योगसूत्रकार पतंजलि, महाभाष्यकार पतंजलि से सर्वथा भिन्न थे और उन्होंने चौथी या पाँचवीं शताब्दी में योगसूत्र की रचना की थी।

योगसूत्र में वर्णित साधनाऐं- महर्षि पतंजलि ने मनुष्य को संसार रूपी सागर को पार करने के लिए योगसूत्र में तीन प्रकार की साधनाओं का पूर्ण रूप से वर्णन किया है। चित्त वृत्ति निरोध के लिए उन्होंने योगसूत्र में कहा है-

''अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः''। योगसूत्र 1/12

अर्थात् अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है। उनके अनुसार यह अभ्यास और वैराग्य की साधना उत्तम कोटि के साधकों के लिए उपर्युक्त है। उत्तम साधकों के लिए एक दूसरे साधन का वर्णन करते हुए महर्षि पत´जलि कहते हैं-

''ईश्वरप्रणिधानाद्वा''। योगसूत्र 1/23

अर्थात् जो उत्तम कोटि के साधक हैं, उन्हें केवल ईश्वर के प्रति समर्पण भाव से भी योगसिद्धी हो जाती है। मध्यम कोटि के साधकों के लिए क्रियायोग बताते हुए कहा है-

''तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः'' योगसूत्र 2/1

इसके अभ्यास से भी चित्त वृत्तियों का निरोध होता है। एक तीसरी साधना अष्टांग योग- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि बताते हुए सामान्य पुरुषों और विद्वानों के लिए चित्तवृत्तिनिरोध का उपाय कहा है। यह उनकी सर्वसामान्य व प्रचलित साधना पद्धति है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. एक शब्द में उत्तर दीजिए।

क. महर्षि पतंजलि को किसका अवतार जाता है।

ख. जे0ए0 वुड्स ने पतंजलि का जीवन काल किस ईसवीं में माना हैं।

ग. चित्त वृत्ति निरोध के लिए महर्षि पतंजलि ने कौन सी साधना बताई है।

घ. मध्यम कोटि के साधकों के लिए महर्षि पतंजलि ने कौन सी साधना बताई है।

6.4 गोरक्षनाथ का जीवन परिचय

महायोगी गोरक्षनाथ ऐसे ही दिव्य सर्वसिद्ध साधक हैं, जो आज भी अप्रत्यक्ष रूप से योगविद्या का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। माना जाता है कि सूक्ष्म सत्ता के रूप में हमारा मार्ग दर्शन करने के लिए हमारे बीच विद्यमान हैं।

महायोगी गोरक्षनाथ के जन्म के संबन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा अलौकिक वृत्तान्तों का संग्रहण मिलता है। इनमें प्रायः सर्वमान्य धारणा है कि अवधूत गुरु मत्स्येन्द्रनाथ भिक्षा के लिए एक निर्धन ब्राह्मण सर्वापदयाल के यहाँ जाते हैं। भीतर ब्राह्मणी सरस्वती देवी को दुःख से व्याकुल देखकर उसे एक सुन्दर बालक की माता बनने के लिए भस्म देकर उसका भक्षण करने के लिए कहते हैं- अवधूत गुरु के जाने पर लोकव्यवहार में शंका से प्रेरित होकर ब्राह्मणी भस्म को गोबर के ढेर में डाल देती है।

लेकिन एक दिन अकस्मात् बारह वर्ष के पश्चात् वही अवधूत वेषधारी मत्स्येन्द्रनाथ पुनः आते हैं और वे उस ब्राह्मणी से मिलते हैं और उसको पूर्ववर्ती घटना का स्मरण कराते हैं। तब ब्राह्मणी अवधूत वेषधारी को उसी स्थान पर ले जाती है, जहाँ उसने बारह वर्ष पूर्व वह भस्म फेंक दी थी। योगी की दिव्य साधना से अभिप्रेरित वह भस्म "अलखनिरंजन" के शब्द संघात मात्र से 12 वर्ष के सुन्दर गौर वर्ण बालक के रूप में परिणत हो जाती है। तदुपरान्त योगी मत्स्येन्द्रनाथ बालक का नामकरण गोबर से उत्पन्न होने के कारण गोरक्षनाथ कहते हैं। जन्म संदर्भ के फलस्वरूप इनके जन्म को अयोनिज कहते हैं। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से योगी मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ के पिता एवं गुरु माने जाते हैं। योगी गोरक्षनाथ भी स्वयं इस बात का स्पष्टीकरण कुछ इस प्रकार करते हैं-

"आदिनाथ नाती मच्छन्दरनाथ पूता।

निज तत् निहारे गोरक्ष अवधूता।। (गोरखबानी पद -37)

जन्म स्थान की अवधारणा- योगी गोरक्षनाथ के जन्म स्थान के सम्बन्ध में स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते हैं यथा डॉ. नागेन्द्र नाथ उपाध्याय ने गुरु गोरक्षनाथ के जन्म स्थान के विषय में लगभग 17 मतों का संकलन किया जिसमें योगी गोरक्षनाथ का जन्म स्थान बंगाल में चन्द्र गिरि ग्राम बताया है।

श्री रामलाल श्रीवास्तव, महायोगी गोरक्षनाथ व उनकी तपस्थली के सम्बन्ध में लिखते हैं कि गोरक्षनाथ अवध की परम्परा के अनुसार जायस नामक नगर के एक परम पवित्र ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। जबकि दूसरी मान्यताएं नेपाल के सुदूर ग्राम का संदर्भ देती हैं, कुछ अन्य मत पंजाब का संकेत देते हैं। गोरखपुर के श्री गोरखनाथ मन्दिर में महायोगी अवधूत गोरक्षनाथ की भव्य प्रतिमा स्थापित है। कहा जाता है कि त्रेता युग में तपस्या के दौरान योगीराज ने यहाँ ''अखण्ड धूना'' प्रज्ज्वलित किया था जो आज भी अनवरत विद्यमान है।

काल निर्णय- महायोगी गोरक्षनाथ के जन्म व मृत्यु के सम्बन्ध में यूँ तो स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते। लेकिन कई विद्वानों ने इसे द्वापर, त्रेता एवं कलयुग तीनों में माना है। माना जाता है कि वे अमरयोगी हैं। अधिकांशतः उनका जीवनकाल 7वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक माना जाता है, जो प्रायः बहुमान्य है।

महायोगी की योगसाधना- जैसा कि पूर्ववर्ती विवरण से ज्ञात है कि स्वयं अवधूत गुरु सिद्ध मत्स्येन्द्र उनके गुरु थे तथा महासिद्ध गोरक्षनाथ ने विभिन्न आगमादि कृत्यों एवं योग अभ्यास के बल पर असंख्य सिद्धियां प्राप्त की हुई थी। कल्पद्रुम तन्त्र में गोरक्षनाथ को सिद्ध योगी बताते हुए कहा गया है-

''अहमेवाऽस्मि गोरक्षे मद्रूपं तन्निबोधत।

योगमार्ग प्रचारार्थ मायारूपमिदं धृतम्।।''

नाथ सम्प्रदाय के आविर्भाव के विषय में लिखती हुई डॉ. कल्याणी मलिक बताती हैं कि सातवीं शताब्दी से 12 वीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म का पतन एवं शैव धर्म का अभ्युदय हुआ है तथा कालान्तर में यही शैव सम्प्रदाय कारुणिक, कापालिक, पशुपत, माहेश्वर, लकुलीस में बँट गया। इन सब में शिव को आदि संस्थापक एवं योगियों के योगी कहा है तथा इन्हीं सिद्ध की परम्परा में नाथ सम्प्रदाय का विकास हुआ, जिसके संस्थापक योगी मत्स्येन्द्रनाथ को माना जाता है तथा इनके बाद गोरक्षनाथ ने इस नाथ सम्प्रदाय को क्रान्ति का रूप देते हुए नई दिशा प्रदान की। जबकि दूसरी ओर डॉ. वेदप्रकाश जुनेजा ने नव नाथों को ही नाथ परम्परा का प्रतिनिधि माना है। जिनके नाम इस प्रकार हैं- 1. आदिनाथ, 2. मत्स्येन्द्रनाथ, 3. जालन्धरनाथ, 4. गोरक्षनाथ, 5. चरपटीनाथ, 6. कानिफा नाथ, 7. चौरंगीनाथ, 8. भर्तृहरि व 9. गोपीचन्द।

डॉ. रांगेय राघव का कहना है कि गोरक्षनाथ के पूर्व में नाथ सम्प्रदाय की उत्पत्ति हो चुकी थी तथा बचपन से ही गोरक्षनाथ पर घुमक्कड सिद्धों का प्रभाव पड़ा था। नाथ साहित्य श्रृखला में गोरक्षसंहिता, सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, गोरक्ष पद्धति, गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह, हठयोग प्रदीपिका, विवेक मार्तण्ड, योग तारावली, अमनस्क योग, घेरण्डसंहिता, अमरौध शासनम्, महार्थ मंजरी, गोरक्ष सहस्रनाम आते हैं।

सिद्ध-सिद्धान्त पद्धति में गोरक्षनाथ भी अष्टांग योग की चर्चा करते हैं-

''यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार।

धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावंगानि।।'' (सि0सि0प0 2/32)

'योगबीज' नाम ग्रन्थ में गोरक्षनाथ ने योगमार्ग को मुक्ति मार्ग बताते हुए कहा है कि सिद्ध प्रतिपादित योगमार्ग से ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

सर्वसिद्धिकरो मार्गो मायाजालनिड्डन्तम्।

बद्धा येन विमुच्यते नाथ मार्गमतः परम।। (योगबीज 6/7)

इसी प्रकार गोरक्षनाथ योग को परिभाषित करते हुए कहते हैं-

'योऽपान प्राणयौर्ऐक्यं स्थरजो रेतसोस्तथा।

सूर्याचन्द्रमसोर्योगोद जीवात्मा परमात्मनोः।।

एवं तु द्वन्द्वजालस्य संयोगो योग उच्यते।। (योगबीज 89/90)

प्राण, अपान, रज एवं वीर्य, सूर्य एवं चन्द्र तथा जीवात्मा और परमात्मा (शिव-शक्ति) का मिलन ही योग है।

महाशक्ति कुण्डलिनी के विषय में गोरक्षनाथ वर्णन करते हैं कि यद्यपि कुण्डलिनी शक्ति अपने मूलरूप में चेतन है तथापि प्रबुद्ध न होने के कारण, सांसारिक द्वन्द्वों में भ्रमित करने के कारण बन्धनकारिणी है तथा जागृत अवस्था में शिव के स्वरूप का ज्ञान कराकर योगियों को मोक्ष प्रदान करती है।

कन्दोर्ध्व कुण्डली शक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम्।

बन्धनाय च मूढानां यस्तां वेत्ति स योगवित्।। (गोरक्षशतक 56)

योगविभूतियां- योग साधना के बल पर गोरक्षनाथ ने अनेक सिद्धियों को प्राप्त किया जिनका वर्णन 'गोरखनाथ चरित्र' में भी देखने को मिलता है। एक कथानुसार राजा भर्तृहरि अपनी रानी पिंगला की मृत्यु हो जाने पर उसके शोक में श्मशान पर पिंगला-पिंगला की रट लगाये हुए थे। जब गोरक्षनाथ ने राजा भर्तृहरि को विलाप करते देखा तो उनके उद्धार हेतु उन्होंने एक मिट्टी का घड़ा तोड़कर वहीं घड़ा-घड़ा चिल्लाकर विलाप करने लगे। धीरे-धीरे राजा भर्तृहरि की आवाज गोरक्षनाथ की आवाज से दबने लगी। इस पर राजा भर्तृहरि गोरक्षनाथ के पास जाकर बोले कि क्यों रो रहे हो? ऐसा घड़ा तो और बन जायेगा। गोरक्षनाथ ने उत्तर देते हुए कहा घड़ा तो वैसा नहीं बन सकता, लेकिन पिंगलाएं बन सकती हैं। अकस्मात् भर्तृहरि के सामने कई पिंगलाएँ उपस्थित हो गयी। यौगिक प्रभाव को देखकर भर्तृहरि मोह से निवृत्त हुए और गोरक्षनाथ के शिष्य बन गये।

ऐसे ही एक अन्य कथानक के अनुसार एक बार गोरक्षनाथ की भेंट कानिफानाथ से हुई। स्वागतार्थ कानिफानाथ ने आम के वृक्ष से कुछ फल अपनी योग शक्ति के द्वारा अपने पास एकत्रित कर लिये। जो स्वयं पेड़ से टूट कर गये थे। दोनों ने फल खाए। खाने के बाद कुछ फल शेष बच गए। इस बात पर गोरक्षनाथ ने कानिफानाथ से कहा इन्हें जहाँ से तोड़ा है, वहीं लगा दो। परिहास में निषेधात्मक उत्तर मिला। तब गोरक्षनाथ ने अपनी अभिमन्त्रित भभूत उन आमों पर डाली। जिससे वह पुनः वृक्षों पर जाकर लटक गये। कानिफानाथ को अपनी विद्या की अल्पता का ज्ञान हुआ।

गोरक्षनाथ ने समय-समय पर विभिन्न स्थानों पर कठोर साधनाएँ की। जिसमें कुछ का प्रामाणिक विवरण जोधपुरनरेश मानसिंह द्वारा संग्रहीत 'श्रीनाथ तीर्थावली' में यथाक्रम मिलता है। भारत में सौराष्ट्र, पंजाब, उत्तराखण्ड, हिमालय के अनेक स्थानों पर, कर्नाटक, बंगाल, उड़ीसा, गोरखपुर, उत्तरप्रदेश, आदि स्थानों पर अगाध तप किया। जिसका विवरण 'नवनाथ चरित्र एवं सिद्धान्त सार' नामक ग्रन्थों में मिलता है।

इस प्रकार कई ऐसे प्रसंग गुरु गोरक्षनाथ के जीवन के संबन्ध में मिलते हैं जिनसे उनकी योगसाधना एवं सिद्धियों के विषय में पता चलता है। महायोगी गोरक्षनाथ ने इन्द्रियनिग्रह करके योग साधना के आदर्शों को सामने लाकर संयमपूर्ण जीवन की उच्चता, आडम्बर रहित जीवन की महत्ता तथा चरित्र की परमोच्च महिमा की ओर ध्यान आकृष्ट किया। वास्तव में महायोगी गोरक्षनाथ सिद्ध योगी थे जिन्हें जन्म देकर भारतमाता धन्य हुई। महायोगी गोरक्षनाथ ने आध्यात्मिकता, मानवता एवं एकता का मार्ग दिखाने का सराहनीय कार्य किया।

2. सत्य/असत्य बताइये

क. गोरक्षनाथ योगी मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे।

ख. डा0 रागेय राघव ने कहा कि गोरक्षनाथ के पूर्व नाथ सम्प्रदाय की उत्पत्ति हो चुकी थी।

ग. योगसूत्र हठयोग की पुस्तक है।

घ. सिद्ध-सिद्धान्त पद्धति में भी अष्टांग योग की चर्चा मिलती है।

6.5 महर्षि दयानन्द का जीवन परिचय

जन्म व प्रारम्भिक शिक्षा- महर्षि दयानन्द जी का जन्म गुजरात प्रान्त के मौरवी नामक राज्य (वर्तमान राजकोट) के अन्तर्गत 'टंकारा' नामक ग्राम में भाद्र मास की कृष्ण नवमी के दिन सन् 1824 ई. को हुआ था। इनका बचपन का नाम मूलशंकर था। इनके पिता श्री कृष्णजी तिवारी विद्वान् एवं धार्मिक प्रवृत्ति के ब्राह्मण थे। इनकी माता का नाम अमृताबाई था तथा परिवार के सभी सदस्य शिव भक्त थे। इनका जन्म मूलनक्षत्र में होने के कारण इनका नाम मूलशंकर रखा गया था। इनका बचपन बड़ा ही खुशहाल रहा। अपनी माता-पिता की पहली संतान होने के कारण परिवार के सभी लोग इन्हें बहुत प्यार करते थे।

प्रारम्भिक शिक्षा के अन्तर्गत लगभग पाँच वर्ष की आयु में मूलशंकर को देवनागरी लिपि की शिक्षा दी गयी। बचपन मे ही पिता जी ने इन्हें गायत्री मन्त्र व अनेक श्लोकों को कण्ठस्थ करा दिया था। इनके पिता सभी धार्मिक अनुष्ठानों में साथ रखते थे। इस प्रकार इनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही चली तथा आठ वर्ष की आयु तक इन्होंने यजुर्वेद और व्याकरण के कुछ ग्रन्थों को भी कण्ठस्थ कर लिया था।

बचपन की घटनाएं- बचपन की किशोरावस्था तक घटी कुछ घटनाओं ने मूलशंकर का जीवन बदल कर रख दिया था। एक बार शिवरात्रि के दिन इनका पूरा परिवार शिव मन्दिर में जाकर रात्रि जागरण कर रहा था। शिव भक्त होने के कारण परिवार के सभी सदस्यों ने व्रत रखा हुआ था। आधी रात होते-होते मन्दिर में सभी भक्तजनों को नींद आ गयी परन्तु बालक मूलशंकर शिव जी के दर्शन की अभिलाषा रखे हुए जागता रहा। उन्हें शिव दर्शन तो हुए नहीं, परन्तु उन्होंने देखा कि एक चूहा शिवलिंग पर चढ़कर उछल-कूद कर रहा है और पास में रखा प्रसाद आदि खा रहा है। यह दृश्य देखकर बालक मूलशंकर के मन में मूर्तिपूजा के प्रति अनास्था हो गयी। परिवार व पिता के काफी समझाने पर भी बालक मूलशंकर का हृदय परिवर्तित न हो सका।

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् इनकी बहिन का रोग के कारण देहान्त हो गया। इसके कुछ दिनों के बाद प्रिय चाचा का भी देहान्त हो गया। चाचा व बहन के प्रति मूलशंकर को काफी लगाव था। इसलिए इन दोनों की मृत्यु ने इनके हृदय को विचलित कर दिया। इस कारुणिक घटना ने इनके समक्ष जीवन की अल्पकालिकता एवं मानवीय आकांक्षाओं की अर्थहीनता को अनावृत्त कर दिया। मूलशंकर को स्पष्ट हो चुका था कि जागतिक जीवन एक क्षणिक प्रदर्शन मात्र है। तभी से इनके मन में सच्चे श्वि की खोज करने की इच्छा उत्पन्न हो गयी और इनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया। पिता ने इनकी इस अवस्था को देख इनका विवाह करना चाहा तो लगभग 21 वर्ष की आयु में इन्होंने घर त्याग दिया।

संन्यासी जीवन की प्रवृत्ति- मूलशंकर घर का त्यागकर सयाला नामक एक गांव में गये, जहाँ एक धार्मिक सम्प्रदाय में सम्मिलित होकर उन्होंने गैरिक वस्त्र धारण कर लिये तथा शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कुछ समय पश्चात् सिद्धपुर में प्रत्येक वर्ष की तरह आयोजित धार्मिक मेले में मूलशंकर की भेंट एक वैरागी से हुई जो उनके पिताजी का भी परिचित था। उस वैरागी ने मूलशंकर के पिता को एक पत्र लिखकर मूलशंकर का पता बता दिया। पत्र पाकर उनके पिता तुरन्त सिद्धपुर पहुँचे जहाँ उनकी भेंट मूलशकर से एक मन्दिर में हुई। पुत्र को गैरिक वस्त्रों में देखकर पिता अपने क्रोध पर काबू न रख सके और तभी मूलशंकर के गैरिक वस्त्र फाड़ डाले और भिक्षापात्र को तोड़ दिया। इसके पश्चात् मूलशंकर को नये वस्त्र देकर उनकी रखवाली के लिए कुछ नौकरों को नियुक्त कर दिया। रात्रि में नौकरों के गहरी नींद के समय मूलशंकर चले गये। अगले दिन पिता व नौकरों के ढूंढने पर भी मूलशंकर का पता नहीं चला। तदुपरान्त वे सब वापिस घर को लौट गये। इसके पश्चात् मूलशंकर हरिद्वार चले गये और वहाँ स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास की दीक्षा ली और इनका नाम दयानन्द सरस्वती रखा गया।

सच्चे गुरु की खोज- संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् स्वामी दयानन्द भारत के सभी धार्मिक स्थलों का भ्रमण करने लगे। सच्चे गुरु से मिलने की चाह में ये सम्पूर्ण हिमालय के भ्रमण के लिए निकल पड़े। काफी प्रयास के बाद भी जब इनकी आध्यात्मिक जिज्ञासा शान्त न हुई, तब इन्होंने विभिन्न योगियों से यौगिक क्रियाएं सीखी और छत्तीस वर्ष की आयु में मथुरा के लिए रवाना हुए, जहाँ इनकी भेंट प्रख्यात संन्यासी व संस्कृत के बहुश्रुत विद्वान स्वामी विरजानन्द से हुई । स्वामी विरजानन्द जन्मतः अंधे थे तथा वे अत्यन्त रुक्ष व कठोर स्वभाव के सन्त थे और अपना अधिकांश समय ध्यान में व्यतीत करते थे।

स्वामी दयानन्द जी ने इनको अपना सच्चा गुरु मानकर इनसे व्याकरण और आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन किया। गुरुज्ञान प्राप्त करने के बाद एक दिन स्वामी दयानन्द ने हाथ में कुछ लौंग लेकर गुरु को दक्षिणा स्वरूप देकर कहा कि गुरुदेव मैं एक निर्धन व्यक्ति हूँ। मेरे पास आपको देने के लिए इसके अतिरिक्त कुछ और नहीं है। स्वामी विरजानन्द ने कहा- 'तुम्हारे पास जो कुछ भी है, उसे तुम स्वयं से विलग कर लो, जो शिक्षा तुमने प्राप्त की है, उसका समुचित उपयोग करो। सर्वत्र अपने इस ज्ञान का फैलाव करो, क्योंकि हिन्दू अपने धर्म को विस्मृत कर चुके हैं, उनको यथार्थ वैदिक धर्म की शिक्षा दो।'

गुरु विरजानन्द के यह कथन सुन, दयानन्द ने अवनत शिर होकर अपने गुरु को प्रणाम किया और वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के लिए अपने जीवन को समर्पित कर देने की शपथ ग्रहण की और अपने गुरु से विदा लेकर वह तत्काल अपने कार्य में संलग्न हो गये।

वैदिक धर्म का प्रचार- वैदिक धर्म के प्रचार हेतु स्वामी दयानन्द आगरा और ग्वालियर गये जहाँ उन्होंने प्रवचन दिये और उसके पश्चात् जयपुर के लिए रवाना हो गये। जयपुर के महाराज ने उनका श्रद्धा तथा उत्साहपूर्वक स्वागत किया।

स्वामी दयानन्द ने हरिद्वार, वाराणसी तथा कलकत्ता में भाषण दिया। वह देवेन्द्रनाथ टैगोर और बाबू केशवचन्द्र सेन से मिले। उन्होंने अपने प्रवचन हिन्दी तथा संस्कृत में दिये, जिनके माध्यम से मूर्ति-पूजा का विरोध किया। मूर्ति-पूजा के विरोध में प्रवचन देने के कारण उन्हें रूढ़िवादी हिन्दुओं के क्रोध का सामना करना पड़ा। कई बार तो इन पर जानलेवा प्रहार

भी किया गया किन्तु स्वामी दयानन्द वैदिक मत का प्रचार निरन्तर करते रहे। अपने वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के दौरान उन्होंने लेखन कार्य भी किया तथा सत्यार्थ प्रकाश नामक क्रान्तिकारी ग्रन्थ का सृजन किया।

आर्यसमाज की स्थापना- वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु स्वामी दयानन्द ने बम्बई में सन् 1875 में आर्यसमाज की स्थापना की जिसके माध्यम से सम्पूर्ण भारतवर्ष में अनेक सामाजिक कार्य किये गये। इनके प्रयत्नस्वरूप अनेक विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा अनाथालयों की स्थापना हुई। आर्यसमाज द्वारा स्थापित गुरुकुलों में आज भी परम्परागत शिक्षा का विधान चल रहा है।

महर्षि दयानन्द समाज सुधारक के साथ-साथ एक महान योगी होने के कारण निरन्तर योग साधना में लगे रहते थे। विरोधियों द्वारा अनेकों बार विष देने के प्रयास को यौगिक क्रियाओं द्वारा ही असफल किया। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के साथ साथ ऋग्वेद, यजुर्वेद का भी भाष्य किया। स्वामी दयानन्द के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए इनके विरोधियों की भी संख्या बढ़ती गयी। स्वामी दयानन्द के स्वतन्त्रता की बात करने के कारण अंग्रेजी सरकार भी इनसे खिन्न रहती थी। प्रथम स्वाधीनता संग्राम में महारानी लक्ष्मीबाई तथा क्रान्तिवीरों के साथ भारत की स्वाधीनता के लिए भी कार्य किया। उनका कथन था कि विदेशी राज्य चाहे कितना भी अच्छा हो, स्वराज्य से अच्छा नहीं हो सकता। अतः स्वराज्य प्राप्ति के लिए पूर्ण प्रयास किया जाना चाहिए।

निर्वाण- स्वामी जी जोधपुर के महाराज यशवन्त सिंह के आमन्त्रण पर जोधपुर पहुंचे। वहाँ पर राजा को एक वेश्या के साथ देखकर उन्होंने राजा को बहुत फटकारा। इस बात से खिन्न होकर वह नन्हीजान नामक वेश्या खिन्न हो गई। उसने राजमहल के रसोइये जगन्नाथ को रिश्वत देकर इनके दूध में कांच तथा जहर मिलाकर पिला दिया। स्वामी जी को जब इस बात का पता लगा तो रसोइये को अपने पास से पैसे देकर नेपाल भाग जाने को कहा। उन्हें डर था कि मेरे बाद लोग इसे मार डालेंगे। यह बात स्वामी जी की महानता को दर्शाती है कि अपने मारने वाले के प्रति भी उनके मन में दया का भाव था। इनका बहुत उपचार किया गया किन्तु कांचमिश्रित विष इतना तेज था कि उसके कारण उनकी स्थिति बिगड़ती चली गई। जोधपुर से उन्हें चिकित्सा के लिए आबू तथा आबू से अजमेर लाया गया परन्तु यहां भी इनकी अवस्था में कोई सुधार नहीं हुआ। इतने तीव्र कष्ट होने पर भी उनके मुख पर किसी प्रकार की वेदना दिखाई नहीं देती थी, जिसको देखकर नास्तिक गुरुदत्त विद्यार्थी आस्तिक हो गया था।

सन् 1883 में कार्तिक मास की अमावस्या को स्वामी दयानन्द जी ने संध्या के समय ध्यानावस्था में बैठकर वेदमन्त्रों के उच्चारण के साथ 'प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो' यह कहकर इस नश्वर शरीर को त्याग दिया।

स्वामी दयानन्द की शिक्षाएं या आर्य समाज के नियम व उद्देश्य-

- सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।
- ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयाल, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।
- वेद सब सत्य-विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम-धर्म है।
- सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
- सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

- संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक एवं आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
- सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य व्यवहार करना चाहिए।
- अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
- प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
- सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

अभ्यास प्रश्न

3. बहुविकल्पीय प्रश्न

क. महर्षि दयानन्द का जन्म हुआ था

अ. 1828 ई0 ब. 1825 ई0

स. 1824 ई0 द. 1830 ई0

ख. महर्षि दयानन्द की माता का क्या नाम था

अ. अमृताबाई ब. जशोदाबाई

स. आशारानी द. भुवनेश्वरी देवी

ग. दयानन्द जी के बचपन का क्या नाम था

अ. रविशंकर ब. भूलशंकर

ब. नरेन्द्र द. शंकर

घ. आर्य समाज की स्थापना कब हुई

अ. 1872 ब. 1875

स. 1878 द. 1880

ड. स्वामी दयानन्द ने स्थापना की

अ. ब्रहम समाज की ब. आर्य समाज की

स. रामकृष्ण मिशन की द. सहज योग

6.6 स्वामी विवेकानन्द का जीवन परिचय

स्वामी विवेकानन्द का नाम, भारतीय नवजागरण के आन्दोलनों के सूत्रधारों में प्रमुख रूप से लिया जाता है। उन्होंने केवल भारत ही नहीं बल्कि विदेशों तक भारतीय आध्यात्मिकता एवं संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने अपने गुरु से आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर इसे आध्यात्मिक साधना के माध्यम से धर्म-जगत् में एक नया रूप प्रदान किया। उन्होंने लोगों को संदेश दिया और बताया कि मनुष्य संसार में सबसे ऊपर का प्राणी है। स्वामी विवेकानन्द ने विश्व बन्धुत्व व मानव सेवा को जन-जन तक पहुँचा इसे मुक्ति का मार्ग बताया। स्वामी विवेकानन्द ने परमहंस के उस सिद्धान्त को सर्वत्र प्रचारित किया जिसमें कहा गया है ''सर्वधर्म समन्वय''। वेद का प्रथम सूत्र है ''नर नारायण की सेवा'' । समाज की उन्नति और कल्याण के लिए सबसे अधिक आवश्यक है कि देशवासी मनुष्य बनें, वे हमेशा यह प्रार्थना करते थे कि ''हे ईश्वर! मेरे देश के निवासियों को मनुष्य बनाओ।''

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार ''शरीर और आत्मा मिलकर मनुष्य बनते हैं। शरीर तो आत्मा का मन्दिर है। सुन्दर मन्दिर में सुन्दर विग्रह के रहने पर 'सोने पर सुहागा' होता है।'' इसलिए शरीर रूपी मन्दिर को स्वच्छ बनाओ। हमारे पूर्वज कह गये हैं- ''शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्'' देह मन्दिर और विग्रह आत्मा है। आत्मा ही ईश्वर है तथा आत्मा के प्रति अविश्वास का अर्थ नास्तिकता है।

जन्म एवं पारिवारिक परिचय- स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी 1863 ई. को कलकत्ता के सिमालिया मुहल्ले में मुखर्जी परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम विश्वनाथ व माता का नाम भुवनेश्वरी था। इनके पिता एक स्वच्छन्द प्रवृत्ति के मालिक थे तथा माता सुशिक्षित तथा शालीनता सम्पन्न महिला थी। स्वामी विवेकानन्द के बचपन का नाम वीरेश्वर रखा गया था। परिवार के सभी लोग प्यार से इन्हें वीरे कहते थे। नामकरण के समय इनका नाम नरेन्द्र नाथ रखा गया था। नरेन्द्र बचपन से ही प्रतिभाशाली थे। वे एक अच्छे तैराक, कुशल अश्वारोही, कुशल पहलवान तथा संगीत के अच्छे जानकार थे।

बचपन से ही नरेन्द्र साधु-संन्यासियों से काफी प्रभावित होते थे। शायद नरेन्द्र के पूर्व जन्म के संस्कार ही थे कि एक दिन खेल-खेल में बालक नरेन्द्र शरीर पर राख लगाकर ध्यान की अवस्था में बैठ गये और वे ध्यान में इतना मग्न हो गये कि अन्य बच्चों के सांप देखकर चिल्लाने पर भी वह ध्यान से नहीं उठे। काफी देर बाद सांप के चले जाने पर परिवार के लोगों ने नरेन्द्र से सांप के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा कि मुझे कुछ नहीं मालूम। इस घटना से बालक नरेन्द्र के अध्यात्मिक स्तर का दर्शन हो चुका था। इनकी शिक्षा पाँच वर्ष की आयु में आरम्भ हुई तथा अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि होने के कारण ये सभी विषयों को सफलता से ग्रहण कर लेते थे। 14 वर्ष की आयु में यह अपने पिता के पास मध्य प्रदेश, रायपुर में रहते थे, जहाँ इनके पिता जी इनको व्यवहारिक शिक्षा भी दिया करते थे। 2 वर्ष रायपुर रहने के बाद वह वापस कलकत्ता आ गये तथा अंग्रजी स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने लगे। इन्होंने सन् 1884 ई. में बी.ए. की डिग्री प्राप्त की। कालेज में विज्ञान, ज्योतिष, गणित, दर्शन, भारतीय तथा यूरोपियन भाषाओं पर समान अधिकार प्राप्त करके इन्होंने सबको आश्चर्य चकित कर दिया। इसके साथ साथ इन्होंने वेदान्त व अन्य धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। कुछ समय के लिए वे ब्रह्मसमाज के अनुयायी रहे, परन्तु यहां उनकी आध्यात्मिक भूख शान्त नहीं हुई और वे ऐसे महापुरुष की तलाश में जुट गये जो उन्हें ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करा सके।

स्वामी रामकृष्ण का सम्पर्क- ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने की प्रगाढ़ जिज्ञासा ने उनकी भेंट नवम्बर 1880 में रामकृष्ण परमहंस से करायी। उन दिनों स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी के प्रति लोगों की बड़ी श्रद्धा थी। पहली ही भेंट में स्वामी रामकृष्ण परमहंस समझ चुके थे कि यह कोई साधारण मनुष्य नहीं है। इनसे मिलकर स्वामी रामकृष्ण ने कहा कि मैं बहुत दिनों से तुम्हारी राह देख रहा था और चाह रहा था कि मैं अपनी आत्मा की आन्तरिक अनुभूतियों को किसी योग्य पात्र को सौंप सकूँ। नरेन्द्र भी रामकृष्ण परमहंस जी से मिलकर अति प्रसन्न थे क्योंकि वे जानते थे कि उन्हें अब सद्गुरु मिल गया है। नरेन्द्र ने परमहंस जी से निवेदन किया कि मुझे शान्ति चाहिए। रामकृष्ण परमहंस के सम्पर्क में आने का कारण नरेन्द्र की ज्ञान-पिपासा ही थी। वे संसार की समस्त नदियों के समुद्र में मिलने की ही भाँति अपने इष्ट से मिलना चाहते थे। नरेन्द्र की

जिज्ञासा व ज्ञान स्तर जानकर परमहंस जी ने कहा था- 'मेरा नरेन्द्र सामान्य मानव नहीं है। वह तो ब्रह्मलोक का ऋषि है। उसमें वाल्मिकी, बुद्ध, शंकर तथा नेपोलियन की आत्माऐं प्रवेश कर गयी हैं।'

कुछ दिनों पश्चात् पिता की मृत्यु हो जाने पर परिवार के भरण-पोषण का दायित्व नरेन्द्र पर आ पड़ा। इस कार्य को पूरा करने के लिए नरेन्द्र ने नौकरी की और कभी-कभी परमहंस जी से भी मिलते रहे। गुरु परमहंस जी की कृपा से इनका अभ्यास और वैराग्य दृढ़ होता चला गया जिससे ये निर्विकल्प समाधि तक पहुँच गए। स्वामी परमहंस जी ने अपनी मृत्यु से तीन-चार दिन पूर्व नरेन्द्र को बुलाकर कहा कि मैंने अपना सबकुछ तुम्हें दे दिया है। अब तुम इस ज्ञान को जन-जन तक पहुँचाओं और सभी कार्यों को पूरा करो।

हिमालय भ्रमण- गुरु की मृत्यु पश्चात् स्वामी विवेकानन्द ने एक साधना केन्द्र की स्थापना की तथा अपने साथियों और शिष्यों सहित आध्यात्मिक भगवत् भजन में लग गये। पाँच वर्ष पश्चात् सन् 1891 में वे अपनी मित्र मण्डली को छोड़कर भ्रमण करने के लिए हिमालय की ओर निकल पड़े। वहाँ विभिन्न सिद्ध महात्माओं से सम्पर्क कर आध्यात्मिक विकास प्राप्त किया। धीरे-धीरे उनकी वेदान्त में दृढ़ आस्था हो गयी थी। भारत के विभिन्न प्रान्तों में उनके शिष्यों की संख्या बहुत अधिक हो गयी।

विदेश यात्रा- गुरु ज्ञान के प्रचार-प्रसार हेतु स्वामी जी लंका, सिंगापुर, हांगकांग, नागासाकी, ओसाका, टोकियों होते हुए कनाडा गये और वहाँ से शिकागो पहुँचे। इसी दौरान हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जे.एच. राइट ने आपके भाषणों से प्रभावित होकर तुरन्त आगामी धर्म सभा में भाषण के लिए अवसर दिया।

11 सितम्बर 1893 ई. का दिन एक ऐतिहासिक दिन था। उस दिन भारत के इस महान् सन्त ने सभी धर्म प्रतिनिधियों को हिलाकर रख दिया। इस सभा में सभी देशों के प्रतिनिधि अपना भाषण लिखकर लाये थे जबकि स्वामी विवेकानन्द ने अलिखित भाषण दिया था।

अपने भाषण कें आरंभ में उन्होंने पाश्चात्य परम्परा के विरुद्ध मेरे अमेरिका निवासी भाईयो तथा बहिनों जैसे ही सम्बोधित किया, वैसे ही हॉल के अधिकांश लोग खड़े होकर इस महान् सन्त के सम्मान मे कई मिनट तक तालियाँ बजाते रहे। अमेरिका के इतिहास की पहली घटना थी, स्वामी जी का भाषण सुनकर लोगों के अन्दर के तार झंकृत हो उठे। इस भाषण में स्वामी जी ने भगवत् गीता और उपनिषदों के ज्ञान का सारांश प्रस्तुत किया। धीरे-धीरे अमेरिका में स्वामी जी के भक्तों की संख्या बढ़ती गयी। लगभग तीन वर्ष रहने के पश्चात् स्वामी 16 सितम्बर 1896 में स्वदेश लौट आये। स्वदेश लौटने पर अपना प्रचार कार्य प्रारम्भ करने के साथ-साथ उन्होंने दो मठों की स्थापना की।

रामकृष्ण मिशन की स्थापना- स्वदेश लौटने पर स्वामी जी ने 1 मई 1897 को रामकृष्ण मिशन की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य वेदान्त प्रचार व लोक सेवा करना है। इसी बीच में भारत में महामारी का प्रकोप फैलने पर स्वामी जी ने संन्यासियों की एक मण्डली सेवा कार्य में लगा दीं इसी दौरान इन्होंने कई अनाथालय और वेदान्त प्रचार के लिए विद्यालयों की स्थापना की। विदेशों में भी चल रहे आन्दोलनों की प्रगति को देखने के लिए स्वामी जी समय-समय पर विदेश भ्रमण पर रहा करते थे। अत्यधिक परिश्रम के कारण इनका स्वास्थ्य गिरने लगा। इन दिनों में वे अक्सर समाधि में लीन रहते थे। समाधि के पश्चात् वे शिष्यों को व्याकरण वेदादि पढ़ाया करते थे। इसी प्रकार आध्यात्मिक और सामाजिक कार्य करते हुए उन्होंने समाधि की अवस्था में इस पंचभौतिक शरीर को त्याग दिया। अपने इस सामाजिक व आध्यात्मिक कार्यों के लिए वे सदा के लिए भारत की धरोहर के रूप में अमर हो गये।

अभ्यास प्रश्न

4. रिक्त स्थान भरिये

क. स्वामी मी विवेकानन्द के बचपन का नाम.....था।

ख. स्वामी विवेकानन्द के पिता का नाम.....था।

ग. स्वामी विवेकानन्द के गुरू का नाम.....था।

घ. स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना .....को की।

6.7 श्री अरविन्द का जीवन परिचय

श्री अरविन्द का जन्म कलकत्ता में 15 अगस्त 1872 ई. में हुआ, इनकी माता का नाम स्वर्णलता और पिता का नाम श्री कृष्णधन घोष था। पिता एक सिविल सर्जन थे। श्रीकृष्णघन इंगलैण्ड से एम.डी. की उपाधि प्राप्त किये हुए थे।

बंगाली भाषा के सर्वमान्य साहित्यकार, माडर्न रिव्यू के नियमित लेखक तथा भारतीय राष्ट्रीयता के पुरोधा राजनारायण बोस श्री अरविन्द के नाना थे।

चार वर्ष की आयु से अरविन्द की प्रारम्भिक शिक्षा दार्जिलिंग के लारेन्टो कान्वेन्ट स्कूल से आरम्भ हुई। माना जाता है कि श्री अरविन्द बाल्यकाल से ही एक होनहार मेधावी छात्र थे।

विद्यालय शिक्षा के पश्चात् श्री अरविन्द कैम्ब्रिज के किंग्स कालेज गये। जहाँ उन्होंने स्वयं को योग में सिद्ध किया। 14 वर्ष के पश्चात् भारत आकर महाराज बडौदा के यहां इन्होंने भूमि व्यवस्था तथा राजस्व विभाग में कार्य किया। इसके बाद बडौदा के ही कालेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक नियुक्त हुए और इसी कालेज के प्रधानाचार्य के पद पर प्रोन्नत हुए। श्री अरविन्द अध्यापन के कार्य के साथ-साथ 'वन्देमातरम्' पत्र के सम्पादकीय भी लिखते थे। श्री अरविन्द की विद्वत्ता के कारण ही वे बड़ौदा के शिक्षित वर्ग के प्रेम-पात्र बन गये, जन-साधारण में श्री अरविन्द की लोकप्रियता इतनी बढ़ चुकी थी कि लोग उन्हें बड़े भैया का सम्मान देने लगे। इनका विवाह अप्रैल 1901 में मृणालिनी देवी के साथ हुआ।

अनेक भाषाओं के ज्ञाता- श्री अरविन्द ग्रीक के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनको लैटिन, फेन्च, जर्मन तथा इतालवी भाषा का भी बहुत अच्छा ज्ञान था, पर भारतीय आर्ष ग्रन्थों से बेहद प्रभावित थे। भारत में इनको भारतीय संस्कृति जानने की इच्छा हुई, इसी कारण इन्होंने भारतीय धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया। जिसके फलस्वरूप भारत का एक दिव्य आध्यात्मिक रूप उनकी आंखों के सामने खड़ा हो गया। इन सब कार्यों के साथ-साथ श्री अरविन्द स्वतन्त्रता आन्दोलन से भी जुड़े रहे।

योगाभ्यास में रुचि- भारतीय संस्कृति के अध्ययन के साथ -साथ श्री अरविन्द की योगाभ्यास में भी विशेष रुचि बनने लगी थी और 1904 ई. में इन्होंने योग का अभ्यास प्रारम्भ किया। इसी समय उनकी भेंट लेले से हुई जिनके साथ श्री अरविन्द केवल तीन दिन ही ध्यान का अभ्यास कर पाये। मन की शान्ति तथा विचारों के निरन्तर दबाव से मुक्ति के लिए उन्होंने योगी लेले के अनुदेशों का पालन किया।

श्री अरविन्द ने अपने योगाभ्यास के विषय में अपने एक पत्र में लिखा- मैंने 1904 में बिना किसी गुरु के ही योगाभ्यास प्रारम्भ कर दिया। 1908 में मुझे एक मराठा योगी से इस दिशा में महत्त्वपूर्ण मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ, जिसके फलस्वरूप ही मुझे अपनी साधना के मूलाधार का ज्ञान प्राप्त हुआ।

श्री अरविन्द प्रतिदिन योग का अभ्यास करते थे। परन्तु 5 मई 1908 में श्री अरविन्द को विद्रोह के रूप में पकड़कर एक वर्ष के लिए अंग्रजों ने अलीपुर जेल में डाल दिया। अपने 1 वर्ष के कारावास के दौरान श्री अरविन्द ने अपना

समय गीता, उपनिषद् आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों के अध्ययन में बिताया। इसी दौरान वे अपनी आध्यात्मिक साधना भी करते थे, धीरे-धीरे श्री अरविन्द को आत्मज्ञान होने लगा और वह धीरे-धीरे राजनीतिक गतिविधियों से दूर होते चले गये।

संस्था की स्थापना- 4 अप्रैल 1910 ई. में श्री अरविन्द कलकत्ता से चन्द्रनगर होते हुए पाण्डिचेरी पहुंचे। जहाँ धीरे-धीरे मित्रों के साथ मिलकर एक आश्रम की स्थापना की। आजकल उस आश्रम में स्थित सौ से अधिक घरों में सैकड़ों आश्रमवासी रहते हैं जो दुग्धशाला, शाक-वाटिका तथा पाठशाला आदि आश्रम की अनेक गतिविधियों में कार्यरत रहते हैं। चौदह से अट्ठारह वर्ष के छात्रों को यहाँ व्यवसायिक शिक्षा भी प्रदान की जाती है।

1920 में पॉल रिचर्ड की पत्नी मीरा श्री अरविन्द के आश्रम में गयी। आश्रम के आदर्शों तथा सिद्धान्तों से प्रभावित हो उन्होंने वहीं रहने की इच्छा की। श्री अरविन्द ने उनको आश्रम का अध्यक्ष बना दिया। आश्रमवासी उन्हें माँ कहकर पुकारते थे। प्रत्येक दिन प्रातः काल वह अपने कक्ष से सम्बद्ध खिड़की से इच्छुक भक्तों को दर्शन दिया करती हैं। श्री अरविन्द का यह आश्रम एक सर्वदेशीय आश्रम है। यहाँ ईसाई, पारसी, मुसलमान तथा अन्य मतों के प्रति आस्थावान लोग भी रहते हैं। श्री अरविन्द अपने भक्तों को प्रतिवर्ष चार बार दर्शन दिया करते थे।

श्री अरविन्द का उद्देश्य किसी व्यक्ति विशेष की मुक्ति मात्र नहीं है। संसार के आध्यात्मिक रूपान्तरण तथा मानसिक, प्राणिक और दैहिक प्रकृति एवं मानवता के जीवन में दिव्य स्वभाव के अवतरण के लिए वह कर्म के माध्यम से ईश्वरीय संकल्प को मूर्तरूप प्रदान करने के पक्षधर थे। श्री अरविन्द का कहना है- दैवी आदेश के अनुसार हमें ईश्वर की प्रकृति में विकसित होना तथा उसके सान्निध्य में रहकर उसके प्रकाश एवं उसकी शक्ति का माध्यम बनकर उसके सृष्टि व्यापार का एक उपकरण बनना है। जीवन में जो कुछ भी अशुभ है उससे विलग तथा पवित्र होकर हमें संसार में मानव-जाति को रोमांचित तथा अनुप्राणित करने वाले एक विद्युत-प्रक्षेपण यन्त्र की भांति काम करना है। इसके परिणाम स्वरूप हम अपने समीपस्थ शत्-शत् व्यक्तियों को ईश्वरीय प्रकाश, शक्ति तथा आनन्द से पूर्ण कर उन्हें ईश्वरमय बना देंगे। श्री अरविन्द की 'लाईफ डिवाइन' समस्त संसार को चिन्तन की सम्यक् दिशा प्रदान करने वाली एक सशक्त कृति है। इसकी ओजस्विता तथा उपयोगिता सर्वकालिक है।

मृत्यु- स्नानागार में फिसलने के कारण श्री अरविन्द की दांयी टांग टूट गई थी। पर्याप्त प्रयत्न करने के बाद ही वे बैशाखी का सहारा लेकर चल सके। इन्होंने साधना के साथ-साथ लेखन कार्य भी जारी रखा। जीवन के अन्तिम दिनों में इन्हें गुर्दे से सम्बन्धित बीमारी हो गयी थी, लेकिन बीमारी के बावजूद वे शान्त बने रहते थे। इसी बीमारी के कारण 5 दिसम्बर 1950 ई. को उनका देहान्त हो गया।

अरविन्द भारतीय नवजागरण के सर्वोत्तम देश-भक्त, बुद्धि वादियों में सर्वाधिक कुशाग्र बुद्धि और द्रष्टाओं में सर्वाधिक सूक्ष्म द्रष्टा थे। वे भारतीय संस्कृति व आध्यात्मिक ज्ञान को लोगों तक पहुँचाने में सफल रहे। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि भारतीय संस्कृति जो समुचित संश्लेषणों में कुशल है, वह प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों के बीच परस्पर विरोध का दर्शन न कर उनमें तादात्म्य-स्थापन कर सकता है। श्री अरविन्द का जीवन दिव्य था। उन्होंने संसार को भी दिव्य जीवन व्यतीत करने का आदेश दिया। उनकी कृति लाईफ डिवाइन में उल्लिखित उनके उपदेश मनुष्य जाति को अनन्त काल तक अनुप्राणित करते रहेंगे।

अभ्यासार्थ प्रश्न

5. एक शब्द में उत्तर दीजिए

क. श्री अरविन्द का जन्म कब और कहॉ हुआ था।

ख. प्रारम्भिक शिक्षा श्री अरविन्द ने किस कॉलेज से ली।

ग. श्री अरविन्द का विवाह किससे हुआ।

घ. श्री अरविन्द का देहावसान कब हुआ

6.8 स्वामी कुवल्यानन्द का जीवन परिचय

जब भारतवर्ष में देशभक्ति की भावना व क्रान्ति का बिगुल बज रहा था, उसी समय 30 अगस्त, 1883 को गुजरात के डमोई गाँव में कुवलयानन्द का जन्म हुआ था। बचपन में स्वामी कुवलयानन्द को बालक जगन्नाथ गणेश कहकर पुकारा जाता था। बचपन से ही स्वामी कुवलयानन्द की जीवन कठिन परिस्थितियों से भरा था। स्वामी जी अपने विद्यार्थी जीवन में एक मेधावी व कुशाग्र बुद्धि वाले छात्र के रूप में जाने जाते थे। विद्यार्थी जीवन से ही ये देशभक्ति और भारतीय संस्कृति से अत्यन्त प्रभावित थे। इसी कारण वे लोकमान्य तिलक तथा श्री अरविन्द जैसी महान् विभूतियों से प्रभावित रहे। एक बार तो विद्यार्थी जीवन छोड़ वे स्वतन्त्रता आन्दोलन में ही कूद पड़े लेकिन सहयोगियों और शुभचिन्तकों के समझाने पर पुनः अपनी शिक्षा जारी रखी। 1903 में उन्होंने मैट्रिक परीक्षा पास कर संस्कृत छात्रवृत्ति भी प्राप्त की। 1907 से 1910 के मध्य स्वामी जी ने शारीरिक शिक्षा के विषय का गहन अध्ययन किया और इस विषय के भारतीय पहलु को भी जाना। 1919 में मालसर के परमहंस माधवदास जी महाराज के संपर्क में आये, जिनसे स्वामी जी ने योग एवं उससे संबन्धित पहलुओं को समझा। योग के अनेक लाभकारी पहलुओं से प्रेरित होकर उन्होंने अपना जीवन योग के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया और निम्न जीवन आदर्श बनाकर अध्ययन आदि में जुट गये-

- उचित माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र से देशभक्त ढूंढना व एकत्र करना।
- शारीरिक शिक्षा के भारतीय पहलुओं को साधारण शिक्षा से जोड़ना।
- विज्ञान व आध्यात्मिकता को एक ही मंच पर प्रस्तुत करना।

स्वामी जी का यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण योग के प्रचार, प्रसार एवं विकास में बहुत ही सार्थक रहा, उनके द्वारा किये गये अनेकों प्रयोगों से योग जैसी रहस्यमय विद्या का सामान्य व्यक्ति के लिए समझना सरल हो गया। परमपूज्य परमहंस जी के सानिध्य में योग क्रियाओं संबन्धी ज्ञान प्राप्त करते समय स्वामी जी ने अपने शारीरिक व मानसिक स्तर पर कई आश्चर्यजनक प्रभाव महसूस हुए, जिससे उनकी आस्था योग पर और भी दृढ़ हो गई। योग के प्रभाव इतने चमत्कारिक थे कि स्वयं स्वामी जी के पास उनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था।

आगे स्वामी जी ने मानव शरीर रचना व क्रिया से संबन्धित विस्तृत अध्ययन किया एवं समय-समय पर नये-नये प्रयोग करके अपने ज्ञान का विस्तार करते गये। स्वामी जी शीघ्र ही इस बात से अवगत हो चुके थे कि योग भारत की प्राचीनतम् विद्या है जिससे अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं तथा भारत में ऐसे योगियों की भी कमी नहीं है जिनके पास अत्यन्त गोपनीय योग संबन्धी ज्ञान हैं। अब यह आवश्यक बन चुका था कि इस योग को आधुनिक विज्ञान के साथ जोड़ कर एक नयी दिशा दी जाए।

तत्कालीन मान्यताएँ थीं कि योग एक आध्यात्मिक, अतिविशिष्ट एवं सर्वोत्कृष्ट अनुभव है जो वैज्ञानिक प्रयोगों से परे है तथा इस योगविद्या से प्राप्त बहुमूल्य अनुभवों को सामान्य व्यक्तियों से दूर रखा जाए। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में स्वामी कुवलयानन्द ने ही योग के वैज्ञानिक दृष्टि कोण की जिज्ञासा को अनुसंधान और प्रयोगों के क्षेत्र में बढाया और शीघ्र ही वे अपनी शोध प्रक्रिया में आगे बढ़ते हुए चरम पर पहुँचे। इसी विचार को अपने जीवन का एकमात्र ध्येय बनाते हुए योग क्रियाओं के वैज्ञानिक विश्लेषण पर कार्य किया। इसी दौरान उन्होंने दो यौगिक क्रियाओं 'उड्डियान व नौलि' पर प्रयोग किये और बताया कि सामान्यतः बड़ी आंत का दाब एवं बाहर का वातावरणीय दाब समान होता है परन्तु नौलि क्रिया के अभ्यास के दौरान बड़ी आंत के भीतर का दबाव बाह्य वातावरण के दबाव की तुलना में कम हो जाता है और इस प्रकार निर्वात की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। स्वामी जी ने इस निर्वात को 'निगेटिव प्रेशर' या अपने गुरुदेव के नाम पर 'माधवदास

वैक्यूम' रखा है। अपने इस शोध का वर्णन स्वामी जी ने रविन्द्रनाथ टैगोर, जगदीश चन्द्र बोस, डॉ. नाथगिरी आदि ख्याति प्राप्त लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया, जिससे स्वामी जी को काफी प्रशंसा मिली। स्वामी जी स्वयं भी इस परिणाम से सकारात्मक थे और आगे चल कर उन्होंने आसन, प्राणायाम, मुद्राएं और अनेको यौगिक क्रियाओं पर अनुसंधान किये।

आधुनिक भारत के योगियों में स्वामी कुवलयानन्द कई विभिन्न दृष्टियों से श्रेष्ठ हैं, स्वामी जी ने कई मिशनों में उत्साह के साथ कार्य किया और यह विचार दिया कि योग मानवता के विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी साधन है। स्वामी जी वैज्ञानिक अन्वेषणकर्ता के दृष्टिकोण के साथ-साथ भारतीय बौद्धिक एवं पारम्परिक धार्मिक विचारधारा के भी समर्थक थे। स्वामी जी का ईश्वर के प्रति विशेष विश्वास था। वे हमेशा ही ज्ञान, कर्म, भक्ति को प्रचारित करने वाले व्यक्तियों से प्रेरित रहते थे। स्वामी जी अपने व्याख्यानों में प्रेम-पूर्वक तरीके से ईश्वरीय भक्ति के विषय में प्रेरणा देते थे। वे अपना प्रत्येक कार्य ईश्वर के प्रति समर्पण एवं प्रार्थना भाव से करते थे, उनकी इस भावना का विचार कैवल्यधाम से प्रकाशित होने वाली पत्रिका योगमीमांसा के प्रत्येक अंक में देखने को मिलता है।

स्वामी कुवलयानन्द जी ने योग को वैज्ञानिक दृष्टिकोण देकर इसे जन-साधारण के लिए उपलब्ध कराया। यह वह समय था जब योग केवल साधु-संन्यासियों के लिए तथा जंगल में करने की विधि माना जाता था। स्वामी जी ने योग को एक क्रान्ति का रूप देकर अक्टूबर 1924 में दशहरे के दिन लोनावाला के निकट बालवन नामक गाँव में कैवल्यधाम योग आश्रम की स्थापना की। यहीं उन्होंने कुवलयानन्द नाम भी आत्मसात् किया तथा पूर्ण ऊर्जा एवं धैर्य के साथ अपना कार्य प्रारम्भ किया। स्वामी जी का यह कैवल्यधाम वैज्ञानिक तरीके से योग शिक्षा और चिकित्सा देने वाली प्रथम संस्था है। कैवल्यधाम की स्थापना के तुरंत बाद स्वामी जी ने योग मीमांसा नामक योग पत्रिका का प्रकाशन शुरु किया। इस पत्रिका में योग अनुसंधान संबन्धी लेख छपने के कारण यह योगपत्रिका का रूप ले चुका था और देश-विदेश में प्रचलित था। इन सबसे प्रभावित होकर स्वामी जी के आश्रम को अनेक लोगों से आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ।

पोरबंदर के राणा साहब की सहायता से कैवल्यधाम लोनावला में राजा नटवर सिंह पैथोलॉजी लैब की स्थापना की गयी, जिसमें अनेक आधुनिक उपकरणों को लगाया गया। आगे चलकर कैवल्यधाम की शाखा रूपी स्वास्थ्य केन्द्र बम्बई में स्थापित किया गया, जो कि श्रीचुन्नीलाल मेहता की आर्थिक सहायता से प्रारम्भ किया गया जिसका नाम इन्हीं के पुत्र के नाम पर ईश्वरदास चुन्नीलाल यौगिक हैल्थ सेंटर रखा गया। इसी प्रकार सौराष्ट्र की राजकुमारी के आर्थिक सहयोग से कैवल्यधाम आश्रम की एक अन्य शाखा खोली गयी। सन् 1944 में योग साहित्य के शोध और योग प्रचार-प्रसार को ध्यान में रखते हुए स्वामी जी ने कैवल्यधाम श्रीमन् माधवयोग मन्दिर समिति की स्थापना की। लोनावला में सन् 1961 में पहला यौगिक अस्पताल स्वामी कुवलयानन्द द्वारा स्थापित किया गया, जिसमें 1963-64 में अस्थमा के ऊपर शोध कार्य किया गया। आधुनिक विज्ञान और प्राचीन योग के सम्मिलित प्रयास से प्रभावित होकर विभिन्न राज्य सरकारों ने स्वामी जी के साथ मिलकर यौगिक अभ्यास कार्यक्रमों का आयोजन किया।

योगविद्या के अलावा स्वामी जी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् भी थे। अपने व्यस्त जीवनचर्या के बावजूद कभी-कभी श्री कृष्ण के प्रति भावोद्गार स्वरूप कुछ पद्य भी लिखे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि योग के प्रचार-प्रसार में स्वामी जी ने अतुलनीय योगदान दिया। उनके द्वारा किये गये कार्य ही आज योग विज्ञान विषय के लिए नीव का कार्य कर रहे हैं।

अभ्यास हेतु प्रश्न

6. सत्य/असत्य बताइये

क. स्वामी कुवलयानन्द का जन्म 30 अगस्त 1883 को हुआ था।

ख. स्वामी कुवलयानन्द ने बिहार स्कूल ऑफ योगा की स्थापना की।

ग. स्वामी कुवलयानन्द ने योग को वैज्ञानिक दृष्टिकोण देकर जन साधारण के लिए उपलब्ध कराया।

घ. स्वामी कुवलयानन्द संस्कृत के भी प्रकाण्ड विद्वान थे।

6.9 सारांश

योग भारतवर्ष की अमूल्य धरा है। भारतवर्ष की इस पवित्र धरती पर समय-समय पर अनेकानेक योगियों ने जन्म लिया और ये योगी जीवन भर अपने ज्ञान व शक्ति का प्रयोग लोक कल्याणार्थ करते गये। निश्चित ऐसे महामानवों ने 'योग' रूपी मानवकल्याणकारी विद्या को अपनाकर समाज, राष्ट्र व विश्व को एक नई दिशा दी। आजकल के भागदौड़ के जीवन में जब व्यक्ति किसी न किसी रूप से परेशान है तो वह इन योगियों के चिन्तन को आत्मसात कर अपनी परेशानियों से निजात पा सकता है। महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योगसूत्र आत्मकल्याण का विषय तो है ही साथ-साथ वर्तमान में बढ़ते मानसिक रोगों के लिए रामवाण है। गोरक्षनाथ जो हठ-योगी थे वर्तमान में हठयोग के विविध अभ्यासों से हर कोई व्यक्ति परिचित है। आज जब वैचारिक व सांस्कृतिक प्रदूषण इतना बढ़ रहा है तो युवा पीढ़ी पतन की ओर जा रही है ऐसी स्थिति में स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द और श्री अरविन्द के विचार उनमें परिवर्तन ला सकते है। योग के विविध अभ्यासों शोध व अनुसंधान का दौर चल पड़ है स्वामी कुवलयानन्द जी ने यौगिक अभ्यासों का आधुनिक विज्ञान के अनुसार विवेचन किया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि योगियों द्वारा प्रतिपादित योग विद्या से व्यक्ति सामान्य मनुष्य से महामानव बन सकता है।

6.10 शब्दावली

उर्ध्वलोक – संसार, जमीन

चित्त – मन, बुद्धि तथा अहंकार का सम्मिलित रूप

क्रियायोग – तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान का सम्मिलत रूप

गोमय – गाय के गोबर का एकत्र ढेर

काल – समय

प्रवृत्ति – आदत

वैरागी – जिसे कोई चाह नहीं, राग रहित

आत्मज्ञान – आत्मा का ज्ञान

उड्ड्यान बन्ध – हठयोग की क्रिया जिसमें उदर क्षेत्र को संकुचित किया जाता है।

नौलि – हठयोग की क्रिया जिसमें उदर क्षेत्र को संकुचित किया जाता है।

6.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.

क. शेषनाग का	ख. 300 से 400 ई0
ग. अभ्यास और वैराग्य	घ. क्रियायोग

2.

क. सत्य ख. सत्य

ग. असत्य घ. सत्य

3.

क. स ख. अ

ग. ब घ. अ ड. ब

4.

क. नरेन्द्र ख. विश्वनाथ मुखर्जी

ग. रामकृष्ण घ. 1 मई 1897

5.

क. 15 अगस्त 1877 को कलकत्ता ख. लारेन्टो कान्वेन्ट स्कूल

ग. मृणालिनी देवी घ. 5 दिसम्बर 1950

6.

क. सत्य ख. असत्य

ग. सत्य घ. सत्य

6.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. विश्वनाथ मुखर्जी – भारत के महान योगी (2003) अंक 1-14 अनुराग प्रकाशन चौक वारणसी।

2. नरेन्द्र कोहली – तोड़ों कारा तोड़ों (2006) किताबहार प्रकाशन 4855-56/24

अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली।

3. डॉ0 उमेशपुरी 'ज्ञानेश्वर' भगत माला; भारत के सन्त और भक्त (2008) रणधीर प्रकाशन रेलवे रोड हरिद्वार।

6.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. महर्षि पतंजलि के जीवन दर्शन को लिखिए।
2. महायोगी गोरक्षनाथ का जीवन परिचय देते हुए इनकी योग साधना के विषय में लिखिए।
3. स्वामी दयानन्द का जीवन परिचय तथा योग साधना बताइये
4. निम्न योगियों की योग साधना संक्षिप्त में दीजिए -

(अ) स्वामी विवेकानन्द (ब) स्वामी कुवलयानन्द

(स) गोरक्षनाथ (द) श्री अरविन्द

इकाई 7 :- चित्त, चित्त भूमि, चित्तवृत्ति, अभ्यास वैराग्य

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 चित्त
7.4 चित्त भूमि
7.4.1 क्षिप्त
7.4.2 मूढ
7.4.3 विक्षिप्त
7.4.4 एकाग्र
7.4.5 निरूद्ध
7.5 चित्त वृत्ति
7.5.1 प्रमाणवृत्ति
7.5.2 विपर्यवृत्ति
7.5.3 विकल्पवृत्ति
7.5.4 निद्रावृत्ति
7.5.5 स्मृतिवृत्ति
7.6 अभ्यास व वैराग्य
7.7 सारांश
7.8 शब्दावली
7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ
7.11 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक परम्परा में षठदर्शन-न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा तथा वेदान्त का महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में षठदर्शनों की मान्यताएँ अलग है फिर भी उन्हें एक दूसरे का पूरक कहा जाता है। सांख्य की मान्यताएँ योग से मिलती है इसलिए सांख्य को योग का सैद्धान्तिक पक्ष तथा योग को सांख्य का व्यवहारिक पक्ष कहा जाता है। योग दर्शन की साधना पद्धतियों का अगर अवलोकन करें तो प्रारम्भ में ही चित्त, चित्त भूमियों तथा वृत्तियों का वर्णन मिलता है। इन वृत्तियों को रोकने के लिए अभ्यास व वैराग्य नामक दो साधनाये बताई गई है जिसका प्रस्तुत इकाई में विस्तार से वर्णन किया जा रहा है।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के बाद में

- आप चित्त की अवधारणा को जान सकेंगे
- चित्त भूमियों का विस्तार से अध्ययन कर सकेंगे।
- चित्त वृतियों का सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे।
- चित्त वृतियों के निरोध के लिए उपयुक्त साधनों को जान सकेंगे।

7.3 चित्त

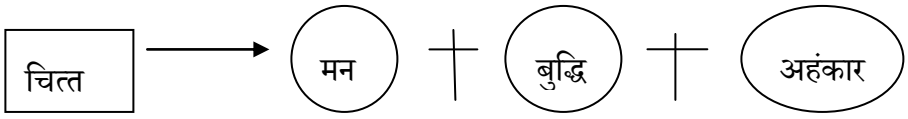

'चित्त' शब्द की व्युत्पत्ति 'चिति संज्ञाने' धातु से हुई है। ज्ञानानुभूति के साधन को चित्त कहा जाता है। व जीवात्मा को सुख-दुःख के भोग हेतु यह शरीर प्राप्त हुआ है। जो भी अच्छा या बुरा कर्म किया जाता है, या सुख दुःख का भोग किया जाता है, वह इस शरीर के माध्यम से ही सम्भव है। कहा भी है 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' अर्थात् प्रत्येक कार्य सम्पादन करने का साधन यह शरीर ही है। इस शरीर में दो प्रकार के साधन हैं, जिन्हें बाह्यकरण व अन्तःकरण के नाम से जाना जाता है। बाह्यकरण के अन्तर्गत हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ आती हैं। जिनका व्यापार बाहर की ओर अर्थात् संसार की ओर होता है। बाह्य विषयों के साथ इन्द्रियों के सम्पर्क से अन्तस् में आत्मा को जिन साधनों से ज्ञान-अज्ञान या सुख-दुःख की अनुभूति होती है, उन साधनों को अन्तःकरण के नाम से जाना जाता है। यही अन्तःकरण चित्त के अर्थ में लिया जाता है। योग दर्शन में मन, बुद्धि, अहंकार इन तीनों के सम्मिलित रूप को चित्त के नाम से प्रदर्शित किया गया है। परन्तु वेदान्त दर्शन अन्तःकरण चतुष्टय की बात करता है, वह में, बुद्धि, अहंकार और चित्त इन चारों के सम्मिलित रूप को अन्तःकरण नाम देता है। योग दर्शन की ही भाँति मन का कार्य संकल्प-विकल्प करना, बुद्धि का कार्य निश्चय करना, अहंकार का कार्य सत्तात्मक भाव लाना व स्वत्व-परत्व जोड़ना मानता है। साथ ही वह चित्त का कार्य स्मरण कराना मानता है। व्यवहार में मन, बुद्धि और चित्त को प्रायः पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता है। सांख्य भी बुद्धितत्व को चित्त के अर्थ में ही लेता है।

चित्त का स्वरूप अत्यन्त विलक्षण है। यद्यपि यह आत्मा से भिन्न तत्व है फिर भी आत्मा से पृथक् करके इसको देखना अत्यन्त कठिन है। चित्त प्रकृति का सात्विक परिणाम है। अतः प्रकृति का कार्य है। प्रकृति त्रिगुणात्मक है। अतः चित्त भी त्रिगुणात्मक है। सत्व की प्रधानता होने के कारण इसको प्रकृति का प्रथम परिणाम माना जाता है।

सांख्य और योग के मत में चित् चिति, चैतन्य पुरुष और आत्मा ये सब पर्यायवाचक शब्द हैं। चित् अपने आप में अपरिणामी, कूटस्थ और निष्क्रिय है। इसी चित् अथवा पुरुष तत्व को भोग और मोक्ष देने के लिए इसके साथ प्रकृति का संयोग होता है। प्रकृति का प्रथम परिणाम रूप बुद्धि या चित्त तत्व ही भोग और मोक्षरूप प्रयोजन की सिद्धि करता है।

चित् के संयोग से बुद्धि चित्त कहलाती है- 'चिद्युक्तं चित्तम्' यही चित्त शब्द की व्युत्पत्ति है। 'चिद्युक्तम्' का अर्थ यह है कि पुरुष के सम्पर्क से बुद्धि चेतनवत् हो जाती है। इसी लिए उसे चित्त कह दिया गया है। चेतनवत् होते ही चित्त में कार्य करने की क्षमता आ जाती है। चित्त के सम्पर्क से पुरुष में यह परिवर्तन आया कि वह चित्त के किये गये कार्यों को अपना कार्य मान बैठा। जो कर्तृत्व और भोक्तृत्व चित्त का धर्म था, अहंकारवश पुरुष स्वयं को कर्ता और भोक्ता मान बैठा।

यद्यपि चित्त एक है, किन्तु त्रिगुण का परिणाम अनेकविध होने से यह अनेक सा प्रतीत होता है। चित्त को अन्तः करण या अन्तरिन्द्रिय कहा जाता है। योगदर्शन में अन्तःकरण के लिए चित्त शब्द का प्रयोग किया गया है। न्यायदर्शन में अन्तःकरण के लिए मन शब्द का व्यवहार हुआ है। अद्वैत वेदान्त में अन्तःकरण के चार भेद स्वीकार किये गये हैं- मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त।

7.4 चित्तभूमि

चित्त में प्रकृति के तीनों गुण सत्व, रज और तम विद्यमान हैं। सबके चित्त एक समान नहीं हैं। व इन तीनों की विभिन्न स्थितियों के कारण चित्त भी विभिन्न स्थितियों वाला हो जाता है। योग दर्शन में चित्त की स्थितियों को क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध इन पाँच स्थितियों में बाँटा है। जिन्हें चित्त की अवस्थायें या चित्तभूमि के नाम से भी जाना जाता है।

7.4.1 क्षिप्त- क्षिप्तावस्था पूर्णतया रजोगुणी अवस्था है। इस अवस्था वाला चित्त चंचल बना रहता है। वह निरन्तर विषयों की ओर भागता रहता है। यह रजोगुण की प्रधानता के कारण होता है। क्योंकि रजोगुण का धर्म है क्रियाशीलता इसलिए रजोगुण से युक्त चित्त भी निरन्तर क्रियाशील बना रहता है। वह किसी भी विषय पर स्थिर नहीं हो पाता, एक विषय प्राप्त होने पर वह तुरन्त दूसरे विषय की ओर दौड़ने लगता है। इसी कारण चित्त में दुःख की उत्पत्ति होती है।

7.4.2 मूढ़- मूढ़ावस्था पूर्णतया तमोगुणी अवस्था है। तमोगुण की प्रधानता होने के कारण चित्त की इस अवस्था में चित्त में अज्ञान बना रहता है। बुद्धि में जड़ता होती है, विषयों के यथार्थ ज्ञान का अभाव होता है। इसी कारण विषयों के प्रति इस अवस्था में मोह उत्पन्न होता है तथा ऐसे चित्त से युक्त जीवात्मा संसार में फंसा रहता है।

7.4.3 विक्षिप्त- चित्त की यह अवस्था भी पूर्णतया रजोगुणी होती है। किन्तु कभी-कभी उसमें सत्वगुण का उद्रेक उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्था में जब चित्त में रजोगुण प्रधान होता तो वह बहिर्मुख होकर विषयों की ओर भागता रहता है और जब कभी सत्वगुण बढ़ जाता है तो चित्त में वैराग्य का भाव उत्पन्न हो जाता है और कुछ समय के लिए चित्त अन्तर्मुखी हो जाता है। किन्तु बार-बार गुणों की अवस्था परिवर्तित होने के कारण चित्त की इस अवस्था में भी स्थिरता का अभाव होता है। इसीलिए इस अवस्था को विक्षिप्तावस्था कहा जाता है। यह अवस्था क्षिप्त तथा मूढ़ से कुछ श्रेष्ठ कही जा सकती है।

7.4.4 एकाग्र- चित्त की यह अवस्था पूर्णतया सत्वगुणी होती है। रज व तम दोनों न्यून हो जाते हैं। अब रजोगुण केवल सात्विकवृत्ति को क्रियाशील बनाये रखने का कार्य करता है तथा तमोगुण उस सात्विक वृत्ति को स्थिर बनाये रखने का कार्य करता है। जिससे विषयों का यथार्थ ज्ञान चित्त में उत्पन्न होने लगता है। साथ ही वैराग्य भाव दृढ़ होने लगता है तथा चित्त में सुख की उत्पत्ति होती है। ध्यान की यही अवस्था है। इसी अवस्था को सम्प्रज्ञात योग कहा जा सकता है।

7.4.5 निरुद्ध- चित्त की यह अवस्था त्रिगुणातीत अवस्था ही है। निरन्तर अभ्यास से सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त करने पर समस्त वृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। जिससे चित्त शान्त हो जाता है। विवेकख्याति वृत्ति भी परवैराग्य द्वारा हटाने के बाद निर्बीज ,या असम्प्रज्ञात समाधि की स्थिति है। सर्ववृत्तिनिरोध होने के कारण द्रष्टा की स्वरूपस्थिति इस अवस्था के पश्चात् आ जाती है।

शास्त्रों में चित्त को स्वच्छ दर्पण के समान या शुद्ध स्फटिक मणि के समान बताया है। जैसे ये दोनों सम्पर्क में आने वाले विषयों के आकार को ग्रहण कर तदाकार हो जाते हैं, उन्हीं के रूप-रंग को धारण कर लेते हैं। उसी प्रकार चित्त भी जब इन्द्रियों के माध्यम से विषयों के सम्पर्क में जाता है तो वह भी उसी विषय के आकार को ग्रहण कर लेता है। जिसे चित्त का विषयाकार होना या चित्त का परिणाम कहा जाता है।

7.5 चित्तवृत्ति

चित्त का रूपान्तरण ही वृत्ति है। चित्त स्फटिक मणि के समान निर्मल तत्व है। उसका अपना कोई आकार नहीं होता। जिस विषय के सम्पर्क में वह आता है उसी के समान आकार को धारण कर लेता है। यह विषयाकारता ही वृत्ति कहलाती है। वृत्ति व्यापार को कहा जाता है। चक्षु आदि इन्द्रियों का अपने रूप आदि विषयों के साथ सम्बन्ध होना व्यापार है। बाह्यकरण चक्षुआदि का जो व्यापार है, वही व्यापार अन्तःकरण चित्त का रहता है।

क्लेशों के कारण वृत्तियों के दो भेद माने गये हैं। परन्तु वास्तव में ये वृत्तियां पाँच है। उन पाँचों वृत्तियों के भी दो-दो भेद होते हैं। कहा गया है-

वृत्तयः प´चतÕयः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः। योगसूत्र- 1/5

अर्थात् वृत्तियाँ पाँच प्रकार की हैं, जो क्लेश की उत्पादक और अक्लेश का विनाश करने वाली हैं। क्लेश पाँच प्रकार के कहे गये हैं- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। अविद्या आदि क्लेशों के सहयोग से इन्द्रियों की विषयों मे प्रवृत्तिरूप वृत्तियाँ दुःख आदि को उत्पन्न करती हैं। जिन वृत्तियों के हेतु अविद्या आदि क्लेश नहीं हैं, प्रत्युत आध्यात्मिक भावनाओं से प्रेरणा पाकर इन्द्रिय-वृत्तियाँ उभरती हैं वे 'अक्लिष्ट' हैं, दुःख आदि को उत्पन्न करने के बजाय वे उनके नाश करने में सहयोगी होती हैं। ये वृत्तियाँ अभ्यासी को विवेकख्याति की ओर अग्रसर करती हैं, एवं उस लक्ष्य तक पहुँचाती है। इन पाँच वृत्तियों को निम्नवत् जान सकते हैं- 1. प्रमाण, 2. विपर्यय, 3. विकल्प, 4. निद्रा तथा 5. स्मृति-

'प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः।' योगसूत्र& 1/6

7.5.1 प्रमाणवृत्ति - 'प्रमा करणं प्रमाणम्' अर्थात् प्रमा (ज्ञान) के करण (साधन) को प्रमाण कहते हैं अथवा 'प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम्' अर्थात् जिससे प्रमा ज्ञान होता है। वह प्रमाण कहलाता है अर्थात् प्रमा के साधन का नाम प्रमाण है। कहा गया है-

'प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि' यो.सू. 1/7

अर्थात् प्रथम प्रमाण वृत्ति तीन प्रकार की है प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम।

(क) प्रत्यक्ष प्रमाण- कहा गया है-

इन्द्रियप्रणालिकया चित्तस्य बाह्यवस्तूपरागात् तद्विषया सामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधारणप्रधाना वृत्तिः प्रत्यक्षं प्रमाणम्। योसूत्र व्यासभाष्य- 1/7

अर्थात इन्द्रियों के द्वारा चित्त का बाह्य विषयों से सम्बन्ध होने से, उनको अपना विषय करने वाली सामान्यविशेषरूप पदार्थ के विशेष अंश को प्रधान रूप से निश्चय करने वाली वृत्ति प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाती है अथवा यह भी कह सकते हैं कि इन्द्रिय और वस्तु के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं और उसका साधन हमारी इन्द्रियां होती हैं। अतः उस ज्ञान के उत्पन्न होने का करण हमारी इन्द्रियाँ होने के कारण इन्द्रियों को प्रत्यक्ष प्रमाण कहा जाएगा।

कुछ दार्शनिकों का मत है कि सामान्य ही पदार्थ हैं, कुछ कहते हैं कि विशेष ही पदार्थ और कुछ का मत है कि पदार्थ सामान्य और विशेष से युक्त है। किन्तु सांख्य और योग के अनुसार पदार्थ न तो सामान्य रूप है, न विशेष रूप है और न ही सामान्य विशेष से युक्त है अपितु पदार्थ सामान्यविशेष रूप है। निष्कर्ष यह हुआ कि इन्द्रिय द्वारा घटादि विशेष के आकार वाली जो चित्तवृत्ति है, वह प्रत्यक्ष प्रमाण है।

(ख) अनुमान प्रमाण- किसी अन्य वस्तु के अनुसार किसी वस्तु का ज्ञान करना अनुमान ज्ञान कहलाता है। कहा गया है-

'अनुमेयस्य तुल्यजातीयेष्वनुवृत्तो भिन्नजातीयेभ्यो व्यावृत्तः सम्बन्धो यस्तद्विषया सामान्यावधारणप्रधाना वृत्तिरनुमानम्।' योगसूत्र;व्यासभाष्यद्ध 1/7

अर्थात् अग्नि आदि अनुमेय साध्य का, पर्वतादि पक्ष सदृश महानसादि में रहने वाला तथा भिन्नजातीय तड़ागादि में नहीं रहने वाला जो व्याप्तिरूप सम्बन्ध है, तद्विषयक सामान्य अंश का प्रधानरूप से विषय करने वाली जो बुद्धिवृत्ति है, वह अनुमान प्रमाण कहलाती है। जैसे चन्द्र तारागण गति वाले हैं क्योंकि वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं जैसे चैत्र। जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जाता, वह गतिमान् नहीं होता, जैसे- पर्वत।

सांख्य और योग दोनों ही शास्त्रों ने कारण-कार्य भाव संबन्ध को मान्यता प्रदान की है। अतः कहने का तात्पर्य है, कि कार्य के अनुसार कारण और कारण के अनुसार कार्य का ज्ञान करना अनुमान ज्ञान कहलाता है। यह तीन प्रकार का होता है-

पूर्ववत्- यह अनुमान प्रमाणवृत्ति का एक ऐसा सिद्धान्त है जिसमें कारण के अनुसार कार्य का अनुमान किया जाता है। जैसे यदि काले बादल और आकाश विद्युत की चमक तथा बादलों की गड़गडाहट सुनाई दे तो भविष्य में होने वाली वर्षा का अनुमान होता है जो कि वर्तमान में इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है। इस प्रकार के अनुमान को पूर्ववत् (कारण के अनुसार) उत्पन्न होने वाला ज्ञान कहा जाएगा।

शेषवत् (कार्य के अनुसार) जब कार्य को देखकर कारण का अनुमान किया जाए तो उसे शेषवत् अनुमान कहा जाता है। शेष कहने का तात्पर्य कार्य से है। जैसे नदी के गन्दे एवं बढ़े हुए जल स्तर को देख कर, उसके कारणरूप पर्वतों पर हुई वर्षा का अनुमान किया जाता है। वर्षा एक या दो दिन पहले पर्वतों पर हो चुकी जो कि इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है। परन्तु उसका ज्ञान परिणाम को देख कर आज किया जा रहा है। इसी को शेषवत् अनुमान कहते हैं।

सामान्यतः दृष्ट- एक बार से अधिक बार देखे गए की संज्ञा सामान्यतः दृष्ट होती है। कहने का तात्पर्य है कि जब किसी कार्य के कारण को अनेक बार देख कर उसका ज्ञान किया जाता है तो फिर वह सामान्य की अवस्था को प्राप्त हो जाता है फिर यदि उसी जाति का कार्य अन्य स्थान पर बिना उपादान कारण के होगा तो उसके उपादान कारण का ज्ञान अनुमान नामक प्रमाण वृत्ति से कर लिया जाएगा। जैसे शैशव अवस्था से ही देखा जाता है कि कुम्हार घट का निर्माण कर रहा है और लोहार लोहे से बने हथियारों का ऐसी अवस्था को अनेक बार देखना सामान्यतः दृष्ट कहा जाता है, अब इसके बाद यदि किसी अन्य घट को हम बाजार में देखते हैं तो अनुमान करेंगे कि इस घट का निर्माता भी कुम्हार ही है या लोहे से बने हथियारों का निर्माता लोहार है। इसी स्थिति को सामान्यतःदृष्ट अनुमान प्रमाण वृत्ति कहा जाता है।

(ग) आगम प्रमाण- जब किसी वस्तु अथवा तत्व के ज्ञान का कारण न तो इन्द्रियां होती है और न ही उनका अनुमान किया जाए तो उस ज्ञान को आगम प्रमाण से सिद्ध किया जाता है जैसे- स्वर्ग और नरक आदि। कहा गया है-

आप्तेन दृष्टोऽनुमितो वाऽर्थः परत्र स्वबोधसंक्रांतये शब्देनोपदिश्यते शब्दात् तदर्थविषयावृत्तिः श्रोतुरागमः। योगसूत्र (व्यासभाष्य 1/7)

अर्थात् आप्तपुरुष अथवा आप्तग्रन्थों द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से ज्ञात विषय को दूसरे में ज्ञान उत्पन्न करने के लिये शब्द के द्वारा उपदेश किया जाता है। वहाँ शब्द से उस अर्थ को विषय करने वाली जो श्रोता की वृत्ति है, वह आगम प्रमाण कहलाती है।

वास्तव में स्वर्ग को चक्षु आदि इन्द्रियों से ग्रहण नहीं किया जा सकता और न ही वह किसी के द्वारा अनुमानित है परन्तु स्वर्ग की मान्यता है। यहाँ पर आगम प्रमाण की मान्यता पुष्ट होती है। क्योंकि वेदादि ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर स्वर्ग और नरक की कल्पना की गई है। इस लिए उसकी सत्ता को मानना अनिवार्य हैं। इस आगम प्रमाण के अन्तर्गत आप्त पुरुष अथवा आप्त ग्रन्थों की भी गणना की जाती है।

7.5.2 विपर्यय- मिथ्या ज्ञान को विपर्यय कहते हैं। वह मिथ्या ज्ञान वस्तुतत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित नहीं होता योगदर्शन में कहा गया है-

'विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्' योगसूत्र 1/8

अन्धकार आदि दोषों के कारण पुरोवर्ती रस्सी को सांप समझना मिथ्याज्ञान है। सांपविषयक चित्तवृत्ति पुरोवर्ती वस्तुतत्त्व-रस्सी के रूप में प्रतिष्ठित नहीं है। अतः यह चित्तवृत्ति योगदर्शन में 'विपर्यय' नाम से जानी जाती है। इसी प्रकार सीप में चांदीविषयक वृत्ति, बालुकाओं में जलविषयक, देह तथा इन्द्रिय में आत्मविषयक चित्तवृत्ति का नाम विपर्यय है।

7.5.3 विकल्प- शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः योगसूत्र 1/9

वस्तुशून्य होने पर भी शब्दजन्य ज्ञान के प्रभाव से जो व्यवहार देखा जाता है, वह विकल्पवृत्ति है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि शब्द और शब्दज्ञान के अनुसार उभरने वाली चित्त की वृत्ति यदि विषयगत वस्तु से शून्य हो तो विकल्प कहलाती है। किसी शब्द के उच्चारण और उससे होने वाले शब्दज्ञान के अनुसार उसके प्रभाव से सुननेवाले व्यक्ति के चित्त में उभरने वाली वृत्ति को 'विकल्प' कहते हैं। परन्तु जिस आधार पर वह शब्द या शब्द समूह कहा गया है, उसका सदा ही वहाँ अभाव होना आवश्यक है। जैसे एक व्यक्ति ने कहा- 'पानी से मेरा हाथ जल गया।' वस्तुतः पानी से हाथ कभी नहीं जलता, प्रत्युत पानी के साथ संश्लिष्ट अग्नि से हाथ जलता है। पानी में जलाने के सामर्थ्य का सदा अभाव रहता है।

जलाने के सामर्थ्यरूप वस्तुसत्ता से पानी सर्वथा शून्य रहता है। फिर भी कहने-सुनने वाले दोनों उन्हीं शब्दों को बोलते और सुनते हुए उसका अर्थ समझ जाते हैं। चित्तवृत्ति के अनुसार पुरुष को उसी प्रकार का बोध होता है। ऐसी चित्तवृत्ति को शास्त्र में 'विकल्प' नाम दिया गया है।

7.5.4 निद्रा- प्रमाण, विपर्यय और विकल्प के समान निद्रा भी एक वृत्ति है, ऐसा सांख्ययोग का सिद्धान्त है। नैयायिक निद्रा को वृत्ति नहीं मानते हैं। उनके मतानुसार निद्रा ज्ञानाभावरूप है। निद्रा का स्वरूप पत´जलि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि अभाव की प्रतीति को विषय करनेवाली चित्तवृत्ति का नाम निद्रा है-

'अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा' योगसूत्र 1/10

यहाँ पर ज्ञान के अभाव की प्रतीति समझनी चाहिए। इन्द्रियों से होने वाले ज्ञान का उस अवस्था में अभाव रहता है। यह विवरण सुषुप्ति अवस्था का है। जैसे जाग्रत और स्वप्न अवस्था में इन्द्रिक ज्ञान होते रहते हैं ऐसा ज्ञान सुषुप्ति अवस्था में नहीं होता। तात्पर्य यह है कि 'निद्रा' नामक वृत्ति सुषुप्ति अवस्था है। इसको लोक में गाढ़ निद्रा या गहरी नींद कहते हैं। जब व्यक्ति इस निद्रा से जाग उठता है तो कहता है 'मैं सुखपूर्वक सोया'। यह ज्ञान निद्रा की अवस्था में होता है। इसी का नाम निद्रा वृत्ति है। निद्रा होने के साथ-साथ सुख के अनुभव के कारण इस अवस्था को वृत्ति कहा गया है।

7.5.5 स्मृति- पहले अनुभव किये हुए विषय का फिर उभर आना स्मृति नामक चित्तवृत्ति है-

'अनुभूतविषयाऽसम्प्रमोषः स्मृति' 1/11

सूत्र के 'असम्प्रमोषः' पद में 'मुष्' धातु का प्रयोग है, जिसका अर्थ धातुपाठ में 'स्तेय' चोरी करना, निर्देश किया गया है। अपने अधिकार की किसी वस्तु का अवैधानिक रूप से उठा लिया जाना, अथवा दूर कर दिया जाना। इस पद में 'सम्' और 'प्र' दो उपसर्ग हैं, जो धात्वर्थ की उग्रता को अभिव्यक्त करते हैं। एक अधिकार से वस्तु का नितान्त अनधिकृत रूप में चले जाना। 'सम्प्रमोष' पद का नंच के साथ समास कर 'असम्प्रमोष' पद से पूर्वोक्त अर्थ के पूर्ण विपरीत अर्थ का अभिव्यंजन किया गया है। किसी व्यक्ति के द्वारा अनुभूत विषय का उसके ज्ञान के रूप में पूर्णतया उस व्यक्ति के अधिकार में रहना। विषय की अनुभूति के अनन्तर अनुभवजन्य संस्कार आत्मा में निहित रहते हैं। कालान्तर में अनुकूल निमित्त उपस्थित होने पर संस्कार उभर जाते हैं, जो उस विषय को याद करा देते हैं। इस प्रकार की चित्तवृत्ति का नाम 'स्मृति' है। अनुभूति के समान संस्कार होते हैं और संस्कारों के सदृश ही 'स्मृति' हुआ करती है। स्मृति का विषय सदा वही होता है जो अनुभव का विषय रहा है। बिना अनुभव किये हुए का स्मरण नहीं होता।

उक्त प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच प्रकार की वृत्तियाँ निरोध करने योग्य हैं क्योंकि ये सुख दुःख और मोहरूप हैं। सुख, दुःख और मोह तो क्लेशों के ही अन्दर आते हैं। क्लेशरूप होने से सभीका निरोध आवश्यक है। इन वृत्तियों का निरोध होने पर सम्प्रज्ञातसमाधि तथा सम्प्रज्ञात समाधि के द्वारा असम्प्रज्ञातसमाधि का लाभ योगियों को होता है।

7.6 अभ्यास और वैराग्य

महर्षि पतंजलि ने चित्त वृत्ति निरोध के लिए अभ्यास व वैराग्य नाम की दो साधनाये बताई है। महर्षि पतंजलि ने कहा है :-

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः 1/12 यो0सू0

अर्थात अभ्यास और वैराग्य के द्वारा उन चित्त वृत्तयों का निरोध होता है।

अब प्रश्न उठता है कि अभ्यास क्या है चिन्त की स्थिरता के लिए जो प्रयत्न किया जाता है वह अभ्यास कहा जाता है। वास्तव में आप विचार करे कि अभ्यास नाम की शक्ति दु:साध्य को भी सुसाध्य बना देती है। महर्षि पतंजलि कहते है –

तत्रस्थितौ यत्नोभ्यास: 1/13

चित्त की स्थिरता के लिए जो प्रयत्न किया जाता है वह अभ्यास है। ध्यान रहे यह अभ्यास कुछ दिनों या महीनों की बात नहीं है। इसके लिए लम्बे समय तक वाधारहित निरन्तरता के साथ एवं श्रद्धा और आदर के साथ प्रयत्न करना पड़ता है। तभी वह दृढ़ अभ्यास बनता है। पतंजलि ने कहा है –

सतु दीर्घकाजनैरन्तर्यसव्कारा सेवितो दृढ़भूमि: 1/14

अर्थात यह अभ्यास दीर्घकाल तक निरन्तर लगातार आदर पूर्वक सेवन अर्थात अभ्यास करते रहने पर ही दृढ़भूत होता है।

अभ्यास के फल की व्याख्या विशानानन्द सरस्वती जी ने करते हुए कहा है कि अभ्यास को दीर्घकाल पर्यत्न निरन्तर व्यवधान से रहित ठीक-ठीक अनुष्ठान किया हुआ दृढ अवस्था वाला बन जाता है। दीर्घकाल तक निरन्तर लगातार किया गया पर्यत्न तथा तपस्या, ब्रहमचर्य विद्या और श्रद्धा आदि से किया गया साधक का अभ्यास दृढभूत होता है। इससे योगी व्युत्थान के संस्कारों से अभिभूत नहीं होता है। जागतिक भोग वासना जन्य व्युव्थान के संस्कार मनुष्य के अन्दर चित्त में जन्म-जन्मान्तरों से चले आ रहे है। उनको थोड़े काल के अभ्यास नष्ट कर देना सम्भव नहीं है इसलिए इस अभ्यास को दृढ़भूत बनाने के लिए धैर्य के साथ दीर्घकाल पर्यन्त लगातार श्रद्धा, वीर्य और उत्साहपूर्वक प्रयत्न करते जाना चाहिए।

वैराग्य शब्द भारतीय आध्यात्मिक क्षेत्र में जाना-पहचाना शब्द है। वैराग्य का अर्थ हैं बिना राग के या यूँ कहे कि जिस व्यक्ति को कोई चाह नहीं, आसक्ति नहीं। चित्त की वृत्तियों को रोकने के लिए जहॉ एक ओर अभ्यास साधन है, वही दूसरी ओर वैराग्य प्रधान स्पधन है। महर्षि पतंजलि ने देखे गये और सुने गये विषय वस्तुओं में विवेक के द्वारा आसक्ति का न होना वैराग्य कहा है।

पतंजलि कहते है

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् यो0 सू0 1/15

अर्थात देखे गये और सुने हुए विषयों में सर्वथा तृष्णारहित चित्त की जो वशीकार नामक अवस्था है वह वैराग्य है।

प्रिय पाठको दो प्रश्न शायद आपके समक्ष आ रहे होंगे कि

देखे गये विषय कौन से है ?

सुने गये विषय कौन से है ?

देखे गये अर्थात जो आप अपने ऑंखों से इस संसार की भौतिक वस्तुओं को देखते हो जैसे – धन, वैभव, एश्वर्य, मोटकर-कार, मकान, जमीन राज, नौकरी इत्यादि।

सुने गये अर्थात जो आपने सुने, वेदों से, उपनिषदों से, पुराणों से, प्राचीन आर्ष ग्रन्थों से जैसे स्वर्ग प्राप्ति, मोक्ष प्राप्ति, दिव्य लोकों का सुख इत्यादि।

वैराग्य की अवस्था में उपरोक्त दोनों देखे गये और सुने हुए विषयों से कोई आसक्ति नहीं रहती है।

पाठको अगर संसार की तुलना जलाशय से करें तो मान लिजिए इस जलाशय के दो द्वार है एक द्वार संसार की ओर (भौतिक पदार्थो, धन, वैभव इत्यादि) जाता है तथा दूसरा मोक्ष की ओर। जो रास्ता संसार की ओर जाता है वहॉ वैराग्य का बांध लगाये और जो रास्ता मोक्ष की ओर जाता हो उसके लिए अभ्यास करे। अत: हम कह सकते है कि अभ्यास और वैराग्य से साधक कैवल्य की प्राप्ति कर सकता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. बहु विकल्पीय प्रश्न

क. चित्त की कितनी वृत्तियॉ है

अ. 4 ब. 5 स. 3 द. 8

ख. मन, बुद्धि व अंहकार का सम्मलित रूप है

अ. चित्त ब. अन्त:करण स. आत्मा द. इनमें से कोई नहीं

ग. चित्त की किस अवस्था में रजोगुण प्रधान रहता है।

अ. मूढ ब. क्षिप्त स. विक्षिप्त द. निरूद्ध

घ. चित्त की कौन सी अवस्था बिगुणातीत है।

अ. निरूद्ध ब. एकाग्र स. विक्षिप्त द. निद्रा

ड. कौन सी वृति के कारण झूठा ज्ञान होता है

अ. प्रमाण ब. विपर्यय स. विकल्प द. निद्रा

च. चित्त की वृतियों के निरोध के लिए निम्न में से कौन सी साधना उपयोगी है।

अ. अष्टांग योग ब. क्रियायोग स. ईश्वर द. अभ्यास और वैराग्य

7.7 सारांश

महर्षि पतंजलि ने योग की दार्शनिकता को बड़े सरलतम रूप से योग सूत्र नामक पुस्तक में प्रतिपादित किया है। शुरूआत में ही पतंजलि ने योग को चित्त वृत्तियों के निरोध के रूप में परिभाषित किया। मन, बुद्धि तथा अहंकार का सम्मलित रूप चित्त है। चित्त वस्तुत: चित्रगुप्त है जो जन्म-जन्मान्तरों तक ले जाता है। चित्त को वृत्तियॉ असन्तुलित करती है जो क्रमश: प्रमाण, विपर्य, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति है। इन वृत्तियों का निरोध करने के लिए अभ्यास व वैराग्य नाम की दो साधनाये महर्षि पतंजलि ने प्रतिपादित की है। वास्तव में उत्तम कोटि के साधको के लिए यह साधना कैवल्य की प्राप्ति में अत्यधिक प्रभावशाली है।

7.8 शब्दावली

सम्यक – ढीक, सीधा, वास्तविक
निरोध – रोकना, नियन्त्रण करना
चित्त - मन + बुद्धि अंहकार
वृत्ति – गोल-गोल घुमना
अन्त:करण – मन + बुद्धि + अंहकार + चित्त
विलक्षण – अद्वितीय, तीव्र
स्मरण – याद करना
यथार्थ – सत्य
प्रत्यक्ष – इन्द्रिय जनित ज्ञान
विपर्यय – झूठा ज्ञान

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क. ब.
ख. अ
ग. ब
घ. अ
ड. ब
च. द

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महर्षि पतंजलि – योग दर्शन – गीताप्रेम गोरखपुर
2. पतंजलि योग प्रदीप – गीताप्रेस गोरखपुर
3. पातंजल योग दर्शन – स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती – योग निकेतन ट्रस्ट मुनि कीरेति ऋषिकेश

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. चित्त की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए चित्त की विविध अवस्थाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
2. चित्त वृत्तियों को विस्तार से समझाते हुए इनको रोकने के लिए योगसूत्र में क्या उपाय बताये है।

इकाई 8 :- चित्त विक्षेप, चित्त प्रसादन के उपाय

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 चित्त विक्षेप

8.3.1 व्याधि

8.3.2 स्त्यान

8.3.3 संशय

8.3.4 प्रमाद

8.3.5 आलस्य

8.3.6 अविरति

8.3.7 भ्रान्ति दर्शन

8.3.8 अलब्धभूमकत्व

8.3.9 अनवस्थितत्व

8.3.10 दु:ख

8.3.11 दौर्मन्य

8.3.12 अंग मेजमत्व

8.3.13 श्वास

8.3.14 प्रश्वास

8.4 चित्त प्रसादन के उपाय

8.5 सारांश

8.6 शब्दावली

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.9 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने पने चित्त की अवधारणा, चित्त की भूमियों, चित्त वृत्तियों के साथ-साथ चित्त वृत्ति निरोध के लिए उपयुक्त साधनाओं (अभ्यास व वैराग्य) का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में योग साधना में बाधक तत्वों (चित्त विक्षेपों) तथा साधक तत्वों (चित्त प्रसादन के उपायो) का अध्ययन करेंगे। महर्षि पंतजलि द्वारा प्रतिपादित योग सूत्र का अगर अवलोकन किया जाये तो प्रारम्भ में ही उन्होंने चित्त की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए चित्त वृत्ति निरोध के रूप में योग को प्रतिपादित किया। चित्त में अगर असंतुलन होगा या यूँ कहे कि विक्षेप होंगे तो कैवल्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसके विपरीत अगर साधक चित्त प्रसादन के उपायों को अपने जीवन में उतारे तो उसे वास्तविक आनन्द की प्राप्ति होगी तथा मानव उत्कर्ष की उच्च अवस्था कैवल्य की प्राप्ति होगी। प्रस्तुत इकाई में इन विक्षेपों तथा चित्त प्रसादन के उपायों की चर्चा की जा रही है।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में अध्ययन कर लेने के बाद

- चित्त विक्षेपों को जान सकेंगे।
- व्याधि व स्त्यान क्या है इनका अध्ययन करेंगे।
- संशय व प्रमाद आलस्य के विविध आयामों का विश्लेषण करेंगे।
- अविरति तथा भ्रान्तिदर्शन को समझ सकेंगे।
- अलब्ध भूमिकत्व व अनवस्थितत्व का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।
- तीनों प्रकार के दु:खों को समझ सकेंगे।
- दौर्मन्य व अंगमेजत्व के अर्थो का विश्लेषण कर सकेंगे।
- यह जान सकेंगे कि श्वास व प्रश्वास में भी चित्त को असन्तुलित करते है।
- चित्त प्रसादन के उपायों का अध्ययन करेंगे ।

8.3 चित्त विक्षेप

चित्त विक्षेपों को ही योगान्तराय कहते हैं जो चित्त को विक्षिप्त करके उसे एकाग्रता को नष्ट कर देते हैं उन्हें योगान्तराय अथवा योगविघ्न कहा है। 'योगस्य अन्तः मध्ये आयान्ति ते अन्तरायाः'। ये योग के मध्य में आते हैं] इसलिये इन्हें योगान्तराय कहा जाता है। विघ्नों से व्यथित होकर योगसाधक साधना को बीच में ही छोड़कर चल देते हैं। विघ्न आयें ही नहीं अथवा यदि आ जायें तो उनको सहने की शक्ति चित्त में आ जाये, ऐसी दया ईश्वर ही कर सकता है। यह तो सम्भव

नहीं कि विघ्न न आयें। 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' शुभकार्यों में विघ्न आया ही करते हैं। उनसे टकराने का साहस योगसाधक में होना चाहिए। ईश्वर की अनुकम्पा से यह सम्भव है।

चित्त के विक्षेपक नौ अन्तराय हैं- व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व। उक्त नौ अन्तराय ही चित्त को विक्षिप्त करते हैं। अतः ये योगविरोधी हैं। चित्तवृत्तियों के साथ इनका अन्वयव्यतिरेक है। अर्थात् इन विक्षेपों के होने पर प्रमाणादि वृत्तियाँ होती हैं। जब ये नहीं होते तो वृत्तियाँ भी नहीं होती। वृत्तियों के अभाव में चित्त स्थिर हो जाता है। इस प्रकार चित्तविक्षेप के प्रति ये उक्त नौ अन्तराय ही कारण हैं।

8.3.1 व्याधि- 'धातुरसकरणवैषम्यं व्याधिः' धातुवैषम्य, रसवैषम्य तथा करणवैषम्य को व्याधि कहते हैं। वात, पित्त और कफ ये तीन धातुएँ हैं। इनमें से यदि एक भी कुपित होकर न्यून या अधिक हो जाये तो यह धातुवैषम्य कहलाता है। जब तक देह में वात, पित्त और कफ समान मात्रा में हैं तो तब इन्हें धातु कहा जाता हैं। जब इनमें विषमता आ जाती है तब इन्हें दोष कहा जाता है। धातुओं की समता में शरीर स्वस्थ रहता है। विषमता में रुग्ण हो जाता है। आहार का अच्छी तरह से परिपाक न होना रसवैषम्य कहलाता है। यही शरीर में व्याधि बनाता है। ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों की शक्ति का मन्द हो जाना करणवैषम्य है। योगसाधना के लिए सशक्त और दृढ़ इन्द्रियों की आवश्यकता होती है। धातु, रस तथा करण इन तीनों के वैषम्य को व्याधि कहते हैं। रोगी शरीर से समाधि का अभ्यास सम्भव नहीं। अतः व्याधि समाधि के लिए अन्तराय है। कफ, श्वास आदि दैहिक रोगों को व्याधि कहते हैं तथा मानसिक रोग को आधि जैसे- स्मरण शक्ति का अभाव, उन्माद, अरुचि, घृणा, काम, क्रोध आदि। आधि शब्द के 'वि' उपसर्ग के योग से व्याधि शब्द बनता है- 'विशेषेण आधीयते अनुभूयते मनसा इति व्याधिः'। चूँकि शारीरिक रोग मन को आधि की तुलना में अधिक कष्टकारक अनुभूत होता है, इसलिए शारीरिक रोग का व्याधि नाम सार्थक सिद्ध होता है।

8.3.2 स्त्यान- 'स्त्यानं अकर्मण्यता चित्तस्य' अर्थात् चित्त की अकर्मण्यता को स्त्यान कहते हैं। समाधि का अभ्यास करने की इच्छा तो चित्त में होती है किन्तु वैसा सामर्थ्य उसमें नहीं होता। केवल इच्छा से योग सिद्ध नहीं होता, अपितु उसमें योगाभ्यास की शक्ति होनी चाहिए। पुत्रों की आसक्ति, विषयभोग की लालसाएं तथा जीविकोपार्जन के व्यापार में चित्त को उलझाये रखते हैं जिससे कि चित्त अकर्मण्यता अनुभव करता है। अकर्मण्यता समाधि में अन्तराय है। जब तक सत्यान की अवस्था रहेगी तब तक साधक के समाधि का मार्ग अवरूद्ध रहेगा।

8.3.3 संशय- 'उभयकोटिस्पृग् विज्ञानं संशयः' अर्थात् यह भी हो सकता है और वह भी हो सकता है। इस प्रकार के ज्ञान को संशय कहते हैं। योग साधना के विषय में जब साधक को कभी-कभी संशय होता है कि मैं योग का अभ्यास कर सकूंगा या नहीं क्या मुझे सफलता मिलेगी क्या समाधि से कैवल्य प्राप्त हो सकेगा हो सकता है मेरा परिश्रम व्यर्थ चला जाये तब यह संशयात्मक ज्ञान योग का विघ्न बन जाता है। संशय की अवस्था में साधक का चित्त असंतुलित रहता है और वह साधना नहीं कर सकता है।

8.3.4 प्रमाद- 'समाधिसाधनानामभावनम्'- समाधि के साधनों में उत्साह पूर्वक प्रवृत्ति न होना प्रमाद कहलाता है। समाधि का अभ्यास प्रारम्भ कर देने पर उसमें वैसा ही उत्साह और दृढ़ता निरन्तर बनी रहनी चाहिए जैसा उत्साह प्रारम्भ में था। प्रायः युवावस्था का मद, धन और प्रभुत्व का दर्प तथा शारीरिक सामर्थ्य का मद साधक के उत्साह को शिथिल कर देता है। अतः प्रमाद समाधि में अन्तराय है।

8.3.5 आलस्य - 'आलस्यं कायस्य चित्तस्य च गुरुत्वादप्रवृत्तिः'- काम के आधिक्य से शरीर तथा तमोगुण के आधिक्य से चित्त भारीपन का अनुभव करता है। शरीर और चित्त के भारी होने से समाधि के साधनों में प्रवृत्ति नहीं होती, इसी का नाम आलस्य है। प्रमाद और आलस्य में बहुत अन्तर है। प्रमाद प्रायः अविवेक से उत्पन्न होता है। आलस्य में

अविवेक तो नहीं होता किन्तु गरिष्ठ भोजन के सेवन से शरीर और चित्त भारी हो जाता है। यह भी योग साधना मार्ग में अन्तराय कहलाता है।

8.3.6 अविरति - 'चित्तस्य विषयसम्प्रयोगात्मा गर्धः अविरतिः' शब्दादि विषयों के भोग से तृष्णा उत्पन्न होती है। तृष्णा वैराग्य का शत्रु है। समाधि के लिये वैराग्य प्रमुखतम साधन है। अतः वैराग्याभाव योग का अन्तराय है। कोमलकान्त वचन, उनके अंगों का मोहक स्पर्श, तथा स्वादिष्ट भोज्य, पेय आदि व्यंजनों का रस कभी-कभी तत्त्वज्ञान को भी आवृत्त करके साधक को संसार में आसक्त बना देता है। विषयों के प्रति यह आसक्ति ही अविरति है। यह अविरति योग का महान् विघ्न कहा गया है। जब तक अविरति रहेगी तब तक चित्त वृत्तियों का निरोध नहीं हो सकता है।

8.3.7 भ्रान्तिदर्शन - 'भ्रान्तिदर्शनं विपर्ययज्ञानम्'- अर्थात् मिथ्याज्ञान को भ्रान्तिदर्शन कहते हैं। अन्य वस्तु में अन्य वस्तु का ज्ञान ही मिथ्या ज्ञान है। जब साधक योग के साधनों को असाधन और असाधनों को साधन समझने लगता है तो यह भ्रान्तिदर्शन योग का विघ्न बन जाता है। भ्रान्तिदर्शन में व्यक्ति को साधन के फलों में झूठा ज्ञान हो जाता है।

8.3.8 अलब्धभूमिकत्व- 'अलब्धभूमिकत्व समाधिभूमेरलाभः'- अर्थात् समाधि की किसी भी भूमि की प्राप्ति न होना भी योग में विघ्न है। समाधि की चार भूमियाँ हैं- सवितर्क, निर्वितक, सविचार तथा निर्विचार। जब प्रथम भूमि की प्राप्ति हो जाती है तो योगी का उत्साह बढ़ जाता है। वह सोचता है कि जब प्रथम भूमि प्राप्त हो गयी है तो अन्य भूमियाँ भी अवश्य ही प्राप्त होंगी। परन्तु किसी कारण से उनकी प्राप्ति न होना अलब्धभूमिकत्व कहा गया है। यह भी योग में अन्तराय है।

8.3.9 अनवस्थितत्व - 'लब्धायां भूमौ चित्तस्याप्रतिष्ठा अनवस्थितत्वम्' यदि किसी प्रकार मधुमती आदि भूमियों में से किसी एक की प्राप्ति हो जाये किन्तु उसमें निरन्तर चित्त की स्थिति न हो तो यह अनवस्थितत्व कहलाता है।

इस प्रकार नौ चित्तविक्षेप योग के अन्तराय कहलाते हैं। इन्हीं को चित्तमल तथा योग प्रतिपक्ष भी कहा गया है। इन चित्तविक्षेपों के पाँच साथी भी हैं। जो इन अन्तरायों के होने पर स्वतः हो जाते हैं-

8.3.10 दुःख- दुख के बारे में व्यास जी कहते हैं -

'येनाभिहताः प्राणिनस्तदुपघाताय प्रयतन्ते तद्दुःखम्' योगसूत्र व्यासभाष्य 1/31

जिसके साथ सम्बन्ध होने से पीड़ित हुए प्राणी उस प्रतिकूल वेदनीय हेय दुःख की निवृत्ति के लिए प्रयत्न करते हैं, वह दुःख कहा जाता है। दुःख तीन प्रकार के हैं- आध्यात्मिक, आदिभौतिक तथा आधिदैविक। आध्यात्मिक दुख भी दो प्रकार के होते हैं शारीरिक और मानसिक। किसी भी प्रकार का शारीरिक रोग जैसे कब्ज, अपच, पीलिया, रक्तचाप, अस्थमा इत्यादि तथा मानसिक रोग चिन्ता, तनाच अवसाद ये आध्यात्मिक दुःख कहलाते है जिनके कारण भी योग साधना में बाधा उत्पन्न करते है। आदिभौतिक शब्द की रचना का विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि यह शब्द भूत शब्द से बना है। भूत शब्द का अर्थ है प्राणी अर्थात् प्राणियों के द्वारा दिये गए दुःखों को आदिभौतिक कहा जाता है। प्राणी, योनिज, स्वेदज, अण्डज तथा उद्भिज भेद से चार प्रकार के होते हैं। दुःखों के तृतीय प्रकार का नाम आदिदैविक है जिसका अर्थ है दैविक शक्तियों के द्वारा दिये गए दुःख। दैविक शक्तियों के रूप में अग्नि, जल और वायु की गणना की जाती है। ये तीनों प्रत्येक के लिए अति आवश्यक हैं परन्तु आवश्यकता से अधिक या कम होने पर ये दुःखों के उत्पादक होते हैं। जैसे- अग्नि यदि हमारे उदर अथवा रसोई घर में पर्याप्त मात्रा में रहे तो सुखद परन्तु यदि कम या अधिक हो तो असहनीय होकर दुःखों का कारण बन कर नाशवान् हो जाती है। इसी प्रकार से वायु और जल को समझना चाहिए।

8.3.11 दौर्मनस्य – अभिलक्षित पदार्थविषयक इच्छा की पूर्ति न होने से चित्त में जो क्षोभ होता है। उसे दौर्मनस्य कहा जाता है जब प्रयास करने पर भी इच्छा की पूर्ति नहीं होती तो चित्त व्याकुल होता है। यह दौर्मनस्य भी दुःख का साथी है। कहा गया है-

इच्छाव्याघातात् चेतसः क्षोभः दौर्मनस्यम्। योगसूत्र व्यासभाष्य 1/31

वास्तव में इच्छापूर्ति न होने पर व्यक्ति की स्थिति अति भयंकर हो जाती है। वर्तमान प्रतिस्पर्धा के युग में व्यक्ति ने उच्चतम महत्वाकाक्षायें रखी है तथा कर्म का अभाव है ऐसी विषम परिस्थिति में दौर्मन्य का होना स्वाभाविक है ऐसी स्थिति में साधक पहले तो साधना करता नहीं है अगर करता भी है तो दौर्मन्य होने पर उसे छोड़ देता है यह दौर्मन्य योग में सबसे बड़ा विघ्न है।

8.3.12 अंगमेजयत्व - जो शरीर के हाथ, पैर शिर आदि अंगों की कम्पित अवस्था है, वह अंगमेजयत्व कहलाती है-

यत् अंगानि एजयति कम्पयति तद् अंगमेजयत्वम्'

व्याधि आदि अन्तराय शरीर को दुर्बल बना देती हैं जिससे अंगों में कम्पन होने लगता है। यह अंगमेजयत्व आसन, प्राणायाम आदि में व्यवधान उपस्थित करता है। अतः विक्षेप का साथी होने से समाधि का प्रतिपक्षी है। वात होने के कारण देखा गया है कि शरीर के अंगों में कम्प न हो जाता है व्याक्ति को लकवा हो जाता है यह भी योग में विघ्नक है।

8.3.13 श्वास- जो बाह्य वायु का नासिकाग्र के द्वारा आचमन करता है, वह श्वास कहलाता है अर्थात् भीतर की ओर जाने वाला प्राणवायु श्वास है। यह प्राणक्रिया यदि निरन्तर चलती रहे, कुछ समय के लिए भी न रुके तो चित्त समाहित नहीं रह सकता। अतः यह श्वास रेचक प्राणायाम का विरोधी है। अतः यह समाधि का अन्तराय है-

8.3.14 प्रश्वास- जो प्राण भीतर की वायु को बाहर निकालता है, वह प्रश्वास कहलाता है। यह श्वास क्रिया भी निरन्तर चलती रहती है। यह भी समाधि के अंगभूत पूरक प्राणायाम का विरोधी होने से समाधि का विरोधी है। अतः विक्षेप का साथी होने से योगान्तराय कहा जाता है।

चित्तविक्षेप विषय को अधिकार करके स्वामी स्वात्माराम जी ने अपनी पुस्तक हठप्रदीपिका में कहा है-

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः।

जनसंघ्गश्च लौल्यं च षड्भिर्योगो विनश्यति।। ह.प्र. 1/15

अर्थात् अधिक भोजन, अधिक श्रम, अधिक बोलना, नियम पालने में आग्रह, अधिक लोकसम्पर्क तथा मन की चंचलता- ये छः योग को नष्ट करने वाले तत्व हैं अर्थात् योगमार्ग में प्रगति के लिए बाधक हैं।

महर्षि पतंजलि ने पूर्वोक्त नौ चित्तविक्षेपरूप योगान्तराय तथा उक्त पाँच विक्षेप के साथियों का निवारण करने के लिए एकतत्व के अभ्यास का उपदेश देते हुए कहा है-

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः। योगसूत्र- 1@32

अर्थात् उक्त योगान्तरायों के निराकरण के लिये साधक को ईश्वररूप एक तत्त्व के चिन्तन में पुनः पुनः चित्त को प्रविष्ट करने का अभ्यास करना चाहिए। एकतत्त्वाभ्यास का अर्थ है- 'ईश्वरप्रणिधान'। ईश्वरप्रणिधान का अभ्यास करने से कोई भी विघ्न योगमार्ग में उपस्थित नहीं होता।

एकतत्त्व शब्द के आठ अर्थ अमरकोष में बताये गये हैं-

एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।

साधारणे समानेऽल्पे संख्यायां च प्रयुज्यते।।

अर्थात् अन्य, प्रधान, प्रथम, केवल, साधारण, समान, अल्प तथा संख्या ये अर्थ एक शब्द के हैं परन्तु यहाँ ईश्वरप्रणिधानरूप प्रकरण के बल से एकतत्त्व का अर्थ ही ग्रहण करना उचित है।

8.4 चित्त प्रसादन के उपाय -

जिज्ञासु पाठको अभी तक आपने योग मार्ग में उत्पन्न विविध बाधाओं का अध्ययन किया जिनके कारण चित्त विक्षेप होते है। अक्सर आम नागरिको के मन में यह जानने की इच्छा होती है कि

- ऐसे कौन से उपाय है जो चित्त को स्वच्छ करें।
- क्या स्वच्छ चित्त में समाधि की प्राप्ति हो सकती है।

आगामी पृष्टों का अध्ययन कर लेने के बाद आप निश्चित रूप से उपरोक्त प्रश्नो के उत्तर जान सकेंगे।

मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा- इन चार प्रकार की भावनाओं से भी चित्त शुद्ध होता है। और वृत्तिनिरोध मे समर्थ होता है-

'मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्' यो.सू. 1/33

सुसम्पन्न पुरुषों में मित्रता की भावना करनी चाहिए, दुखी जनों पर दया की भावना करे। पुण्यात्मा पुरुषों में प्रसन्नता की भावना करे तथा पाप कर्म करने के स्वभाव वाले पुरुषों में उदासीनता का भाव रखे। इन भावनाओं से चित्त शुद्ध होता है। शुद्ध चित्त शीघ्र ही एकाग्रता को प्राप्त होता है।

संसार में सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा और पापी आदि सभी प्रकार के व्यक्ति होते हैं। ऐसे व्यक्तियों के प्रति साधारणजन का अपने विचारों के अनुसार राग, द्वेष आदि उत्पन्न होना स्वाभाविक है। किसी व्यक्ति को सुखी देखकर दूसरे अनुकूल व्यक्ति का उसमें राग उत्पन्न हो जाता है, प्रतिकूल व्यक्ति को द्वेष व ईर्ष्या आदि। किसी पुण्यात्मा के प्रतिष्ठित जीवन को देखकर अन्य जन के चित्त में ईर्ष्या आदि का भाव उत्पन्न हो जाता है। उसकी प्रतिष्ठा व आदर को देखकर दूसरे अनेक जन मन में जलते हैं, हमारा इतना आदर क्यों नहीं होता यह ईर्ष्या का भाव है। इसमें प्रेरित होकर ऐसे व्यक्ति पुण्यात्मा में अनेक मिथ्यादोषों का उद्भावन कर उसे कलंकित करने का प्रयास करते देखे जाते हैं। इस प्रकार परनिन्दा की भावना असूया है। दुःखी को देखकर प्रायः साधारण जन उससे घृणा करते हैं, ऐसी भावना व्यक्ति के चित्त को व्यथित एवं मलिन बनाये रखती है। यह समाज की साधारण व्यावहारिक स्थिति है।

योगमार्ग पर चलने वाले साधक ऐसी परिस्थिति से अपने आपको सदा बचाये रखने का प्रयास करें। साधक के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसका चित्त ईर्ष्या तथा असूया आदि मलों से सर्वथा रहित हो, यह स्थिति योग में प्रवृत्ति के लिये अनुकूल होती है। निर्मल-चित्त साधक योग में सफलता प्राप्त करने का अधिकारी होता है। सुखी जनों को देखकर

साधक उनके प्रति मित्रता की भावना बनाये। मित्र के प्रति कभी ईर्ष्या का भाव उत्पन्न नहीं होता। दुःखी जनों के प्रति सदा करुणा-दया का भाव, उनका दुःख किस प्रकार दूर किया जा सकता है इसके लिए उन्हें सन्मार्ग दिखाने का प्रयास करे। इससे साधक के चित्त में उनके प्रति कभी घृणा का भाव उत्पन्न नहीं होने पायेगा। इससे दोनों के चित्त में शान्ति और सान्तवना बनी रहेगी। इसी प्रकार पुण्यात्मा के प्रति साधक हर्ष का अनुभव करे। योग स्वयं ऊँचे पुण्य का मार्ग है। जब दोनों एक ही पथ के पथिक हैं तो हर्ष का होना स्वाभाविक है। संसार में सन्मार्ग और सद्विचार के साथी सदा मिलते रहें, तो इससे अधिक हर्ष का और क्या विषय होगा। पापात्मा के प्रति साधक का उपेक्षाभाव सर्वथा उपयुक्त है। ऐसे व्यक्तियों को सन्मार्ग पर लाने के प्रयास प्रायः विपरीत फल ला देते हैं। पापी पुरुष अपने हितैषियों को भी उनकी वास्तविकता को न समझते हुए हानि पहुँचाने और उनके कार्यों में बाधा डालने के लिये प्रयत्नशील बने रहते हैं। इसलिए ऐसे व्यक्तियों के प्रति उपेक्षा अर्थात् उदासीनता का भाव श्रेयस्कर होता है। साधक इस प्रकार विभिन्न व्यक्तियों के प्रति अपनी उक्त भावना को जागृत रखकर चित्त को निर्मल स्वच्छ और प्रसन्न बनाये रखने में सफल रहता है, जो सम्प्रज्ञात योग की स्थिति को प्राप्त करने के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

वस्तुयत: उपरोक्त चार साधनों से चित्त निर्मल होता है पर चित्त को एकाग्र करना भी आवश्ययक है अतरू महर्षि पतंजलि में निम्नं उपाय चित्त को एकाग्र तथा शुद्ध करने के लिये बताये है।

1. महर्षि पतंजलि ने समाधि पाद में कहा है।

प्रच्छर्दन नविधारणाभ्यां वा प्राणस्य योग सूत्र 1/34

अर्थात उदस्थ वायु को नासिकापुट से बाहर निकालना प्रच्छर्दन और भीतर ही रोके रहने को विधारण कहा है। साधक को चाहिए कि उदर में स्थित प्राणवायु को बलपूर्वक बाहर निकालने से चित्त एकाग्र होकर स्थिरता को प्राप्तव होता है जिससे चित्तक निर्मल होता है।

2. पतंजलि कहते है

विषयवती वा प्रवृत्तिरूत्पवन्ना मनस:

स्थिति निबन्धनी: यो0सू0 1/35

अर्थात् पृथ्वी जल, तेज वायु, आकाश ये पंच महाभूत है। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द इसके विषय है। दिव्य और आदिव्य भेद से ये विषय दस प्रकार के हो जाते है। उक्त पॉचों गन्धादि विषयों का ध्यान करने से भी चित्त निर्मल होता है।

3. महर्षि पतंजलि कहते है -
विशोका वा ज्योतिष्मती यो0सू0 1/36

चित्त विषयक साक्षात्कार तथा अहंकार विषयक साक्षात्कार विशोका ज्योतिष्मती कहे जाते है। हृदय कमल में अनाहत चक्र पर संयम करने पर जो चित्त का साक्षात्कार होता है यह चित्त विषयक ज्योतिष्मती प्रवृत्ति कहलाती है इस प्रवृत्ति द्वारा भी चित्त प्रसन्न होता है।

4. महर्षि पतंजलि कहते है

वीतरागविषयं वा चित्तम् योग0सू0 1/37

अर्थात् रागादि दोषों से रहित ज्ञानवान वैराग्यवान पुरूष को विषय करने वाला चित्त भी स्थिरता को प्राप्त हो जाता है। राग द्वेष से परे हमारे योगी, महापुरूषों के जीवन दर्शन का अध्ययन करना, उनके चरित्र के बारे में श्रवण इत्यादि करने से भी चित्त निर्मल होता है।

5. महर्षि पतंजलि कहते है-

स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा यो0सू0 1/38

अर्थात स्वप्न काल के समान या निद्राकाल के समान ज्ञान का आलम्बन करने वाला चित्त भी स्थिरता को प्राप्त करता है।

6. महर्षि पतंजलि कहते है –

यथाभिमतध्यानाद्वा यो0सू0 1/39

अर्थात् जिसको जैसा अभिमत हो उसको वैसा ध्यान करने से चित्त निर्मल होता है। जिस साधक को जो स्वरूप अभीष्ट हो उसमें ध्यान करने से चित्त शीघ्र स्थिरता को प्राप्त करता है। अनभिगत विषय में चित्त कठिनता से स्थिर होता है। इसलिए शिव, शक्ति, गणपति, विष्णु पूर्ण इत्यादि देवताओं जैसे जिस एक में विशेष रूचि उसका ध्यान करने से चित्त स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :-

1. बहुकल्पीय प्रश्न

क. चित्त विक्षेपों की संख्या है -

अ. 5 ब. 8 स. 9 द. 12

ख. सुखी व्यक्ति से किस प्रकार की भावना करने से चित्त निर्मल होता है।

अ. मैत्री ब. करूणा स. मुदिता द. उपेक्षा

ग. दु:खो की संख्या कितनी है।

अ. दो ब. चार स. पॉच द. तीन

2. सत्य/असत्य बताये।

क. दु:खी व्यक्ति से करूणा की भावना से चित्त निर्मल होता है।

ख. पापी व्यक्ति की उपेक्षा करने से चित्त निर्मल होता है।

ग. चित्त प्रसादन के तीन उपाय महर्षि पतंजलि ने बातये है।

घ. ईश्वर की अनुकम्पा से विक्षेप दूर होते है।

ड. अष्टांग योग चित्त प्रसादन का उपाय है।

च. चित्त की अकर्मण्यता को संशय कहते है।

छ. तमोगुण की अधिकता के कारण आलस्य उत्पन्न होता है।

ज. तृष्णा वैराग्य का शत्रु है।

8.5 सारांश

महर्षि पतंजलि ने जहॉ एक ओर नौ चित्त विक्षेप (व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्ध भूमिकत्व, अनवस्थित्व) तथा 5 विक्षेप सहभूव (दु:ख, दौर्मन्य, अंग मेजयत्व, श्वास तथा प्रश्वास) बताये है वही दूसरी ओर चित्त प्रसादन के उपायो की चर्चा योग सूत्र में की है। यह तो सत्य है कि जब तक चित्त विक्षेप रहेंगे तब तक साधना की उच्च अवस्था कैवल्य की प्राप्ति का मार्ग अवरूद्ध रहेगा अत: साधक को चाहिए कि विक्षेपो को दूर करने के लिए वह एकतत्व (ईश्वर) का अभ्यास करें तथा साथ ही साथ चित्त प्रसादन के उपायों को आत्मसात करें।

8.6 शब्दावली

व्यथित – परेशान, दु:खी

एक तत्व – ईश्वर, आत्मा

अविरति – वैराग्य का अभाव

धातु – धारण करना, पोषण करना

रसवैषम्य - आहार का न पचना

व्याधि – रोग

स्त्यान – काम न करने की इच्छा, अकर्मण्यता

तृष्णा – आत्मा का ज्ञान

मिथ्या – झूठा

दौर्मन्य – इच्छा पूर्ति न होने वाली एक स्थिति दौर्मन्य है।

अंगमेजयत्व – अंगों का हिलना, कंपायमान होना

पूरक – श्वास लेना

रेचक – श्वास छोड़ना

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.

क. स ख. अ ग. द

2.

क. सत्य ख. सत्य ग. असत्य घ. सत्य

ड. असत्य च. असत्य छ. सत्य ज. सत्य

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. महर्षि पतंजलि – योग दर्शन (2007) गीताप्रेस गोरखपुर

2. महर्षि पतंजलि – पातंजल योग प्रदीप (2008) गीतप्रेस गोरखपुर

3. स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती – पातंजल योग दर्शन (1999) योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि की रेति ऋषिकेश

8.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. चित्त विक्षेपों की विस्तार से चर्चा कीजिए।

2. चित्त प्रसादन क्या है ? योग दर्शन में वर्णित चित्त प्रसादन के उपायों की विवेचना कीजिए।

3. योग साधना में कौन-कौन से विघ्न हो सकते है योग सूत्र के अनुसार किन्ही दो विघ्नों की विस्तारपूर्वक व्याख्या करें।

इकाई 9 :- ईश्वर, पुरूष, प्रकृति, कैवल्य तथा कैवल्य प्राप्ति के उपाय

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 ईश्वर

9.3.1 विविध विद्वानों के अनुसार ईश्वर

9.3.2 योगदर्शन के अनुसार ईश्वर

9.3.3 ईश्वर के नाम; अंग तथा अव्यय

9.4 पुरूष (आत्मा)

9.5 प्रकृति

9.6 कैवल्य

9.7 कैवल्य प्राप्ति के उपाय

9.8 सारांश

9.9 शब्दावली

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर – त्रिगुण – सत् , रज, तम

9.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

अभी तक आपने चित्त, चित्त वृत्तियों, चित्त प्रसादन के उपाय व चित्त विक्षेपों का अध्ययन किया। वास्तव में योग-सूत्र का मुख्य ध्येय कैवल्य की प्राप्ति करना है। महर्षि पतंजलि ने आरम्भ में ही यह स्पष्ट कर दिया हैं कि चित्त की वृतियों का निरोध हो जाए तो साधक को कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है। वास्तव में कैवल्य की प्राप्ति में ईश्वर ही मदद करता है। प्रस्तुत इकाई में ईश्वर की अवधारणा के साथ-साथ पुरूष, प्रकृति, कैवल्य का स्वरूप तथा कैवल्य प्राप्ति के साधनों को स्पष्ट किया है।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको ईश्वर के स्वरूप, पुरूष, प्रकृति तथा कैवल्य के बारे में जानकारी प्रदान कराना है। प्रस्तुत इकाई में आप

- विविध विद्वानों के अनुसार ईश्वर के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- योग दर्शन के अनुसार ईश्वर के बारे में अध्ययन करेंगे।
- ईश्वर के नाम, अंग तथा अव्यय को जान सकेंगे।
- पुरूष (आत्मा) के सम्बन्ध में विविध शास्त्रों तथा विद्वानों के मतों का अध्ययन करेंगे।
- प्रकृति के स्वरूप को जान सकेंगे।
- कैवल्य के विविध अर्थो का विश्लेषण कर सकेंगे।
- कैवल्य प्राप्ति के उपायों को समझ सकेंगे।

9.3 ईश्वर

ईश्वर के बारे में कहा है -

'ईश्वरः ईशनशील इच्छामात्रेण सकलजगदुद्धरणक्षमः।'

अर्थात् जो सब कुछ अर्थात् समस्त जगत को केवल इच्छा मात्र से ही उत्पन्न और विनष्ट करने में सक्षम है, वह ईश्वर है।

ईश्वर के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों के अनेक मत हैं परन्तु आधार सभी का लगभग एक ही है। इसी श्रृखला में यदि अध्ययन किया जाए तो आचार्य शंकर, आचार्य रामानुज, आचार्य मध्व, आचार्य निम्बार्क, आचार्य वल्लभ तथा महर्षि दयानन्द के विचार विशिष्ट प्रतीत होते हैं।

9.3.1 विविध विद्वानों के अनुसार ईश्वर

क. आचार्य शंकर- इनके मतानुसार ब्रह्म अंतिम सत्य है। परमार्थ और व्यवहार रूप में भेद है। परमार्थ रूप से ब्रह्म निर्गुण, निर्विशेष, निश्चल, नित्य, निर्विकार, असंग, अखण्ड, सजातीय-विजातीय-स्वगत भेद से रहित, कूटस्थ, एक, शुद्ध, चेतन, नित्यमुक्त, स्वयम्भू है। उपनिषद् में भी ऐसा ही कहा गया है-

श्रुतियों से ब्रह्म के निर्गुणत्व, निर्विशेषत्व तथा चैतन्य स्वरूप का प्रमाण मिलता है। माया के कारण भी ब्रह्म में द्वैत नहीं आता क्योंकि यह माया सत् और असत् से विलक्षण वस्तु है। ब्रह्म ही जगत् का उपादान व निमित्त कारण है। यद्यपि वह न तो किसी का कारण है, न उसका कोई कारण है। यह कारणभाव मिथ्या है। तथापि अनादि काल से जब जगत् का कारण खोजने की वासना में जाकर देखा जाता है तो ब्रह्म ही सबका कारण प्रतीत होता है।

ख. आचार्य रामानुज- इनके अनुसार ब्रह्म के दो रूप हैं- 'स्थूल चिदचिद्विशिष्ट तथा सूक्ष्म चिदचिद् विशिष्ट। यह विशेषता उसमें विकार या परिवर्तन उत्पन्न नहीं करती। ब्रह्म निर्गुण नहीं हो सकता क्योंकि इस अवस्था में व्यावहारिक जगत् की उत्पत्ति सम्भव नहीं है।

उपनिषदों में कहा है -

'एकमेवाद्वितीयम्'

उक्त वाक्य ब्रह्म की एकता व अद्वितीयता का प्रतिपादन करता है, सगुणत्व का प्रत्याख्यान नहीं करता। निर्गुण का अर्थ हेय तथा निकृष्ट गुणों से रहित होना है। श्रेष्ठ गुणों से तो ब्रह्म को मण्डित किया गया है, जैसे सत्यसंकल्प, सत्यधाम, सर्वशक्तिमान्, दयालु आदि। उसका पारमार्थिक रूप भी यही है। वह गुणों से रहित कभी नहीं होता। वे ब्रह्म में स्वगत भेद मानते हैं। जीव व जगत् ब्रह्म के शरीर हैं किन्तु दोनों पृथक् हैं फिर भी वे अभिन्न है। सत्य, ज्ञान और आनन्द ब्रह्म के विशेषण है। इसी कारण वह सविशेष है। उसमें सत्यसंकल्पत्व, सर्वशक्तित्व, सर्वकर्तृत्व, भक्तवत्सलता आदि गुण हैं, अतः वह सगुण है।

ग. आचार्य मध्व- इनके अनुसार ब्रह्म सगुण व विशेष है। वह सदा जीव व जगत् से भिन्न रहता है। ये उसके शरीर नहीं, स्वतन्त्र तत्व हैं। ब्रह्म भी अनन्त गुणों का समुदाय स्वतन्त्र तत्व है। ये गुण ही परमेश्वर के स्वरूप हैं। ब्रह्म को 'हरि' कहते हैं। वही देवाधिदेव है, मुक्तिदाता है, रचयिता, पालक व संहारक हैं। देशकाल, गुणों की उसमें कोई सीमा नहीं है।

घ. आचार्य निम्बार्क- इनके मतानुसार ब्रह्म का नाम 'कृष्ण' है। यह समस्त गुणों का आलय, दोषों से सर्वथा, सर्वदा पृथक् है, सर्वजनवरेण्य व भक्तवत्सल है।

'स्वभावतोऽपास्त समस्त दोषमशेष कल्याण गुणैकराशिम्।

व्यूहाग्निं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्।। (दशश्लोकी-4)

वे वसुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चार व्यूहों से सम्पन्न होकर जगत् की व्यवस्था करते हैं। भक्तों की रक्षा और रंजन हेतु अवतार धारण करते हैं।

ड. आचार्य वल्लभ- इनके अनुसार ब्रह्म सगुण, सर्वज्ञ, साकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वकर्ता, सच्चिदानन्दस्वरूप, चैतन्य और नित्य है। आचार्य वल्लभ का मत अन्य आचार्यों से विलक्षण है। ये कहते हैं कि ब्रह्म कभी भी अशुद्ध नहीं होता। माया के दोष से सर्वथा अलग रहता है-

माया सम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः। (शुद्धाद्वैत मार्तण्ड)

वह सविशेष होकर भी निर्विशेष है। वह लीला के लिए जड़ और जीव के रूप में आविर्भूत होता है किन्तु इस आविर्भाव में वह अविकृत, अपरिवर्तित और शुद्ध रहता है।

च. महर्षि दयानन्द- महर्षि का मत है कि ईश्वर सगुण व निर्गुण दोनों हैं। निर्गुण इसलिए है क्योंकि उसमें रूप, रस, आकार, आदि गुणों का सर्वथा अभाव है। मनुष्य, पशु आदि के रूप में वह अवतार नहीं लेता। जो जड़-चेतन सब तत्वों में सर्वव्यापक है, उसे किसी विशेष रूप में अवतरित होने की क्या आवश्यकता है उसमें दया, दाक्षिण्य, उदारता, न्याय, सर्वज्ञता आदि अनेक गुण हैं। अतः वह सगुण भी है। वह निराकार है। बिना हाथ पाँव या इन्द्रियों के वह समस्त कार्य करने में सक्षम है-

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।

स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्।। (श्वेता. 3/19)

वह निष्क्रिय नहीं है। यदि ऐसा होता तो सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कैसे होता? अतः वह चेतन और क्रियाशील मानना होगा। श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी कहा गया है-

परास्य शक्तिर्विविधैर्श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च। (श्वे.6/8)

जगत की व्यवस्था तथा मोक्ष सुख प्रदान करना भी उसी का कार्य है। ईश्वर का स्वरूप स्वामी जी के मतानुसार है-

'ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

जिज्ञासु पाठको अगर आपने भारतीय दर्शनों का सम्यक अध्ययन किया होगा तो -

भारतीय दर्शनों में न्याय वैशेषिक योग और वेदान्त ये चार सम्प्रदाय स्पष्ट रूप से ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं तथा उसकी सिद्धि में उन्होंने प्रबल तर्क दिये हैं। मुख्य रूप से तीन कारणों से ईश्वर की सत्ता को आवश्यक माना गया है। प्रथम कारण यह है कि जगत् की रचना ईश्वर के अतिरिक्त कोई अन्य मनुष्य, देव, सिद्धादि नहीं कर सकते। सृष्टिकर्ता ईश्वर ही हो सकता है। दूसरा कारण यह है- कर्मफल प्रदातृत्व। असंख्य जीवों के कर्मों का फल देना ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य के वश की बात नहीं है। तीसरा कारण यह है कि ईश्वर ने वेदों की रचना की है। सर्वज्ञकल्प वेदों की रचना सर्वज्ञ ईश्वर के अतिरिक्त कोई नहीं कर सकता। इस प्रकार जगत्कर्ता, कर्मफलप्रदाता तथा वेदों के रचयिता के रूप में ईश्वर को स्वीकार करना पड़ता है।

9.3.2 योग दर्शन के अनुसार ईश्वर - यहाँ पर ईश्वर का स्वरूप न्याय वैशेषिक और वेदान्त के अनुसार ही स्वीकार किया गया है किन्तु उसकी मान्यता का आधार न्याय-वैशेषिक से कुछ भिन्न है। योगदर्शन के अनुसार ईश्वर महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योग सूत्र का अगर आप अवलोकन करे तो ईश्वर के जगत्कर्तृत्व तथा कर्मफलप्रदातृत्व पर विशेष बल दिया है। योग सूत्र के समाधिपाद के तेईसवे सूत्र में महर्षि पतंजलि ने कहा है कि ईश्वर की विशेष भक्ति से समाधि की सिद्धि शीघ्र होती है। भक्ति से प्रसन्न होकर परम पिता परमेश्वर योगसाधना में आने वाली समस्त बाधाओं (चित्त विक्षेपो) का निवारण कर देते है जिससे समाधि का मार्ग सहज ही प्राप्त हो जाता है। योगदर्शन में ईश्वर का स्वरूप को इस प्रकार परिभाषित किया है -

'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।' योगदर्शन 1/24

अर्थात् पंचक्लेश, कर्म, विपाक तथा कर्माशय इन चारों से जो सर्वथा असम्बद्ध है, ऐसा पुरुषविशेष ईश्वर कहलाता है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश नामक पाँचों क्लेश जिसको छू नहीं सकते, पुण्य-पाप और मिश्रित तीनों प्रकार के कर्मो से सर्वथा अलग रहने वाला, कर्मफल जिसको सुख या दुःखरूप भोग प्रदान नहीं करते तथा कर्मों के संस्कार जाति, आयु व भोगरूप फल के रूप में आगामी जन्मों का हेतु नहीं बनते, वह ईश्वर कहलाता है। इस प्रकार अन्य पुरुषों से वह सर्वथा पृथक् है क्योंकि अन्य पुरुष क्लेश के सम्पर्क से कर्म-बंधन में बंधे हैं और शुक्ल, कृष्ण तथा शुक्लकृष्ण कर्म करके सुख, दुःख व मिश्रित फल के भागी हो रहे हैं। संस्कारवशात् बार-बार जन्म धारण कर रहे हैं। ये मुक्त होने के बाद भी उस 'ईश्वर' के तुल्य नहीं हो सकते क्योंकि वह ईश्वर तो कभी जन्म-मृत्यु के भवचक्र में फँसा ही नहीं। इसी पुरुष (जीव) को मोक्ष की आवश्यकता है, ईश्वर को नहीं।

ईश्वर सर्वज्ञ है। उसके ज्ञान के बराबर किसी का ज्ञान नहीं है। वह काल से बाधित न होने के कारण सभी पूर्व गुरुओं का भी गुरु है। ओम् ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ नाम है। ओम् को धनुष, आत्मा को बाण और ब्रह्म को लक्ष्य बताने वाली मुण्डकोपनिषद् की ऋचा मोक्ष का मार्ग प्रशस्त कर रही है-

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।

अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।। मुण्डकोपनिषद् 2/4

ओम् ब्रह्म है। ओम् ही सब कुछ है ओम् के द्वारा ही सम्पूर्ण सृष्टि के क्रियाकलाप हैं। ओम् ही भूत, वर्तमान और भविष्यत हैं। इस ओम् का ही जाप और अर्थ का चिन्तन करना चाहिए। इससे ही साक्षात्कार होता है तथा साधनामार्ग में आने वाले समस्त विघ्न दूर हो जाते हैं। योगदर्शन में कहा है-

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च। यो.सू. 1/29

ईश्वर प्रणिधान के द्वारा साधक की समस्त जिम्मेदारियाँ वह परमेश्वर खुद अपने ऊपर ले लेता है तथा शीघ्र समाधि लाभ करा देता है। प्रिय विद्यार्थियों इससे स्पष्ट होता है कि महर्षि पतंजलि ने ईश्वर को विशेष प्रकार का पुरुष कहा है जो दुःख, कर्म, विपाक आदि से अछूता रहता है। ईश्वर स्वभाव से पूर्ण और अनन्त है। उसकी शक्ति सीमित नहीं है। ईश्वर नित्य है। वह अनादि और अनन्त है। वह सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है। वह त्रिगुणातीत है। ईश्वर जीवों से भिन्न है। जीव में अविद्या, राग, द्वेष आदि का निवास है। परन्तु ईश्वर इन सबों से रहित है। जीव कर्म-नियम के अधीन है, जबकि ईश्वर कर्म-नियम से स्वतन्त्र है। ईश्वर मुक्तात्मा से भिन्न है। मुक्तात्मा पहले बन्धन में रहते हैं, फिर बाद में मुक्त हो जाते है। इसके विपरीत ईश्वर नित्य मुक्त है।

ईश्वर एक है। यदि ईश्वर को अनेक माना जाय तो दो ही सम्भावनाएं हो सकती है। पहली सम्भावना यह है कि अनेक ईश्वर एक दूसरे को सीमित करते हैं जिसके फलस्वरूप ईश्वर का विचार खंडित हो जाता है। यदि ईश्वर को अनेक माना जाए तो दूसरी सम्भावना यह होगी कि जो ईश्वर एक से अधिक हैं, वे अनावश्यक होंगे जिसके फलस्वरूप अनीश्वरवाद का प्रादुर्भाव होगा। अतः योग को एकेश्वरवादीदर्शन कहा गया है।

जगत् का सृष्टिकर्ता ईश्वर ही है। इस विषय पर विचार करने पर निरीश्वरवादियों की उक्त मान्यता अविचारित रमणीय प्रतीत होती है। निरीश्वरवादियों के अनुसार पुरुष की सन्निधि मात्र से प्रकृति ही संसार की रचना करने में समर्थ है। किन्तु प्रश्न यह है कि जड़ प्रकृति संसार की रचना करने में स्वतः कैसे प्रवृत्त हो सकती है जैसे लोक में चेतन सारथी की प्रेरणा से ही रथ की गति सम्भव है, वैसे ही चेतन ईश्वर की प्रेरणा के बिना जड़ प्रकृति भी जगत्-रचना में प्रवृत्त नहीं हो सकती है। अतः प्रकृति के प्रेरक के रूप में सृष्टि के प्रति निमित्तकारण ईश्वर को अवश्य ही स्वीकार करना चाहिए।

अन्य प्राणियों का ज्ञान सातिशय है किन्तु ईश्वर का ज्ञान निरतिशय है। अर्थात् ईश्वर में ज्ञान अन्तिम उन्नति के रूप में विद्यमान है। प्राणियों में किसी का ज्ञान वर्तमान पदार्थविषय है, किसी का भूत और भविष्यद् विषयक है, किसी का ज्ञान त्रैकालिक है, किसी का एकविषयक है और किसी का ज्ञान अनेकविषय हैं, इत्यादि। यह ज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता हुआ जहाँ निरतिशयरूप अन्तिम सीमा को प्राप्त होता है, वही सर्वज्ञ ईश्वर कहलाता है।

वह ईश्वर अनादि है क्योंकि उसके काल आदि की निश्चित प्राप्ति नहीं है। योग दर्शन में कहा है कि

'पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। योगदर्शन 1/26

अर्थात् वह ईश्वर हमारे पूर्वजों का भी गुरु है क्योंकि वह काल के द्वारा अवच्छिन्न-सीमित न होने के कारण अनादि है। आशय यह है कि ब्रह्मा, कपिल, जनक, सनन्दन आदि तत्वदर्शियों गुरुओं ने यद्यपि आदिकाल में देहधारण कर मानवमात्र को आत्मज्ञान का उपदेश दिया, परन्तु वे सब देहधारण करने के कारण काल से सीमित रहे। कोई भी देह सदा नहीं रह सकता। वह अनित्य है, एक नियतकाल से सीमित है। किन्हीं जीवात्माओं द्वारा तत्वज्ञान का उपदेश देहधारण के

बिना सम्भव नहीं। अतः वे ब्रह्मा, कपिल आदि पहले गुरु काल से सीमित रहते है। परन्तु ईश्वर काल से कभी सीमित नहीं होता क्योंकि उपदेश के लिए उसे शरीर धारण करने की आवश्यकता नहीं होती।

9.3.3 ईश्वर के नाम, अंग तथा अव्यय- ईश्वर का कोई नाम या रूप नहीं होता, फिर भी उपासना की सुविधा के लिए उसका नाम और रूपों की कल्पना करनी पड़ती है। परमेश्वर के जितने भी नाम तथा रूपों की कल्पना की गई है, वह वस्तुतः उसके विशेषणों के आधार पर है। वास्तव में ईश्वर को कोई एक नाम नहीं दिया जा सकता। अतः उसकी विशेषताओं के आधार पर ही उसे विष्णु, शिव, कृष्ण, वासुदेव, शंकर आदि नाम से पुकारा जाता है। व्यासभाष्य में कहा गया है-

तस्य संज्ञादिविशेषप्रतिपत्तिरागमतः बोध्या। व्यासभाष्य 1/25

ईश्वर के कल्पित नाम व रूपों की कल्पना करना साधक की विवशता है। ईश्वर की उपलब्धि हो जाने के पश्चात् तो नाम और रूप स्वतः ही दूर हो जाते हैं। समाधि की सिद्धि होने पर इनकी कोई उपयोगिता नहीं रह जाती किन्तु जब तक समाधिलाभ नहीं होता तब तक आगमों ने ईश्वर के विभिन्न नाम रूपों की कल्पना का निर्देश किया है।

वायुपुराण में ईश्वर के विभिन्न नामों के अनुरूप उसके छः अंग और दस अवयवों का निर्देश किया गया है। यथा-

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः, स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।

अनन्यशक्तिश्च विभोर्विधज्ञाः, षडाहुरंगानि महेश्वरस्य।। वायुपुराण 12/31

अर्थात् विद्वान् सुधीजनों ने ईश्वर के छः अंग बतलाये हैं- सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिज्ञान, स्वतन्त्रता, अलुप्त चेतनता तथा अनन्य शक्ति। इन्हीं छः अंगों से ईश्वर अंगी अर्थात् परिपूर्ण होता है।

इनके अतिरिक्त दस अव्यय हैं- ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, सृष्टृत्व, आत्मसम्बोध तथा अधिष्ठातृत्व।

ईश्वर का वाचक पद ओम् है- ईश्वरप्रणिधान से शीघ्र समाधिलाभ हो जाता है। ऐसा सूत्रकार महर्षि पतंजलि ने कहा है। वह ईश्वरप्रणिधान कैसे किया जाता है इस प्रश्न के समाधान के लिए कहते हैं कि ईश्वर के नाम का जप करने से ईश्वर भक्तों पर अनुग्रह करता है। ईश्वर का मुख्य वाचक नाम ओम् है-

तस्य वाचकः प्रणवः। योगदर्शन 1/27

ओंकार को प्रणव कहा जाता है। सूत्रकार ने ओंकार शब्द नहीं कहा, अपितु प्रणव कहा है। वस्तुतः प्रणव ओंकार का विशेषण है। 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'नु' धातु से प्रणव शब्द बना है।

क्योंकि ओम् शब्द के द्वारा परमेश्वर की स्तुति की जाती है, इसलिये ओम् को प्रणव कहा जाता है। ओम् भी परमात्मा का नाम नहीं है, वह तो विशेषण है। 'अवति इति ओम्' अर्थात् सबका रक्षक ओम् कहलाता है। श्रुति, स्मृति, पुराणादि में परमेश्वर का मुख्य वाचक ओम् ही है। अतः शीघ्र समाधिलाभ के लिए ओम्जप तथा ईश्वर भावना करनी चाहिए।

9.4 पुरूष (आत्मा)

योगदर्शन और सांख्यदर्शन में आत्मा के विषय में समान विचारों की झलक मिलती है। अतः सांख्य सम्मत आत्मतत्व विवेचना को योग ने भी स्वीकार किया है। सांख्य में आत्मा नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव युक्त है। योगभाष्य में भी कहा गया है-

''चितिशक्तिपरिणाममिन्यप्रति-संक्रमादर्शितविषया शुद्धा चानन्ता सत्वगुणात्मिका चेयम्'' योगसूत्रभाष्य 1/21

योग में ''तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'' सूत्र में आत्मा के द्रष्ट्रत्व को प्रतिपादित किया गया है। क्योंकि द्रष्टा ही साक्षात्कर्ता होता है। योगदर्शन में आत्मा को कहीं द्रष्टा और कहीं पुरुष की संज्ञा दी गई है। अतएव पुरुष क्या है? यह प्रश्न उत्पन्न करके उक्त सूत्र में द्रष्टा शब्द से पुरुष को निर्दिष्ट किया है।

चिति शब्द का प्रयोग भी उसी आत्मा अर्थ में किया गया है। योगसूत्र में कहा है 'विशेषदर्शिन आत्मभावभावनानिवृत्तिः' अर्थात् भेद का साक्षत्कार करलेनेवाले योगी को चित्त में आत्मीयता की भावना समाप्त हो जाती है। यहाँ विशेष पद भेद का पर्याय है। जब योगी को समाधि द्वारा प्रकृति और पुरुष के भेद का साक्षात्कार हो जाता है, तब प्राकृत चित्त, देह आदि में आत्मभाव की भावना समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि योग में आत्मा लिए द्रष्टा और चिति शब्दों का सार्थक प्रयोग किया गया है और उस चित्त की वृत्तियों के निरोध के लिए अष्टांगयोग का निर्धारण, ईश्वरप्रणिधान, अभ्यास तथा वैराग्य आदि का निर्देश किया गया है। जिनकी विवेचना आगे की जाएगी।

पुरुष क्या है ? यह विचारणीय है। इस सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यो ने भिन्न-भिन्न मान्यताएं दी हैं-

आचार्य शंकर-इनके मतानुसार जीव और ब्रह्म अभिन्न हैं-

जीवो ब्रह्मैव नापरः।

वह ब्रह्म की तरह विभु है। अन्तःकरण सहित अवस्था में वह जीवात्मा कहलाता है और जब ब्रह्म और जीव के अभेद का ज्ञान हो जाता है तो वह मुक्त हो जाता है।

आचार्य रामानुज- ये जीव को ब्रह्म का शरीर मानते हैं। यह अणु है। अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान्, भोक्ता है।

आचार्य निम्बार्क- ये जीव को अणु और प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न मानते हैं। इसी मत की पुष्टि सांख्य दर्शन के पुरुषबहुत्ववाद से भी होती है।

आचार्य मध्व- ये जीव और ब्रह्म में नित्य भेद मानते हैं। सेवक, अल्पज्ञ, परमात्मा के अधीन जीव हैं। यह अणु हैं- एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः मुण्ड. 3/1/9

आचार्य वल्लभ- अणु व ब्रह्म का अंश है। शरीर में व्यापक नहीं अपितु हृदय में रहता है-

'गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तम्' कठो. 2/1/6-7

महर्षि दयानन्द- महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के सातवें समुल्लास में कहा है कि जीवात्मा नित्य और अनादि है। ईश्वर और जीवात्मा दोनों नितान्त भिन्न हैं। यह कार्य करने में स्वतन्त्र व व्यवस्था में परतन्त्र है। यह नित्य व चेतन है। अणु है। अल्पज्ञ, कर्म का कर्ता व भोक्ता है।

पुरुष के विषय में सांख्य दर्शन का कथन है कि पुरुष अनेक हैं अतः पुरुषबहुत्ववाद की पुष्टि होती है। वास्तव में पुरुष को आत्मा कहा गया है। इसी आधार पर सांख्यशास्त्र में कहा गया है कि पुरुष अनेक हैं क्योंकि प्रतिदिन की दिनचर्या में कोई जन्म लेता है, कोई मृत्यु को प्राप्त होता है, कोई सोता है तो कोई जागता है आदि अनेक गतिविधियों के एक साथ प्रवृत्ति को देख कर अनुमान किया जा सकता है कि पुरुष बहुत अर्थात् अनेक हैं क्योंकि यदि पुरुष को केवल एक मान लिया जाए तो विसंगति होगी कि यदि एक सोता है तो सब सोएं। एक जन्म ले तो सभी जन्म ले, एक मृत्यु को प्राप्त होता है तो सभी मृत्यु को प्राप्त होवें, परन्तु ऐसा नहीं होता। अतः पुरुष बहुत्ववाद की सिद्धि होती है।

आत्मा के अस्तित्व के विषय में आस्तिक और नास्तिक दोनों ही दर्शन उदासीन हैं। अहं की अनुभूति सभी को होती है। ऐसी अनुभूति किसी को नहीं होती कि मैं नहीं हूँ। किन्तु आत्मा के अस्तित्व एवं स्वरूप-विषयक जितने भी मत प्रचलित हैं, उनका संकलन वेदान्तसार नामक ग्रन्थ में प्राप्त होता है। उनका भी संक्षिप्त अध्ययन करना अनिवार्य है-

चार्वाक सिद्धान्त के पोषक पुत्र को आत्मा कहते हैं और अपने मत की पुष्टि में 'आत्मा वै जायते पुत्रः' इस वाक्य को उद्धृत करते हैं। वे इसका हेतु देते हैं कि पुत्र का सुख-दुःख पिता को साक्षात् अनुभूत होता है। पुत्र के सुखी होने पर सुखी और दुःखी होने पर दुःखी पिता पुत्र को आत्मत्वेन ही स्वीकार करता है-

अति प्राड्डतस्तु 'आत्मा वै जायते पुत्रः'पुत्र आत्मेति वदति। वेदान्तसार पृ. 182

कुछ अन्य नास्तिक लोग अन्न से परिपुष्ट होने वाले देह को आत्मा कहते हैं 'स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः' को उद्धृत करके कहते हैं कि जब घर में आग लग जाती है तो मनुष्य पुत्र, पत्नी आदि सभी को छोड़ कर निज देह को बचाने का प्रयास करता है। निजदेह सभी को प्रिय है। अतः देह ही आत्मा है-

चार्वाकस्तु 'स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः' इत्यादिश्रुतेः प्रदीप्तगृहात्स्वपुत्रं परित्यज्यापि स्वस्य निर्गमदर्शनात् स्थूलोऽहं शरीरात्मेति वदति। वेदान्तसार पृ. 184

कुछ लोगों का मानना है कि इन्द्रियां ही आत्मा है। उनका तर्क है कि इन्द्रियों के अभाव में शरीर चल नहीं सकता। मैं काणा हूँ, बहरा हूँ इत्यादि अनुभूति इन्द्रियों को आत्मा सिद्ध करती है-

अपरश्चार्वाकः 'ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्य बुरयुः' इत्यादिश्रुतेः इन्द्रियाणामभावे.... अनुभवाच्चेन्द्रियाण्यात्मेति वदति। वेदान्तसार पृ. 187

दूसरे चार्वाक इन्द्रियों से ऊपर प्राणों को महत्व देते हुए कहते है कि प्राण के बिना इन्द्रियाँ भी असमर्थ हैं। जब तक प्राण रहते हैं, तभी तक इन्द्रियाँ देखना, सुनना आदि कार्य कर पाती हैं। प्राण के व्याकुल हो जाने पर इन्द्रियाँ भी व्याकुल हो जाती हैं। अतः प्राण ही आत्मा है।

अपरश्चार्वाकः 'अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमय' इत्यादिश्रुतेः प्राणाभावइन्द्रियादिचलनायोगादहमशनायावानहं पिपासावानित्याद्यनुभवाच्च प्राण आत्मेति वदति। वेदान्तरसार, पृ. 190

कुछ दार्शनिक कहते हैं कि आत्मा मन को ही कहना उचित है, क्योंकि 'अन्योन्तरात्मा मनोमयः' यह श्रुतिप्रमाण है। सुषुप्ति अवस्था में जब मन भी सो जाता है तो प्राणादि की गति भी रुक जाती है। मैं संकल्प करता हूँ, विकल्प करता हूँ, इस अनुभूति में जो संकल्प-विकल्प का कर्ता है, वही मन आत्मा है-

अन्यस्तु चार्वाकः 'अन्योऽन्तर आत्मा मनोमय' इत्यादिश्रुतेर्मनसि सुप्ते प्राणादेः.....

मन आत्मेति वदति। वेदान्तसार पृ. 192

प्रभाकर मीमांसक का मत है कि अज्ञान ही आत्मा है। उनका तर्क है कि सुषुप्ति में इन्द्रियाँ, प्राण, मन और विज्ञान सभी अज्ञान में लीन हो जाते हैं। जागने पर 'मैं सुखपूर्वक सोया, मैंने कुछ नहीं जाना' यह अनुभूति होती है। यह अनुभूति अज्ञान को आत्मा सिद्ध करती है-

प्राभाकर तार्किकी तु 'अन्योऽन्तर आत्माज्ञानमय' इत्यादिश्रुतेर्बुद्धयादीनामज्ञाने लय..... अनुभवाच्चाज्ञानमात्मेति वदति। वेदान्तसार, पृ. 195

भट्ट मीमांसक कहते हैं कि आनन्द ही आत्मा है। उनका कहना है कि सुषुप्ति में ज्ञान और अज्ञान दोनों ही रहते हैं। इसलिए अज्ञान से सुख की उत्पत्ति होती है तथा ज्ञान से उस सुख की अनुभूति होती है। अतः आनन्दस्वरूप आत्मा अज्ञान से उपहित चैतन्य का नाम है-

भाट्टस्तु 'प्रज्ञानधन एवानन्दमय' इत्यादिश्रुतेः.....

अनुभवाच्चाज्ञानोपहितं चैतन्यमात्मेति वदति। वेदान्तसार पृ. 198

शून्यात्मवाद भी एक अहं सिद्धान्त है जिसके अनुसार शून्य तत्व को आत्मा कहा गया है। शून्य का अर्थ है- चतुष्कोटि, विनिर्मुक्त, अनिवर्चनीय तत्व शून्यवादी भी सुषुप्ति को दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि 'मैं आज नहीं था।' यह अनुभूति सुषुप्ति काल से जागने पर होती है। यह 'न होना' ही शून्य है। इसलिए शून्य ही आत्मा है।

9.5 प्रकृति

सांख्य शास्त्र के विविध कार्यों से उनके मूल कारण प्रकृति का अनुमान होता है। इस शास्त्र में 25 तत्वों की मान्यता प्राप्त होती है। जिनकी मूल प्रकृति है, जिसका विशेषणपद प्रधान भी है। उत्पन्न करने वाले को प्रकृति, उत्पन्न होने वाले को विकृति कहा जाता है। अतः प्रकृति सबको उत्पन्न करती है लेकिन किसी से उत्पन्न नहीं होती। महदादि (महत्, अहंकार तथा पंचतन्मात्राएं) ये सात प्रकृति से उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न भी करते है अतः इनको प्रकृतिविकृति दोनों माना जाता है। सोलह (पंच कर्मेन्द्रियां, पंच ज्ञानेन्द्रियां, पंच महाभूत तथा मन) का समूह केवल उत्पन्न होता है। पुरुष न तो किसी से उत्पन्न होता है, न किसी को उत्पन्न करता है।

इन पच्चीस तत्वों को प्रकृति, विकृति, प्रकृति-विकृति, तथा न प्रकृति न विकृति के भेद से चार भागों में बांटा जाता है।

मूलप्रकृति ही प्रधान है। क्योंकि वह प्रकृति के विकारभूत सातों पदार्थों की मूलभूत कारणरूप है, वह मूल भी है और प्रकृति भी है। अतः मूल प्रकृति कहा है। किसी अन्य से उत्पन्न नहीं होती, इसलिए प्रकृति किसी का विकार नहीं है।

प्रकृति को अव्यक्त भी कहा जाता है। वैसे तो अव्यक्त को मानने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए परन्तु किसी विद्यमान वस्तु की अनुपलब्धि के आठ कारण है-

1. अत्यन्त दूर होने से,

2. अत्यन्त समीप होने से,

3. इन्द्रियों के नष्ट हो जाने से,

4. मन की अस्थिरता से,

5. सूक्ष्म होने से,

6. किसी वस्तु का व्यवधान होने से,

7. किसी उत्कट द्वारा अभिभूत होने से,

8. अपने सदृश पदार्थ में मिल जाने से,

अतः उक्त हेतुओं से विद्यमान वस्तु की भी उपलब्धि नहीं होती। प्रकृति भी विद्यमान पदार्थ होते हुए अतिसूक्ष्म होने के कारण अनुपलब्ध है। परन्तु उसके स्थूल कार्यों को देख कर उसका अनुमान किया जाता है।

योगदर्शन सांख्य के सभी सिद्धान्तों को स्वीकार करता है। प्रकृति का स्वरूप उसकी विकृति के स्वरूप वाला भी है तथा उससे भिन्न भी है। अर्थात् यदि समानता के पक्ष में विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि सभी व्यक्त कार्य त्रिगुणात्मक हैं। उनमें सत्व, रज और तम पाये जाते हैं। ठीक उसी प्रकार प्रकृति में भी सत्व, रज तथा तम की उपस्थिति कही गई है। इसीलिए प्रकृति का लक्षण इस प्रकार कहा गया है-

'सत्वरजस्तमसाभ्यां साम्यावस्था प्रकृतिः'

दूसरा विशेषण अविवेकी है अर्थात् जिसका कोई विवेक नहीं होता। आशय यह है कि ये गुण हैं और यह अव्यक्त है। ऐसा पृथक् विवेचन नहीं किया जा सकता। जैसे- यह गाय है और यह घोड़ा है। जो व्यक्त है, वे ही गुण हैं, जो गुण हैं, वही व्यक्त हैं। इस प्रकार का भेद करने का विवेक प्रकृति में नहीं है, इसलिए इसे अविवेकी कहा जाता है।

तीसरा इस प्रकृति को विषय कहा गया है। विषय का अर्थ है सबके द्वारा उपभोग के योग्य, क्योंकि यह समस्त व्यक्तियों का विषयभूत है।

चौथा विशेषण प्रकृति का यह है कि वह सामान्य है। जैसे पैसे से कोई भी सुविधा सबको प्राप्त होकर सामान्य हो जाती है। ठीक उसी प्रकार यह भी सर्वसाधारण के लिए उपभोग्य है।

पाँचवा विशेषण प्रकृति का अचेतन है। कहने का तात्पर्य है कि प्रकृति जड़ है। सुख, दुःख और मोह को प्रकाशित नहीं कर सकती। प्रकृति प्रसवधर्मी है अर्थात् उत्पन्न करने के स्वभाववाली है, जैसे प्रकृति से बुद्धि, बुद्धि से अहंकार आदि की उत्पत्ति होती है, अहंकार से 11 इन्द्रियाँ और 5 तन्मात्राएँ उत्पन्न होती है। तन्मात्राओं से 5 महाभूत आकाशादि उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार प्रसवधर्मी पर्यन्त व्यक्त के धर्म कहे गये हैं, ऐसे ही इन धर्मों से भी है।

जब व्यक्त से विरुद्ध धर्मों के विषय में चिन्तन किया जाता है तो ज्ञात होता है कि अव्यक्त अर्थात् प्रकृति अहेतुमत्, नित्य, व्यापि, निष्क्रिय, एक, अनाश्रित, निरवयव तथा स्वतन्त्र है। अर्थात् व्यक्त हेतुमत् हैं, और प्रकृति से अन्यत्र कोई नहीं है जिससे उसकी उत्पत्ति मानी जाये, इसलिये प्रकृति अहेतुमत् है। व्यक्त उत्पत्तिमान होने से अनित्य हैं, किन्तु अव्यक्त प्रकृति अहेतुमत् होने से नित्य है। क्योंकि भूतादि की तरह वह किसी से उत्पन्न नहीं होती। व्यक्त अव्यापी हैं किन्तु अव्यक्त प्रकृति व्यापी है, क्योंकि वह सर्वगत है। व्यक्त सक्रिय है, क्रियाशील हैं, किन्तु अव्यक्त अक्रिय है क्योंकि वह सर्वगत होने से ही उसकी क्रियाशीलता की आवश्यकता नहीं है। तथा व्यक्त अनेक अर्थात् 23 है किन्तु अव्यक्त कारण होने से एक ही है। तीनों लोकों का कारणभूत प्रधान है। इसलिये वह एक है। व्यक्त आश्रित रहता है किन्तु अव्यक्त किसी के आश्रित नहीं रहता क्योंकि वह किसी का भी कार्य नहीं है। प्रधान से दूसरा कोई ऐसा है ही नहीं जिसका कार्य प्रधान को माना जा सके। तथा व्यक्त लिंग है किन्तु अव्यक्त अलिंग है। प्रलय काल में व्यक्तादि अपने कारणों में लीन हो जाते हैं, परन्तु प्रधान का लय नहीं होता, क्योंकि उसका कोई कारण नहीं है, इसलिए प्रधान अलि है। व्यक्त सावयव हैं तथा अव्यक्त प्रकृति निरवयव है -शब्द स्पर्श रूप, रस, गन्ध ये अवयव प्रधान में नहीं होते हैं। व्यक्त परतन्त्र होता है, किन्तु अव्यक्त स्वतन्त्र है किसीके अधीन नहीं रहता, स्वयं अपने में समर्थ होता है।

इस प्रकार के गुण, लक्षणों से युक्त प्रकृति, पुरुष के समक्ष अपने को ठीक उसी प्रकार प्रस्तुत करती है तथा निवृत्त हो जाती है जैसे कोई नर्तकी रंगमंच पर अपना नाच दिखाकर अपना कार्य समाप्त कर उस द्रष्टा के प्रति नृत्य से निवृत्त हो जाती है। प्रकृति भी पुरुष के लिए भोग उपलब्ध कराती रहती है। जब वह मोक्ष उपलब्ध करा देता है तो सदा के लिए निवृत्त होकर उसके लिए कृतकार्य होकर अपने मूल कारण में लीन हो जाती है। उसका प्रयोजन 'मोक्ष' प्रदान करना पूरा हो जाता है।

9.6 कैवल्य

भारतीय दर्शन की समस्त शाखाओं में दुःख निवृत्ति और आनन्दावाप्ति को मोक्ष कहा गया है। योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने इसी को स्वरूपावस्थान या कैवल्य कहा है। बौद्धों के मत में यही मोक्ष 'निर्वाण' पद से अभिहित किया जाता है। जैन इसे 'आर्हती दशा' कहते हैं। नैयायिकों ने 'अपवर्ग' व वैशेषिकों ने 'निःश्रेयस' कहा है। सांख्य 'सत्वपुरुषान्यताख्याति' या 'प्रकृतिवियोग' के नाम से कहते हैं। मीमांसक 'प्रपंचसम्बन्धविलय' कहते हैं तो वेदान्त में इसी का नाम 'ब्रह्मपदावाप्ति' है।

जन्मजन्मान्तरों के संस्कारों के फलस्वरूप सुख-दुःखादि का भोग करते हुए आत्मा को कष्ट की अनुभूति होती है। इसी कष्ट से मुक्ति प्राप्त करना उसका उद्देश्य है।

चार्वाक दर्शन ने मोक्ष की सत्ता और उपयोगिता को स्वीकार किया है। उनके अनुसार देह ही आत्मा है। अतः देह का विनाश ही मोक्ष है। यह मोक्ष शाश्वत है क्योंकि पुनर्जन्म की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए उन्होंने कहा है-

यावज्जीवेत्सुखं जीवत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।। सर्वदर्शनसंग्रह पृ. 24

सब कुछ वर्तमान है। प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। भूत तथा भविष्यत् किसी भी पदार्थ की सत्ता नहीं है-

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।

नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः।। सर्वदर्शन संग्रह पृ. 24

बौद्धदार्शनिक त्रिविध दुःख स्वीकार करते हैं- दुःख-दुःखता, संस्कार-दुःखता व परिणाम-दुःखता। इन त्रिविध दुःखों से आत्यन्तिक मुक्ति ही मोक्ष या निर्वाण है। यह निर्वाण निषेधात्मक है, विध्यात्मक नहीं। जैसे दीपक का निर्वाण निषेधात्मक होता है। विशेषतः शून्यवादियों की यही मान्यता है-

सत्काम दृष्टि प्रभवानशेषान्, क्लेशांश्च दोषांश्च धिया विपश्यन्।

आत्मानमस्या विषयंच बुद्धवा, योगी करोत्यात्म निषेधमेव।।

माध्यमिका वृत्ति (चन्द्रकीर्ति) यह निर्वाण प्रहाण, प्राप्ति, उच्छेद, निषेध और उत्पत्ति से रहित माना गया है। क्योंकि अभावरूप है और सब कुछ क्षणिक है।

न्यायदर्शन में मोक्ष को अपवर्ग कहा गया है। यह अपवर्ग दुःखों का अत्यन्ताभावरूप है-

सा आत्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिरपवर्गः- सर्वदर्शनसंग्रह पृ. 491

तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः- न्यायसूत्र 1/1/22

दुःखों का प्रधान कारण जन्म है। जन्म सकाम कर्मों में प्रवृत्ति से होता है। प्रवृत्ति दोषवशात् होती है और दोषों का कारण है मिथ्याज्ञान। प्रमाणादि षोडश पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होकर मोक्ष का अधिगम होता है। कहा गया है-

प्रमाणप्रमेय संशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभास-

छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः। न्यायसूत्र 1/1/1

वैशेषिक दर्शन में भी कैवल्य का स्वरूप न्याय के समान ही माना गया है। दोनों ही समान तन्त्र कहे जाते हैं। यहाँ कैवल्य मोक्ष को परम पुरुषार्थ कहा गया है तथा उसकी शास्त्रीय संज्ञा 'निःश्रेयस' दी गई है-

दुःखात्यन्तोच्छेदापरपर्यायनिःश्रयेसरूपत्वेन परमपुरुषार्थत्वात्- सर्वदर्शनसंग्रह पृ. 447

यह भी दुःखाभाव रूप है। जैसे अग्नि ईंधन को जलाकर शान्त हो जाती है, कुछ भी शेष नहीं रहता। इसी प्रकार दुःखो का नाश हो जाना कैवल्य है। कैवल्य में सुख नहीं होता।

मीमांसा के अनुसार जीवात्मा के साथ जगत्प्रेम के सम्बन्ध के विलय को मोक्ष कहा जाता है। मीमांसक जीव और जगत् दोनों को नित्य मानते हैं। जगत् का प्रलय यहाँ अमान्य है। अतः जगत् का विलय तो हो नहीं सकता। केवल प्रपंच के साथ जीव के सम्बन्ध का लय होता है-

प्रपंचसम्बन्धविलयो मोक्षः -मीमांसादर्शन;शास्त्रदीपिका, पृ. 358

प्रपंच तीन प्रकार का होता है- शरीर, इन्द्रियाँ और विषय। शरीर भोगायतन, इन्द्रियाँ भोगसाधन और विषय भोग्य हैं। सुख-दुःख रूप जो अपरोक्षानुभूति है, वह भोग है, जिसका कर्ता पुरुष है। इस त्रिविध प्रपंच रूप बन्धन का सदा के लिए अवरुद्ध हो जाना मोक्ष है। नित्य और नैमित्तिक कर्मों के अनुष्ठान से प्रपंच विलय होता है।

आचार्य रामानुज ने भगवान् श्रीहरि के दासत्व की प्राप्ति को ही कैवल्य कहा है। कैवल्यावस्था में जीवात्मा भगवान् का किंकर बनकर वैकुण्ठ में भगवान् के चरणों में निवास करता है-

श्रीवैकुण्ठमुपेत्य नित्यमजड़ं तस्मिन् परब्रह्मणः।

सायुज्यं समवाप्य नन्दति समं तेनैवधन्यः पुमान्। लोकाचार्य

वह ब्रह्म के साथ मिलकर अभिन्न नहीं हो जाता। वह सदा ब्रह्म से पृथक् ही रहता है। मोक्ष दशा में विशेष आनन्द कैवल्य का फल है। जीव स्वरूप से नित्य है। ध्रुवानुस्मृति रूप भक्ति ही मोक्ष का साधन है।

रामानुजीय वैष्णव परम्परा में निम्बार्क का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके मत में मुक्ति (कैवल्य) का अर्थ ब्रह्मलोक की प्राप्ति है। मुक्ति का एकमात्र साधन भक्ति है। भक्ति का अर्थ है- शरणागति या परा-प्रपत्ति। परा-प्रपत्ति में भगवान् की अनुकूलता का संकल्प लेना, प्रतिकूलता का वर्जन करना, 'भगवान ही रक्षा करेंगे' ऐसा विश्वास करना तथा ईश्वर के रक्षकत्व रूप महिमा का वर्णन किया जाता है। भगवान् भक्त के कार्पण्य-भाव से प्रसन्न होते हैं। प्रसन्न हुए भगवान् भक्त को स्वकीय धाम प्रदान करते हैं।

स्वामी दयानन्द दुःखों से मुक्त होने को कैवल्य कहते हैं जिसका दूसरा नाम मुक्ति भी है-

'मु ंचन्ति पृथग्भवन्ति जनाः यस्यां सा मुक्तिः'

(सत्यार्थ प्रकाश नवम समुल्लास पृ. 161)

मुक्ति की यही सीधी-सी परिभाषा है। यह जीवनकाल में भी हो सकती है और मृत्यु काल के बाद भी। जैसे लोक में आदमी औषधि आदि का सेवन करके कुछ काल तक रोगों से मुक्त रहता है, वैसे ही उपासना, सत्कर्म आदि के अनुष्ठान से जन्म-मरण के चक्र का कुछ कालपर्यन्त निरुद्ध हो जाना मोक्ष है। वे मुक्ति का एक सीमित काल मानते हैं, आत्यन्तिक मुक्ति नहीं। आत्यन्तिक शब्द का वे अत्यधिक अर्थ करते हैं (सत्यार्थ प्रकाश नवम समुल्लास पृ. 164)। महर्षि का कथन है

कि अल्पज्ञ और अल्पशक्तियुक्त जीवात्मा का इतना सामर्थ्य नहीं हो सकता कि वह त्रिविध दुःखों से शाश्वत मुक्ति प्राप्त कर सके।

उनके अनुसार ''परमेश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म, अविद्या, कुसंग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्य भाषण, परोपकार, विद्या, पक्षपातरहित न्याय, धर्म की वृद्धि करने, पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर की स्तुति, पुरुषार्थ और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने, पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सबसे उत्तम साधनों को करने और जो कुछ करें, वह सब पक्षपातरहित न्याय धर्मानुसार ही करें। इत्यादि साधनों से मुक्ति और इनसे विपरीत ईश्वराज्ञा भंग करने आदि काम से बन्ध होता है। (सत्यार्थ प्रकाश नवम समुल्लास पृ. 164) । इसके अतिरिक्त कैवल्य की प्रप्ति के लिए साधनचतुष्ट्य, अनुबन्ध चतुष्ट्य, श्रवणचतुष्टय, मैत्री करुणा आदि भावनाचतुष्टय को मुक्ति का साधन स्वीकार किया है।

सांख्य के मतानुसार प्रकृति और पुरुष का संयोग ही बन्धन है, जिसे संसार कहा जाता है। तत्त्वज्ञान से इन दोनों का वियुक्त हो जाना ही मोक्ष है-

पुंप्रकृत्योर्वियोगोऽपि योग इत्यभिधीयते।

पुरुष और प्रकृति का संयोग अंधे व लंगड़े के समान है। इस मत के अनुसार बन्धन व मोक्ष प्रकृति का ही होता है, पुरुष में तो उसका उपचार ही होता है। प्रकृति कार्य महत्व के आठ धर्म हैं- धर्माधर्म, ज्ञानाज्ञान, वैराग्यावैराग्य तथा ऐश्वर्य नैश्वर्य। इनमें से सात रूपों से तो प्रकृति पुरुष को बाँधती और एक रूप से अर्थात् ज्ञान से छोड़ती है-

रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः।

सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण।। सां.का.63

योगदर्शन के अनुसार आत्मा का स्वरूप में अवस्थान ही कैवल्य कहलाता है तथा मोक्ष की शास्त्रीय संज्ञा ही कैवल्य है। मोक्षावस्था में जीवात्मा निजस्वरूप में अवस्थित होता है, यह स्वरूपावस्थान ही कैवल्य है-

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्-योगसूत्र 1/3

शान्त, घोर तथा मूढ़धर्मों से रहित निर्विषय चैतन्यमात्र ही पुरुष का स्वरूप है। जैसे जपाकुसुम के हट जाने से स्फटिक अपने स्वच्छ शुद्ध स्वरूप में अवस्थित होता है, वैसे ही वृत्ति के हट जाने पर वृत्ति के प्रतिबिम्ब से रहित पुरुष अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

प्रकृति और चित्त त्रिगुणात्मक हैं। त्रिगुणात्मक प्रकृति के दो ही प्रयोजन हैं- पुरुष के लिए भोग व अपवर्ग देना। जब दोनों प्रयोजन पूर्ण हो जाते हैं, तो वह निवृत्त हो जाती है। त्रिगुणात्मक होने से शान्त, घोर तथा मूढरूप है। उसके साथ पुरुष को तादात्म्य का अभिमान होने से पुरुष में भी औपाधिक शान्त, घोर और मूढ़रूप धर्म भासने लगते हैं। जब वृत्तिसहित चित्त अपने कारणरूप प्रकृति में लीन हो जाता है तो पुरुष में जो शान्त, घोरादि धर्म भासते थे, वे नहीं भासते। पुरुष का यह स्वरूप में अवस्थित होना ही कैवल्य की दशा कहलाती है। तत्वज्ञान चित्तवृत्तिनिरोध रूप योग से साध्य है। यह योग अभ्यास और वैराग्य रूप है। क्रियायोग, अष्टांगयोग और ईश्वर-प्रणिधानरूप भक्तियोग भी कैवल्य प्राप्ति के अन्य साधन हैं।

बन्धन और मोक्ष- योगदर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरुष का संयोग ही बन्धन है और इन दोनों का वियोग ही मोक्ष है। प्रकृति और पुरुष का संयोग अनादि है। यह संयोग अविद्या के कारण होता है। जब विवेकज्ञान से अविद्या का अभाव हो जाता है। तो प्रकृति और पुरुष के संयोग का भी अभाव हो जाता है। यही मोक्ष या कैवल्य है।

प्रकृति के दो प्रयोजन हैं- भोग और मोक्ष। बुद्धि से प्रकृति सर्वप्रथम पुरुष के लिये भोग प्रदान करती है और पुनः मोक्ष प्रदान करती है। जब उसके ये दोनों प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं तो प्रकृति पुरुष का साथ छोड़ देती है। चित्त भी अपने कारणरूप प्रकृति में लीन हो जाता है। सूत्रकार महर्षि पत´जलि ने कहा है-

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति।।

योगसूत्र -4/34

अर्थात् बुद्धि आदि के रूप में परिणत गुणों का जब भोग और अपवर्गरूप प्रयोजन सिद्ध हो जाता है तो वे अपने-अपने कारणों में लीन हो जाते हैं। यह प्रकृति का कैवल्य है। चितिशक्ति पुरुष वृत्तिसारूप्य की निवृत्ति होने पर स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। यह पुरुष का कैवल्य है।

इस प्रकार कैवल्य दो प्रकार का हुआ- गुणों का प्रकृति में लय होना और पुरुष का स्वरूप में अवस्थित होना। प्रथम मोक्ष प्रकृति को होता है और दूसरा मोक्ष पुरुष को होता है। प्रकृति पुरुषार्थ से मुक्त हो गयी और पुरुष गुणों से मुक्त हुआ। चितिशक्तिरूप पुरुष का सर्वदा उसी प्रकार से अवस्थित रहना ही पुरुष का कैवल्य है।

कैवल्य के भेद- कैवल्य या मुक्ति दो प्रकार की है- जीवन्मुक्ति तथा विदेहमुक्ति या आत्यन्तिक मुक्ति। जीवनकाल में तत्वज्ञान होने पर पुरुष का जो स्वरूपावस्थान होता है, वह जीवन्मुक्ति है और मृत्यु के पश्चात देहपात होने पर विदेहमुक्ति होती है। तत्वज्ञान होने पर भी आयु के शेष रहते हुए शरीर संस्कारवश चलता रहता है वह काल जीवन्मुक्तिकाल कहलाता है। उस काल में योगी जो कर्म करता है, वे कर्म न तो शुक्ल होते हैं और न कृष्ण। क्योंकि उन कर्मों से संस्कार नहीं बनते। संस्कार उन्हीं कर्मों से बनते हैं जिनके साथ मन का सम्बन्ध होता है। योगी के कर्म मन से नहीं किये जाते, वे तो पूर्व अभ्यास के कारण स्वचालित यन्त्र के समान स्वयमेव होते रहते हैं। जैसे कुम्भकार का चक्र दण्ड हटा लेने पर भी पूर्वगति के संस्कार के कारण कुछ देर तक चलता रहता है। गति का संस्कार समाप्त होते ही चक्र स्वयमेव रुक जाता है। जीवन्मुक्त पुरुष की भी यही दशा है। वह भी पूर्व संस्कारवश देह से जीवित रहता है। आयु समाप्त होते ही वह विदेहमुक्त हो जाता है। और वह फिर जन्ममरण के चक्ररूप इस संसार में फिर नहीं आता। यही स्वरूप ईश्वरकृष्ण ने सांख्यकारिका में किया है-

सम्यग्ज्ञानाधिगमाद् धर्मादीनामकारणप्राप्तौ।

तिष्ठति संस्कारवशात् चक्रभ्रमिवद्धृतशरीरः।।

प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ।

ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति।।

सांख्यकारिका 67,68

9.7 कैवल्य प्राप्ति के उपाय

मोक्ष के अधिगम हेतु उपनिषदों में ज्ञान, कर्म और उपासना तीनों साधनों के साथ-साथ योग को स्वीकार किया गया है। इन्हीं में से वेदान्तियों ने मात्र ज्ञान को, वैष्णवाचार्यों ने भक्ति को, मीमांसकों ने कर्म को तथा योगियों ने योग का चयन किया है।

उपनिषदों में केवल ज्ञान या केवल कर्म को मोक्ष के साधन के रूप में स्वीकार नहीं माना है, इसके अनेक प्रमाण उपनिषदों में प्राप्त होते हैं जैसे-

अन्धंतमः प्रविशन्ति ..... ईशोपनिषद – 9

प्लवा ह्येते ..... मुण्डकोपनिषद 1/2/7

अविद्यायामन्तरे ..... मुण्डकोपनिषद 1/2/8

अविद्यायां बहुधा ..... मुण्डकोपनिषद 1/2/9

न कर्म लिप्यते नरे .....ईशोपनिषद 2

परीक्ष्य लोकान् ..... मुण्डकोपनिषद 1/2/12

कर्मानुष्ठान द्वारा मृत्यु को पार करके ज्ञानानुष्ठान द्वारा मोक्ष की प्राप्ति मानी गई है। प्रणवोपासना व तप को भी साधन रूप में स्वीकार किया है। अन्यत्र शरणागति रूप भक्ति को मोक्षोपाय स्वीकार किया गया है। इस प्रकार ज्ञान, कर्म और भक्ति को कैवल्य का साधन स्वीकार किया गया है। केवल ज्ञान अथवा केवल कर्म अथवा उपासना ही इसके लिए पर्याप्त नहीं हैं।

योगतत्त्व को मोक्षोपाय स्वीकार करके उपनिषदों में यहाँ तक कहा है कि योगाग्निमय शरीर वाले साधक को जन्म, मृत्यु और जरा नहीं सताते-

न तस्य रोगो न जरा न मृत्यु प्राप्तस्य यौगाग्निमयं शरीरम्-

श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/12

अतः योग द्वारा अमरत्व प्राप्ति सम्भव है। योग की अन्तिम अवस्था समाधि है। इसके उपरान्त साधक अविद्यादि पंचक्लेशों से छूटकर संस्कारों को दग्धबीज कर देता है। जिससे संस्कार शेष नहीं रहते और जन्म-आयु-रूपी फल प्रदान करने में असमर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार योग साधना द्वारा साधक जन्म-मरण के बन्धन से छूटकर आनन्द प्राप्त कर लेता है। योगाभ्यासी साधक अष्टांगयोग, क्रियायोग, अभ्यास और वैराग्य के द्वारा उस कैवल्यावस्था को प्राप्त कर लेता है, जहाँ जाकर उसे परमसुख की उपलब्धि होती है। उसे कल्पान्त तक मोक्षानन्द भोग का सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है।

असम्प्रज्ञातसमाधि मे प्राप्त सत्वपुरुषान्यताख्यातिरूप विवेकज्ञान ही कैवल्य का एकमात्र उपाय है। यद्यपि अविद्या की निवृत्ति ही मोक्ष का हेतु है किन्तु अविद्या की निवृत्ति विवेकज्ञान द्वारा होती है। अतः विवेकज्ञान ही कैवल्य का

उपाय है। सूत्रकार ने कहा है-

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।।योगसूत्र 2/26

अर्थात् मिथ्याज्ञानरूप विप्लव से रहित विवेकख्याति ही अविद्या की निवृत्ति का तथा कैवल्य का हेतु है। शास्त्रजन्यज्ञान से अविद्या की निवृत्ति नहीं होती क्योंकि वह परोक्षज्ञान है। विवेकख्याति अपरोक्षज्ञान है। इसी से अविद्या की निवृत्ति होती है। इस अवस्था को उपनिषद् में इस प्रकार कहा गया है-

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां वह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।

अजो ह्येको जुषाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्त भोगामजोऽन्यः।।

अर्थात् सत्व, रज और तम रूप त्रिगुणात्मक प्रकृति अजन्मा है। यह त्रिगुणात्मक प्रजाओं को उत्पन्न करती है। उस प्रकृति को एक अजन्मा बद्धपुरुष तो भोगता हुआ अनुताप करता है और दूसरा अजन्मा मुक्तपुरुष भोग ओर मोक्ष देकर कृतकार्य हुई प्रकृति को छोड़ देता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

क. किसने कहा है कि ब्रहम, सगुण व विशेष है।
अ. आचार्य मध्व ब. आचार्य शंकर
स. आचार्य रामानुज द. आचार्य निम्बार्क

ख. महर्षि दयानन्द ने कौन सी पुस्तक लिखी।
क. राजयोग ब. सत्यार्थ प्रकाश
स. भक्ति योग साधना द. योग सूत्र

ग. कैवल्य की प्राप्ति के साधन कौन से है।
अ. अष्टांग योग ब. अभ्यास वैराग्य
स. क्रियायोग द. उपरोक्त तीनों

2. सत्य और असत्य बताइये।

क. ईश्वर की कृपा से समाधि की प्राप्ति होती है।
ख. महर्षि दयानन्द ने ईश्वर को सगुण व निर्गुण माना है।
ग. चार्वाक दर्शन ईश्वर की सत्ता पर विश्वास करता है।
घ. ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक तथा आशय से परे है।
ड. योग दर्शन में आत्मा को ईश्वर की संज्ञा दी है।

च. सांख्य दर्शन में 25 तत्वों को मान्यता दी है।

छ. न्यायदर्शन में मोक्ष को अपवर्ग कहा है।

ज. योगदर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरूष का संयोग ही बन्धन है –

9.8 सारांश

कैवल्य की प्राप्ति करना योगदर्शन का प्रमुख उद्देश्य है। भारतीय दर्शन की समस्त शाखाओं में दु:ख की निवृत्ति और आनन्द की प्राप्ति को मोक्ष कहा है। नाम अनेक है परन्तु उद्देश्य एक ही है। पतंजलि ने कहा कि जब चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है तब दृष्टा अर्थात आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाती है, यही अवस्था कैवल्य है। कैवल्य की प्राप्ति के लिए योग साधना तो है ही पर बिना ईश्वर की कृपा के यह सम्भव नहीं है। ईश्वर जो समस्त जगत को केवल इच्छा मात्र से ही उत्पन्न कर दे या नष्ट कर दे वह चाहे तो निश्चित ही सहज रूप से कैवल्य की प्राप्ति हो सकती है।

9.9 शब्दावली

विनिष्ट - नष्ट करना, नाश करना

निराकार – जिसका कोई आकार नही

पंच क्लेश – अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश

काल – समय

प्रणव – ॐ, ओंकार

9.10 त्रिगुण – सत, रज, तम

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क. अ ख. ब ग. द

2. क. सत्य ख. सत्य ग. असत्य घ. सत्य

ड. असत्य च. सत्य छ. सत्य ज. सत्य

9.11 सन्दर्भ ग्रन्थ -

1. महर्षि पतंजलि – योग दर्शन (2007) गीताप्रेस गोरखपुर

2. महर्षि पतंजलि – पातंजल योग प्रदीप (2008) गीतप्रेस गोरखपुर

3. स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती – पातंजल योग दर्शन (1999) योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि की रेति ऋषिकेश

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. योग सूत्र के अनुसार ईश्वर के स्वरूप की विस्तारपूर्वक व्याख्या करें।

2. पुरूष व प्रकृति का समीक्षात्मक अध्ययन कीजिए।

3. कैवल्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कैवल्य प्राप्ति के उपायो की विस्तारपूर्वक चर्चा करें।

इकाई 10 – हठयोग का अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य, उपयोगिता तथा हठसिद्धि के लक्षण

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 हठयोग का अर्थ

10.4 हठयोग की परिभाषायें

10.5 हठयोग का उद्देश्य

10.6 हठयोग की उपयोगिता

10.7 हठसिद्धि के लक्षण

10.8 सारांश

10.9 शब्दावली

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.12 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

योग का मुख्य उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है। भारतीय चिन्तन में योग मोक्ष प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन रहा है, योग की विविध परम्पराओं (हठयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग) इत्यादि का अन्तिम लक्ष्य भी समाधि की स्थिति को प्राप्त करना है। हठयोग के साधनों के माध्यम से वर्तमान में व्यक्ति स्वास्थ्य लाभ तो करता ही है पर इसके आध्यात्मिक लाभ भी निश्चित रूप से व्यक्ति को मिलते है। प्रस्तुत इकाई में हठयोग के अर्थ परिभाषाओं, उद्देश्य तथा महत्व के साथ-साथ हठसिद्धि के लक्षणों का वर्णन किया जा रहा है। जिज्ञासु पाठको को चाहिए कि हठयोग की इस परम्परा को आत्मसाध कर योग के चरम लक्ष्य की ओर साधक अग्रसारित हो।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप

- हठयोग के वास्तविक अर्थ को समझ सकेंगे।
- हठयोग की विविध परिभाषाओं को जान सकेंगे।
- हठयोग के विविध उद्देश्यों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- हठयोग की उपयोगिता को जान सकेंगे।
- हठसिद्धि के लक्षणों का अध्ययन करेंगे।

जिज्ञासु पाठाकों, आम नागरिको, तथा योग को जानने की अभीप्सा रखने वाले साधको के मन में अक्सर निम्न प्रश्नों को जानने की इच्छा रहती है।

- हठयोग क्या है
- क्या हठपूर्वक की जाने वाली क्रिया हठयोग है।
- हठयोग का अभ्यास क्यो करना चाहिए।
- हठयोग करने से क्या लाभ है

आगामी पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के बाद आप उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जानने में सक्षम हो जायेंगे।

10.3 हठयोग का अर्थ

हठयोग नाम से यह प्रतीत हो रहा है कि यह क्रिया जिद-पूर्वक (हठपूर्वक) की जाने वाली है। परन्तु ऐसा नहीं है अगर हठयोग की क्रिया एक उचित मार्गदर्शन में की जाये तो साधक सहजतापूर्वक इसे कर सकता है। इसके विपरित अगर व्यक्ति बिना मार्गदर्शन के करता है तो इस साधना के विपरित परिणाम भी दिखते है। वास्तव में यह सच है कि हठयोग की क्रियाये कठिन कही जा सकती है जिसके लिए निरन्तरता और दृढ़ता आवश्यक है प्रारम्भ में साधक हठयोग की क्रिया के अभ्यास को देखकर जल्दी करने को तैयार नहीं होता इसलिए एक सहनशील, परिश्रमी और तपस्वी व्यक्ति ही इस साधना को कर सकता है। अब प्रश्न उठता है कि हठयोग क्या है संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में हठयोग शब्द को दो अक्षरों में विभाजित किया है।

1. ह अर्थात हकार

2. ठ अर्थात ठकार

हकार का अर्थ है सूर्य तथा ठकार का अर्थ चन्द्र से है।

हकार अर्थात सूर्य तथा ठकार अर्थात चन्द्र इन दो नदियों का मिलन ही हठयोग है।

10.4 हठयोग की परिभाषायें

विविध ग्रन्थों में हठयोग को इस प्रकार परिभाषित किया है।

सिद्ध-सिद्धान्त संग्रह के अनुसार :-

हकार: कीर्तित: सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते ।

सर्याचन्द्रमसोर्योगात् हठयोगो निगद्यते ।।

अर्थात हकार (सूर्य) तथा ठकार (चन्द्र) नाडी के योग को हठयोग कहते है।

योगशिखोपनिषद में भी हकार को सूर्य तथा ठकार को चन्द्र मानकर सूर्य और चन्द्र के संयोग को हठयोग कहा गया है।

हकारेण तु सूर्य: स्यात् सकारेणेन्दुरूच्यते।

सूर्याचन्द्रमसोरैक्यं हढ इव्यमिधीयते ।।

योगशिखोपनिषद में योग की परिभाषा देते हुए कहा है कि अपान व प्राण, रज व रेतस्, सूर्य व चन्द्र तथा जीवात्मा व परमात्मा का मिलन योग हे। यह परिभाषा भी हठयोग की सूर्य व चन्द्र के मिलन की स्थिति को प्रकट करती है -

योऽपानप्राणयोरैक्यं स्वरजो रेतसोस्तथा।।

सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः।

एवं तु द्वन्द्वजालस्य संयोगो योग उच्यते।।

ह (सूर्य) का अर्थ सूर्य स्वर, दायाँ स्वर, पिंगला स्वर अथवा यमुना तथा ठ (चन्द्र) का अर्थ चन्द्र स्वर, बाँया स्वर, इडा स्वर अथवा गंगा लिया जाता है। दोनों के संयोग से अग्निस्वर, मध्य स्वर, सुषुम्ना स्वर अथवा सरस्वती स्वर चलता है, जिसके कारण ब्रह्मनाड़ी में प्राण का संचरण होने लगता है। इसी ब्रह्मनाड़ी के निचले सिरे के पास कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्था में स्थित है। जब साधक प्राणायाम करता है तो प्राण के आघात से सुप्त कुण्डलिनी जाग्रत होती है तथा ब्रह्मनाड़ी में गमन कर जाती है जिससे साधक में अनेकानेक विशिष्टताएँ आ जाती हैं। यह प्रक्रिया इस योग पद्धति में मुख्य है। इसलिए इसे हठयोग कहा गया है। यही पद्धति आज आसन, प्राणायाम, षट्कर्म, मुद्रा आदि के अभ्यास के कारण सर्वाधिक लोकप्रिय हो रही है। महर्षि पतंजलि के मनोनिग्रह के साधन रूप में इस पद्धति का प्रयोग अनिवार्यतः उपयोगी बताया गया है।

हठ प्रदीपिका में स्वामी स्वात्माराम ने हठयोग को परिभाषित करते हुए कहा है कि हठपूर्वक मोक्ष का भेद हठयोग से किया जा सकता है।

उद्घाटयेत् कपाटं तु तथा कुचिंकया हठात्।

कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत् ह0प्र0 3/101

अर्थात जिस प्रकार चाभी से हठात किवाड़ को खोलते है उसी प्रकार योगी कुण्डलिनी के द्वार (हठात्) मोक्ष द्वार का भेदन करते है।

10.5 हठयोग का उद्देश्य

हठ प्रदीपिकाकार स्वात्मारामयोगी द्वारा यह घोषणा कर दी गई है कि 'केवल राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते' अर्थात् केवल राजयोग की साधना के लिए ही हठविद्या का उपदेश करता हूँ। हठप्रदीपिका में अन्यत्र भी कहा है कि आसन, प्राणायाम, मुद्राएँ आदि राजयोग की साधना तक पहुँचाने के लिए हैं-

पीठानि कुम्भकाश्चित्रा दिव्यानि करणानि च।

सर्वाण्यपि हठाभ्यासे राजयोग फलावधिः।। ह०प्र० 1/67

यह हठयोग भवताप से तप्त लोगों के लिए आश्रयस्थल के रूप में है तथा सभी योगाभ्यासियों के लिए आधार है-

अशेषतापतप्तानां समाश्रयमठो हठ:

अशेषयोगयुक्तानामाधारकमठो हठः।। ह०प्र० 1/10

इसका अभ्यास करने के पश्चात् अन्य योगप्रविधियों में सहज रूप से सफलता प्राप्त की जा सकती है। कहा गया है कि यह हठविद्या गोपनीय है और प्रकट करने पर इसकी शक्ति क्षीण हो जाती है-

हठविद्यां परं गोप्या योगिनां सिद्धिमिच्छताम्।

भवेद् वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या तु प्रकाशिता।। ह०प्र० 1/11

इसलिए इस विद्या का अभ्यास एकान्त में करना चाहिए जिससे अधिकारी- जिज्ञासु तथा साधकों के अतिरिक्त सामान्य जन इसकी क्रियाविधि को देखकर स्वयं अभ्यास करके हानिग्रस्त न हों। साथ ही अनधिकारी जन इसका उपहास न कर सकें। प्रिय पाठको स्मरण रहे कि -

जिस काल में हठप्रदीपिका की रचना हुई थी, वह काल योग के प्रचार-प्रसार का नहीं था। तब साधक ही योगाभ्यास करते थे। सामान्यजन योगाभ्यास को केवल ईश्वरप्राप्ति के उद्देश्य से की जाने वाली साधना के रूप में जानते थे। आज स्थिति बदल गई है। योगाभ्यास जन-जन तक पहुँच गया है तथा प्रचार-प्रसार दिनों-दिन प्रगति पर है। लोग इसकी महत्ता को समझ गए हैं तथा जीवन में ढालने के लिए प्रयत्नशील हो रहे हैं।

हठयोग के उद्देश्य के दृष्टिकोण से विचार करने पर हम देखते हैं कि 'राजयोग साधना की तैयारी के लिए तो हठयोग उपयोगी है ही', इस मुख्य उद्देश्य के साथ अन्य अवान्तर उद्देश्य भी कहे जा सकते हैं जैसे- स्वास्थ्य का संरक्षण, रोग से मुक्ति, सुप्त चेतना की जागृति, व्यक्तित्व विकास, जीविकोपार्जन तथा आध्यात्मिक उन्नति। इनकी विस्तृत विवेचना इस प्रकार है।

10.5.1 स्वास्थ्य का संरक्षण- शरीर स्वस्थ रहे। रोगग्रस्त न हो। इसके लिए भी हम हठयौगिक अभ्यासों का आश्रय ले सकते हैं। 'आसनेन भवेद् दृढम्', 'षट्कर्मणा शोधनम्' आदि कहकर आसनों के द्वारा मजबूत शरीर तथा षट्कर्मों के द्वारा शुद्धि करने पर दोषों के सम हो जाने से व्यक्ति सदा स्वस्थ बना रहता है। विभिन्न आसनों के अभ्यास से शरीर की मांसपेशियों को मजबूत बनाया जा सकता है तथा प्राणिक ऊर्जा के संरक्षण से जीवनी शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। शरीर में गति देने से सभी अंग-प्रत्यंग चुस्त बने रहते हैं तथा शारीरिक कार्यक्षमता में वृद्धि होती है जिससे शरीर स्वस्थ रहता है। अत: हम कह सकते है कि स्वास्थ्य संरक्षण में हठयोग का महत्वपूर्ण स्थान है।

10.5.2 रोग से मुक्ति- अब इन हठयोग के अभ्यासों को रोग-निवारण के लिए भी प्रयुक्त किया जा रहा है। कहा भी है-

'आसनेन रुजो हन्ति'। (घेरण्ड संहिता)

'कुर्यात् तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्'। ह०प्र० 1/17

विभिन्न आसनों का शरीर के विभिन्न अंगों पर जो प्रभाव पड़ता है, उससे तत्सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। जैसे मत्स्येन्द्रासन का प्रभाव पेट पर अत्यधिक पड़ता है तो उदरविकारों में लाभदायक है। जठराग्नि प्रदीप्त होने के कारण कब्ज, अपच, मन्दाग्नि आदि रोग दूर होते हैं-

मत्स्येन्द्रपीठं जठरप्रदीप्तिं प्रचण्डरुग्मण्डलखण्डनास्त्रम्।

अभ्यासतः कुण्डलिनी प्रबोधं चन्द्रस्थिरत्वं च ददाति पुंसाम्।।1/27 (हठ प्रदीपिका)

इसी प्रकार षट्कर्मों का प्रयोग करके रोगनिवारण किया जा सकता है। जैसे धौति के द्वारा कास, श्वास, प्लीहा सम्बन्धी रोग, कुष्ठ रोग, कफदोष आदि नष्ट होते हैं-

कास श्वास प्लीहा कुष्ठं कफरोगाँश्च विंशतिः।

धौतिकर्मप्रभावेन प्रयान्त्येव न संशयः।। ह०प्र० 2/25

नेति के द्वारा दृष्टि तेज होती है, दिव्य (सूक्ष्म) दृष्टि प्रदान करती है और स्कन्ध प्रदेश से ऊपर होने वाले रोगसमूहों को शीघ्र नष्ट करती है।

कपालशोधिनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी।

जत्रूर्ध्वजातरोगोघं नेतिराशु निहन्ति च।। ह०प्र० 2/31

आधुनिक वैज्ञानिक युग में यद्यपि आयुर्विज्ञान की नई वैज्ञानिक खोज हो रही है। फिर भी अनेक रोग जैसे- मानसिक तनाव, मधुमेह, प्रमेह, उच्च रक्तचाप, निम्न रक्तचाप, साइटिका, कमरदर्द, सर्वाइकल स्पोंडोलाइटिस, आमवात, मोटापा, अर्श आदि अनेक रोगों को योगाभ्यास द्वारा दूर किया जा रहा है।

10.5.3 सुप्त चेतना की जागृति - हठयोग के अभ्यास शरीर को वश में करने का उत्तम उपाय हैं। जब शरीर स्थिर और मजबूत हो जाता है तो प्राणायाम द्वारा श्वास को नियंत्रित किया जा सकता है। प्राण नियंत्रित होने पर मूलाधार में स्थित शक्ति

को ऊर्ध्वगामी कर सकते हैं। प्राण के नियंत्रण से मन भी नियंत्रित हो जाता है। अतः मनोनिग्रह तथा प्राणापान-संयोग से शक्ति जाग्रत होकर ब्रह्मनाड़ी में गति कर जाती है जिससे साधक को अनेक योग्यताएँ स्वतः प्राप्त हो जाती हैं। अत: हम कह सकते है कि हठयोग के अभ्यास से सुप्त चेतना की जागृति होती है।

10.5.4 व्यक्तित्व विकास- साधक इन अभ्यासों को अपनाकर निज व्यक्तित्व का विकास करने में समर्थ होता है। उसमें मानवीय गुण स्वतः आ जाते हैं। शरीर गठीला, निरोग, चुस्त, कांतियुक्त तथा गुणों से पूर्ण होकर व्यक्तित्व का निर्माण करता है। ऐसे गुणों को धारण करके उसकी वाणी में मृदुता, आचरण में पवित्रता, व्यवहार में सादगी, स्नेह, आदि का समावेश हो जाता है।

10.5.5 जीविकोपार्जन - देश ही नहीं, विदेश में भी आज योगाभ्यास जीविकोपार्जन का एक सशक्त माध्यम बन गया है। देश में ही अनेक योग प्रशिक्षण केन्द्र, चिकित्सालय, विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय योग के प्रचार-प्रसार में लगे हैं। रोगोपचार के लिए व्यक्तिगत रूप से लोग योग प्रशिक्षक को बुलाकर चिकित्सा ले रहे हैं तथा स्वास्थ्य-संरक्षण हेतु प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। विदेश में तो भारत से भी अधिक जागरूकता है। अतः जीविकोपार्जन के लिए भी इसे अपनाया जा रहा है।

10.5.6 आध्यात्मिक उन्नति- कुछ लोग वास्तव में जिज्ञासु हैं जो योग द्वारा साधना में सफल होकर साक्षात्कार करना चाहते हैं। उनके लिए तो योग है ही। साधक साधना के लिए आसन-प्राणायामादि का अभ्यास करके दृढ़ता तथा स्थिरता प्राप्त करके ध्यान के लिए तैयार हो जाता है। ध्यान के अभ्यास से समाधि तथा साक्षात्कार की अवस्था तक पहुँचा जा सकता है। अतः आध्यात्मिक उन्नति हेतु भी हठयोग एक साधन है। गुह्य समाजतंत्र में कहा गया है कि यदि ज्ञानप्राप्ति (बोध) न हो तो हठयोग का अभ्यास करें-

'यदा न सिद्धयते बोधिर्हठयोगेन साधयेत्'

अर्थात् पूर्व में बताई गई विधि से यदि बोधिप्राप्त न हो तो हठयोग का आश्रय लेना चाहिए। राजयोग साधना का आधार होने के कारण इसे भी राजयोग के समकक्ष स्थान प्राप्त है। अत: हम कह सकते है कि आध्यात्मिक उन्नति का राजयोग महत्वपूर्ण सौपान है।

10.6 हठयोग की उपयोगिता

हठयोग साधना अनादिकाल से गुरुशिष्य परम्परा से चली आ रही है। यह एक ऐसी साधना पद्धति है, जिससे अध्यात्म की उच्चावस्था को तो प्राप्त किया ही जा सकता है, साथ ही साथ शरीर, प्राण, मन व इन्द्रियों को भी सबल व स्वस्थ बनाया जा सकता है, क्योंकि बिना स्वस्थ शरीर व मन के आत्मलाभ प्राप्त करना असम्भव है। इसलिए हठयोग साधना में शरीर व मन को स्वस्थ बनाने पर विशेष बल दिया गया है। यह साधना शरीर और उसकी नाड़ियों की शुद्धि और स्वास्थ्य की रक्षा करती है।

योग साधना के विभिन्न प्रकारों में केवल हठयोग साधना में ही विभिन्न रोगों की यौगिक चिकित्सा का वर्णन प्राप्त होता है। इसलिए इसको योग की चिकित्सा पद्धति भी कहा जा सकता है। आज हमारी दिनचर्या पूर्णतया अव्यवस्थित हो गयी है जिससे प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी शारीरिक या मानसिक रोग से ग्रस्त होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में हठयोग के अभ्यास को जीवनचर्या का अंग बनाकर हम स्वस्थ रह सकते हैं।

हठयोग के ग्रंथों में हठयोग साधना के सात अंग वर्णित किये गये हैं- षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान व समाधि। इन अंगों की साधना करते हुए साधक जब समाधि की अवस्था में पहुँचता है तो यह साधना हठयोग की साधना कहलाती है। इसी के साथ-साथ यम-नियम का पालन तथा यौगिक आहार भी हठयोग का महत्वपूर्ण अंग है। विभिन्न रोगों में विभिन्न षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्राणायाम व ध्यान का अभ्यास रोगी को करवाया जाता है, उसके आहार को व्यवस्थित किया जाता है जिससे उसका रोग दूर होकर वह स्वस्थ हो जाता है। अगर आधुनिक जीवन में हठयोग की उपयोगिता को देखें तो इन्हीं अंगों के माध्यम से आज विश्व में व्याप्त अधिकतर रोगों की चिकित्सा की जा सकती है।

षट्कर्म शरीर की शोधन क्रियाएं हैं] जो शरीरस्थ विषाक्त तत्वों को बाहर निकालने तथा वात-पित्त-कफ तीनों दोषों को आवश्यक अनुपात में बनाये रखने में सहायक होती है। षट्कर्म की क्रियाओं में धौति, बस्ति, नेति, नौलि, त्राटक व कपालभाति आते हैं। धौतिक्रिया पाचन संस्थान का शोधन करती है। श्वासरोग, कफरोग, रक्तविकार, चर्मरोग, एलर्जी, मोटापा, अम्लपित्त, गैस, कब्ज, अग्निमांद्य आदि रोगों में यह क्रिया विशेष रूप से लाभकारी होती है। बस्तिक्रिया मलाशय व बड़ी आंत का शोधन करती है। इससे गुल्म, प्लीहा, जलोदर, अग्निमांद्य, कब्ज, वातरोग आदि विकार दूर होते हैं। नेतिक्रिया नासिका मार्ग की सफाई करती है। इससे कपाल का शोधन होता है, नेत्र रोग, नजला, जुकाम, एलर्जी, श्वास-प्रश्वास में कठिनाई, नासांकुरवृद्धि, स्मरण शक्ति का ह्रास आदि रोगों में यह क्रिया लाभकारी होती है। नौलिक्रिया उदरस्थ पेशियों व आंतों को स्वस्थ बनाने की क्रिया है। यह पाचन संस्थान व प्रजनन संस्थान के लिए उपयोगी अभ्यास है। यह महिलाओं के मासिकधर्म सम्बन्धी विकार तथा जननांगों की दुर्बलता दूर करने में भी सहायक है। त्राटककर्म नेत्रशोधन की क्रिया है। जो नेत्र रोगों का नाश करके तन्द्रा व आलस्य को दूर करने में सहायक है। इसके अभ्यास से एकाग्रता बढ़ती है। कपालभाति फेफड़ों को स्वस्थ बनाने की प्रक्रिया है। जिससे कफरोग, श्वासरोग, चर्मरोग, रक्तविकार आदि दूर होते हैं। मधुमेह में भी इसका अभ्यास उपयोगी है।

इस प्रकार षट्कर्म की क्रियाएँ अनेक रोगों में लाभकारी हैं। अगर इन क्रियाओं का अभ्यास आवश्यकतानुसार मनुष्य करता रहे तो स्वस्थ रह सकता है।

आसन भी हठयोग साधना में प्रमुखता से वर्णित किये गये हैं। स्थिरता से सुखपूर्वक अधिक समय तक बैठने की स्थिति को आसन कहा गया है। घेरण्डसंहिता में इनकी संख्या चौरासी लाख योनियों के कारण 84 लाख तक बतायी गयी है, लेकिन उसमें शरीर को स्वस्थ बनाने की दृष्टि से 32 आसनों का उल्लेख विस्तार से किया गया है। आसन शरीर में स्थिरता, दृढ़ता, आरोग्यता व लघुता प्रदान करते हैं। ये आसन तीन प्रकार के होते हैं- शरीरसंवर्धनात्मक आसन, विश्रामात्मक आसन और ध्यानात्मक आसन। शरीर को स्वस्थ व लचीला बनाने में आसन मुख्य भूमिका निभाते हैं। क्योंकि आसन हमारे समस्त संस्थानों, अन्तः स्रावी ग्रन्थियों व नाड़ियों पर अनुकूल प्रभाव डालकर उनको स्वस्थ बनाने में सहायक होते हैं। आसन अनेक रोगों का नाश करने में सक्षम हैं। विभिन्न आसनों के विभिन्न लाभ होते हैं। अगर व्यक्ति निरन्तर अभ्यास करता रहे तो वह निरोग बना रह सकता है।

मुद्रा व बन्ध भी हठयोग का प्रमुख अंग हैं। घेरण्डसंहिता में इनकी संख्या 25 बतायी गयी है। ये मुद्राएँ शरीरस्थ सूक्ष्म ऊर्जा के केन्द्रों को जाग्रत कर व्यक्ति को ऊर्जावान, प्राणवान् बनाने में सहायक होती हैं। निरन्तर मुद्राओं का अभ्यास शरीर व मन को निरोग बनाने में लाभकारी होता है।

प्रत्याहार की साधना व्यक्ति को अन्तर्मुखी बनाती है। इन्द्रियाँ बहिर्मुखता को त्यागकर अन्तर्मुखी होने लगती हैं जिससे व्यक्ति दुःख, सुख व शोक से निवृत होकर आनन्द की अवस्था में रहता है। इसका अभ्यास किया जाए तो व्यक्ति काम, क्रोध, मोह, राग, द्वेष आदि कालुष्यों से दूर होकर प्रसन्न रह सकता है।

प्राणायाम शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए महत्वपूर्ण तत्व है। प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है- प्राण और आयाम, प्राण ऊर्जा है, शक्ति है, जो हमारे शरीर को धारण किए हुए है और शरीर को संचालित करती है। आयाम है उस शक्ति का विस्तार। अतः प्राणायाम से हम अपनी शक्ति का विस्तार कर शरीर को स्वस्थ व निरोग बनाते हैं। हठयोग में प्राणायाम के आठ भेद बताये गये हैं। विभिन्न प्रकार के प्राणायाम विभिन्न रोगों में लाभकारी होते हैं। प्राणायाम केवल शरीर को ही स्वस्थ नहीं बनाते, अपितु मन की चंचलता को रोकने का भी प्रमुख उपाय हैं। इन्द्रियों के दोष भी प्राणायाम के अभ्यास से दूर हो जाते हैं। प्राणायाम समस्त नाड़ियों का शोधन करके शरीर को हल्का बना देता है। मानसिक रोग जैसे तनाव, अवसाद, दबाव आदि को दूरकर उत्साह, उमंग, उल्लास व प्रसन्नता का संचार मन में करने में सहायक है। इस प्रकार यदि हम आवश्यक प्राणायामों का समावेश दिनचर्या में कर लें तो हम शरीरस्थ समस्त प्राणों को बलिष्ठ व पुष्ट बनाकर स्वस्थ रह सकते हैं।

हठयोग साधना का छठा अंग ध्यान है। ध्यान अन्तःकरण की साधना है। जब एक ही वृत्ति पर चित्त का निरन्तर प्रवाह बना रहे, वह अवस्था ध्यान कहलाती है। ध्यान के द्वारा मनुष्य अपने मन की शक्ति का विस्तार कर मानसिक व भावनात्मक विकारों को दूर कर सकते हैं। स्मरणशक्ति, धैर्य व बुद्धि का विकास ध्यान के अभ्यास से किया जा सकता है। यही नहीं ध्यान का अभ्यास करने वाला साधक अपने जीवन में प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है। उसकी सड़ी-गली मानसिकता व नकारात्मक विचारधारा परिवर्तित होकर दिव्य भावों व विचारों में बदल सकती है।

हठयोग साधना का अन्तिम अंग समाधि है। जब ध्यान की प्रगाढ़ता बढ़ती जाती है तो साधक का स्वरूप शून्य होने के पश्चात् साधक के संस्कारों का नाश होने लगता है। व्यवहार में उसकी समस्त शंकाओं का समाधान स्वतः होने लगता है। साधक में समता का भाव आ जाता है और विपरीत परिस्थिति आने पर भी वह विचलित नहीं होता। समाधि का निरन्तर अभ्यास करना राजयोग की साधना कहलाती है, जिसकी अन्तिम परिणति कैवल्य है।

इस प्रकार आधुनिक जीवन में समस्त क्रियाकलाप करते हुए अगर अपनी दिनचर्या में हठयोग साधना का समावेश योग्य गुरु के दिशानिर्देश के माध्यम से किया जाए तो हमारा शरीर लचीला होकर बलिष्ठ व पुष्ट हो सकता है तथा व्यक्ति शारीरिक, भावनात्मक व व्यावहारिक रूप से स्वस्थ होकर प्रसन्नता व आनन्द के साथ जीवन व्यतीत कर सकता है। इसके साथ-साथ वह समाज के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा।

हम देखते हैं कि हठयोग को अपनाकर मनुष्य भागदौड़ के जीवन में बिना औषधि स्वस्थ रह सकता है। संसार में विपरीत परिस्थितियों में भी तनावपूर्ण स्थिति से बच सकता है। यही नहीं स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन का स्वामी होकर वह अपने जीवन के चरम लक्ष्य कैवल्य या मोक्ष की प्राप्ति भी कर सकता है।

10.7 हठ सिद्धि के लक्षण

हठयोग शारीरिक दृढता और निरोगता प्रदान करने वाला है। शोधन करके शरीर के मलों का नाश होने से निर्मलता प्रदान करता है। मेक्षोवृद्धिहर तथा शरीर में स्फूर्ति देने वाला है। प्राणशक्ति नियंत्रित होती है जिससे आयु में वृद्धि होती है। इसके आचरणीय सप्तसाधनों के द्वारा शुद्धि, दृढ़ता व निरोगता, स्थिरता, धीरता व लघुता आने से शरीर वज्र की तरह मजबूत, बलशाली व कांतियुक्त हो जाता है। हठ प्रदीपिका में हठयोगसिद्ध पुरूष के लक्षण कहे गये हैं-

वपुः कृशत्वं वदने प्रसन्नता

नादःस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले।

अरोगता बिन्दुजयोऽग्निदीपनं

नाड़ीविशुद्धिर्हठसिद्धि लक्षणम्।। ह०प्र० 2/78

अर्थात् हठयोगी का शरीर पतला किन्तु मुखमण्डल पर प्रसन्नता और आभा आ जाती है। नाद सुनाई पड़ने लगते हैं तथा आवाज स्पष्ट हो जाती है। नेत्र निर्मल हो जाते हैं, दृष्टि में तेजस्विता आ जाती है। शरीर व मन सम्बन्धी कोई विकृति नहीं होती। वीर्य ऊर्ध्वगामी होने से बल का संचय व शरीर दृढ़ हो जाता है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। अन्नादि का ठीक तरह पाचन होने से सब धातुएँ – रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा व शुक्र ठीक अनुपात में बनती है जिससे योगी स्वस्थ रहता है। नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती है जिससे सुषुम्ना में प्राणागमन होकर कुण्डलिनी प्रबोध होता है। एकाग्रता तथा ध्यान में सफलता से साधना की पराकाष्ठा पर पहुँचने के कारण साधक आध्यात्मिक उन्नति भी प्राप्त कर लेता है। ऐसा हठयोगी अपने कल्याण के साथ-साथ संसार का भी कल्याण करता है।

अभ्यास प्रश्न :-

1. सत्य एवं असत्य बताइये।

(क) 'हं' का अर्थ चन्द्र नाडी से है।

(ख) हकार व ठकार का योग हठयोग कहलाता है।

(ग) हठप्रदीपिका हठयोग का ग्रन्थ है।

(घ) कुण्डलिनी शक्ति सुप्त अवस्था में पड़ी रहती है।

(ड.) हठयोग का उद्देश्य राजयोग की प्राप्ति नहीं है।

(च) हठविद्या को प्रकट करने पर इसकी शक्ति क्षीण हो जाती है।

(छ) हठसिद्धि होने पर मुखमण्डल में प्रसन्नता और आभा आ जाती है।

10.8 सारांश

सूर्य स्वर तथा चन्द्र स्वर का मिलन ही हठयोग है। हठयोग के अभ्यास भले ही दिखने में कितने ही कठिन क्यो न हो पर उचित मार्गदर्शन में करने पर इन अभ्यासों को बड़ी सरलता व सहजता के साथ किया जा सकता है। वास्तव में हठयोग की उपयोगिता भले ही स्वास्थ्य संरक्षण, रोगों से मुक्ति, व्यक्त्वि निर्माण, जीविकोपार्जन की रही हो पर इसके आध्यात्मिक लाभों को भी नहीं नकारा जा सकता है। स्वामी स्वात्माराम जी ने हठप्रदीपिका में प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर कहा कि (केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते) केवल राजयोग की प्राप्ति के लिए हठयोग का उपदेश करते है। अत: हम कह सकते है कि हठ योग की सिद्धि होने पर प्रारम्भ में शरीर पतला, मुखमण्डल पर प्रसन्नता और आभा आ जाती है। नाव सुनाई देते है तथा योगी की आवाज स्पष्ट हो जाती है। नेत्र निर्मल हो जाते है, दृष्टि में तेज आ जाता है शरीर और मन में कोई विकृति नहीं होती। जठराग्नि की प्रदीप्ति तथा नाडियों की विशुद्धता हो जाती है और अन्त में साधक अपने अभीष्ठ की प्राप्ति करता है। ये ही योग का चरम लक्ष्य है।

10.9 शब्दावली

हठ – ह – हकार (सूर्य) (ठ) ठकार (चन्द्र)

पिगंला – एक नाडी जो सूर्य स्वर है।

इड़ा – एक नाडी जो चन्द्र स्वर है।

कुण्डलिनी – एक सुप्तावस्था में पडी शक्ति

गमन – चलना, जाना

ताप – दु:ख, परेशानी

उर्ध्वगामी – ऊपर की ओर

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) असत्य (ख) सत्य (ग) सत्य (घ) सत्य (ड.) असत्य (च) सत्य (छ) सत्य

10.11 सन्दर्भ गन्थ सूची

स्वामी स्वात्मारामकृत - दिगम्बर स्वामी, हठप्रदीपिका (2001) कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति लोनावाला

10.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. हठयोग के अर्थ को स्पष्ट करते हुए हठसिद्धि के लक्षण बताइये।

2. हठयोग क्या है इसके उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।

3. वर्तमान समय में हठयोग की उपयोगिता की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।

4. हठयोग राजयोग की प्राप्ति का साधन है इस कथन की तर्क सहित व्याख्या कीजिए।

इकाई 11- षट्कर्म का अर्थ परिभाषाये, उद्देश्य एवं उपयोगिता, हठप्रदीपिका के अनुसार षटकर्मो की व्याख्या

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 षटकर्म का अर्थ एवं परिभाषायें

11.4 षटकर्मो का उद्देश्य

11.5 षटकर्मो की उपयोगिता

11.6 हठ प्रदीपिका के अनुसार षटकर्मो की व्याख्या

- 11.6.1 धौति
- 11.6.2 वस्ति
- 11.6.3 नेति
- 11.6.4 त्राटक
- 11.6.5 नौलि
- 11.6.6 कपाल भॉति

11.7 सांराश

11.8 शब्दावली

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

शरीर की शुद्धि के लिए हठयोग के ग्रन्थों में षटकर्मो की चर्चा की है। पिछले अध्याय में आपने हठयोग के अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य व उपयोगिता का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप षटकर्म के अर्थ, परिभाषा व उद्देश्य के साथ-साथ विविध षटकर्मो का विस्तार से अध्ययन करेंगे। ध्यान रहे प्रस्तुत षटकर्मो का वर्णन यहाँ पर आपको मात्र अध्ययन की दृष्टि से बताया जा रहा है इन अभ्यासों को एक उचित मार्गदर्शन में करना उपयोगी होगा क्योंकि अभ्यासों को उचित मार्गदर्शन में नहीं करने पर शरीर पर दुष्प्रभाव भी पड़ सकता है।

11.2 प्रस्तुत इकाई में

- षटकर्म के अर्थ व परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे।
- आप यह जान सकेंगे की षटकर्मो के क्या उद्देश्य है।
- षटकर्मो की उपयोगिता का अध्ययन करेंगे।
- हठप्रदीपिका में वर्णित षटकर्मो का अध्ययन करेंगे।

11.3 षटकर्मो का अर्थ एवं परिभाषायें

'षट्कर्म शब्द में दो शब्दों का मेल है- षट्$कर्म। षट् का अर्थ है- छह तथा कर्म का अर्थ है- क्रिया। छह क्रियाओं के समुदाय को षट्कर्म कहा जाता है। यहाँ छह क्रियाएँ योग में शरीर शोधन हेतु प्रयोग में लाई जाती है। इसलिए यह षट्कर्म शब्द अब प्राचीन होकर शोधन की छह क्रियाओं के अर्थ में 'शोधन क्रियाओं' का द्योतक है। ये शोधन क्रियाएँ – धौति] वस्ति] नेति] त्राटक, नौलि व कपाल भाति है। जैसे आयुर्वेद में पंचकर्म चिकित्सा को शोधन चिकित्सा के रूप में स्थान प्राप्त है। उसी प्रकार षट्कर्म को योग में शोधनकर्म के रूप में जाना जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा में भी पंचतत्वों के माध्यम से शोधन क्रिया ही की जाती है।

शरीर (घट) शुद्धि के लिए इनका प्रयोग करने का निर्देश योगी स्वात्माराम द्वारा दिया गया है-

कर्म षटकमिदं गोप्यं घटशोधनकारकम्।

विचित्रगुणसंधायि पूज्यते योगिपुंगवैः।। ह०प्र० 2/23

शरीर की शुद्धि के पश्चात् ही साधक आन्तरिक मलों की निवृत्ति करने में सफल होता है। प्राणायाम से पूर्व इनकी आवश्यकता इसलिए भी कही गई है कि मल से पूरित नाड़ियों में प्राण-संचरण न होने के कारण साधना में सफलता होना सम्भव नहीं है-

मलाकुलासुनाडीषु मारुतो नैव मध्यगः।

कथं स्यादुन्मनीभावः कार्यसिद्धिकथं भवेत्।। ह०प्र० 2/4

जब नाड़ीशुद्धि हो जाती है तो प्राणायाम करने में योगी समर्थ हो जाता है-

शुद्धिमेति यदा सर्वं नाडीचक्रं मलाकुलम्।

तदैव जायते योगी प्राण संग्रहणे क्षमः॥ ह०प्र० 2@5

इसलिए-

मेदः श्लेष्माधिकः पूर्वं षट्कर्माणि समाचरेत्।

अन्यस्तु नाचरेत्तानि दोषाणां समभावतः॥ ह०प्र० 2@21

अर्थात् स्थूल तथा श्लेष्माधिक्य वाले साधकों को षट्कर्मों का अभ्यास करके शरीर को कृश (कमजोर) कर लेना उपयुक्त है। अन्य साधकों (जिनके त्रिदोष साम्यावस्था में है) को करने की आवश्यकता नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि जो लोग स्थूलकाय तथा श्लेष्माधिक्य वाले है, उनको इन शोधन क्रियाओं की नितान्त आवश्यकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि षट्कर्म- वे छह शोधन क्रियाएं है, जिसकी स्थूल तथा श्लेष्माधिक्य वाले साधकों को त्रिदोषों को साम्यावस्था में लाने के लिए नितान्त आवश्यकता है तथा जिनका प्रयोग करके शरीर को निरोग रखा जा सकता है। अत: संक्षेप में कह सकते है कि आन्तरिक मलों की शुद्धि तथा नाड़ी शुद्धि के लिए जो उपाय किये जाते है हठयोग में उन्हें षटकर्मो के नाम से जाना जाता है।

शरीर शोधन के लिए जो षट्कर्म गोपनीय बताए हैं, उनका वर्णन करते हुए हठयोगप्रदीपिका में कहा गया है-

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।

कपालभातिश्चैतानि षटकर्माणि प्रचक्षते॥ ह०प्र० 2/22

अर्थात् धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि और कपालभाति ये छह कर्म हैं जिनके द्वारा शरीर की शुद्धि होती है।

हठयोगप्रदीपिका में इनके अतिरिक्त गजकरणी का भी वर्णन किया है। परन्तु भक्तिसागर के रचयिता स्वामी चरणदास जी ने नेति, धौति, बस्ति, गजकर्म, नौलि और त्राटक को षट्कर्म के अन्तर्गत रखा है। इसके बाद कपालभाति, धौंकनी, बाधी और शंखपषाल (शंख प्रक्षालन) इन चार कर्मों का नाम लेकर उन्हें षट्कर्म के अतिरिक्त माना है। धौकनी, बाधी, शंखप्रक्षालन तो धौति व कपालभाति के भेद हैं। अतः मूलतः उन्होंने षट्कर्मों को ही माना है।

11.4 षटकर्मो का उद्देश्य

इस समस्त चराचर जगत् का उपादान कारण प्रकृति त्रिगुणात्मक होने से प्राणिमात्र के शरीर वात, पित्त और कफ इन त्रिधातुओं के विभिन्न प्रकार के रूपान्तरों के सम्मिश्रण से बने हैं। इसीलिए किसी का शरीर वातप्रधान है, किसी का शरीर पित्तप्रधान और किसी का शरीर कफप्रधान होता है। वातप्रधान शरीर आहार-विहार के दोष से तथा देश कालादि के कारण वात कुपित हो जाता है। इसी कारण पित्तप्रधान शरीर में पित्त और कफ प्रधान शरीर में कफ प्रधान हो जाता है। इनके दूषित होने पर मेद, श्लेष्मा, पित्त, वात आदि का शरीर में संग्रह हो जाता है, जिसके कुपित होने पर शरीर में विभिन्न प्रकार के

रोग उत्पन्न हो जाते हैं। फलस्वरूप साधक साधना में संलग्न नहीं रह पाता क्योंकि स्वस्थ शरीर के अभाव में आध्यात्मिक लाभ भी प्राप्त नहीं होता। उपनिषदों में भी कहा है-

''नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः''

अर्थात् बलहीन शरीर से आत्म साक्षात्कार सम्भव नहीं है। इसलिए शरीर में व्याधियों को उत्पन्न न होने देने और यदि व्याधि उत्पन्न हो गयी हो तो उसे दूर करने के लिए तथा शरीर को स्वस्थ व साधनायोग्य बनाने के लिए हठयोगियों ने षट्कर्मों का विधान किया है। यद्यपि महर्षि पतंजलि ने योगशास्त्र में इनको शौच के अन्तर्गत रखा है। परन्तु समय और अनुभव ने हठयोगियों को सिखाया कि प्राणायाम आदि क्रियाओं से जितने समय में शरीर के मल दूर किये जाते हैं, उससे कम समय में षट्कर्मों द्वारा शरीर के मल दूर किये जा सकते हैं। इसलिए इन कर्मों की आवश्यकता को अनुभव करते हुए इनका विकास किया गया। इन षट्कर्मों का विधान इस प्रकार किया गया कि ये सम्पूर्ण शरीर की शुद्धि करने में समर्थ हो सके।

हठयोग व योग के अन्य ग्रन्थों में तथा योगेतर सभी आध्यात्मिक ग्रन्थों में प्राणायाम के महत्व को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया गया है। हठयोगप्रदीपिका में प्राणायाम को मन को स्थिर करने वाला माना है। मनुस्मृति में इन्द्रियों के सभी दोषों को दूर करने के लिए प्राणायाम का निर्देश किया गया है। योगवशिष्ट में प्राणायाम को राज्य से मोक्ष तक की सम्पदायें प्रदान करने वाला बताया गया हैं। प्राणायाम के ये सभी लाभ तभी प्राप्त हो सकते हैं, जब प्राणायाम सिद्ध कर लिया गया हो और प्राण शरीरगत सूक्ष्म से सूक्ष्म नाड़ियों में संचरण करने लगे। वह तभी सम्भव है, जब शरीर की स्थूल व सूक्ष्म नाड़ियाँ मलों से रहित हो गयी हों अन्यथा प्राणायाम बहुत समय में सिद्ध होगा तथा शरीर में विकार उत्पन्न हो सकते हैं। इसीलिए हठयोग के ग्रंथों में प्राणायाम साधना से पूर्व षट्कर्मों के अभ्यास का विधान किया है जिससे शरीर मलों से रहित हो सके और प्राणायाम का पूरा लाभ प्राप्त किया जा सके।

स्वामी चरणदास जी भी पहले षट्कर्म करने के ही पक्ष में हैं। वे कहते हैं-

पहले ये सब साधिये, काया होवे शुद्धि।

रोग न लागे देह को, उज्ज्वल होवे बुद्धि।। भक्तिसागर

अर्थात् साधना में प्रथम षट्कर्मों का अभ्यास करना चाहिए क्योंकि इनके करने से शरीर शुद्ध हो जाता है। शरीर में कोई रोग नहीं रह पाता अर्थात् शरीर निरोग हो जाता है तथा बुद्धि भी प्रकाशमान् हो जाती है जिससे यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है।

इस योग साधना में षट्कर्मों का उद्देश्य यही है कि इनके द्वारा शरीर को स्वस्थ बनाएँ जिनसे साधना के अन्य अंगों का भी पूरा लाभ प्राप्त किया जा सके और साधनारत रहकर अपने चरमलक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

11.5 षट्कर्मों की उपयोगिता

मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से षट्कर्मों की अत्यधिक उपयोगिता है। षट्कर्मों के द्वारा शरीर के मलों व विषाक्त तत्वों को दूर किया जाता है। षट्कर्म शरीर की चपापचय क्रिया को नियन्त्रित व सुव्यवस्थित करते हैं। ये क्रियायें शरीर का कायाकल्प कर उसे रोगमुक्त, दीर्घायु व स्वस्थ करती हैं। हठयोग में वर्णित षट्कर्मों के अभ्यास से दीर्घकाल तक युवावस्था

को बनाया रखा जा सकता है। इनके अभ्यास से नाक, कान, आँख, गले, फेफड़े, आमाशय व पूरी आहार नाल से सम्बन्धित रोगों को तो प्रत्यक्ष रूप से ही ठीक किया जा सकता है, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से ये समस्त शरीर को प्रभावित करते हैं और उसे निरोग बनाते हैं। हठयोग के ग्रन्थों में इनकी उपयोगिता बताते हुए कहा गया है कि षट्कर्मों के अभ्यास से कफ, वात व पित्त रोग, कुष्ठ रोग, प्लीहा, यकृत फेफड़ों तथा उदर के रोग दूर होते हैं।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए तो औषधियों का प्रयोग भी किया जा सकता है। फिर इन कठिन षट्कर्मों का ही अभ्यास क्यों किया जाये अथवा जब योग साधना में भी केवल प्राणायाम को ही सर्वरोगों का नाशक बताया है तो फिर उसी का अभ्यास क्यों न किया जाये चिन्तन करने पर ये दोनों शंकायें निराधार प्रतीत होती है। प्रथम शंका के सम्बन्ध में जब औषधियों पर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि भले ही चिकित्सा पद्धतियों में उपयोगी से उपयोगी औषधियों की खोज कर ली गयी हो किन्तु फिर भी वे शरीर को पूर्ण स्वस्थ रखने में समर्थ नहीं है। अधिकतर औषधियॉ रोगों की चिकित्सा नहीं करती बल्कि उनका शमन करती हैं। रोग कुछ समय के लिए शान्त होता है और पुनः तीव्रवेग के साथ उपस्थित हो जाता है। अधिकतर औषधियों में यह कमी है कि एक रोग को दूर करती हैं तो दूसरी ओर अन्य कई रोगों को उत्पन्न कर देती है। इनके विपरीत यदि षट्कर्मों का अभ्यास किया जाये तो वे शरीर को पूर्ण आरोग्य प्रदान करते हैं। ये शरीर से मलों का निष्कासन कर देते हैं और कोई अन्य विकार उत्पन्न नहीं होने देते। शरीर से मलों की निवृत्ति होते ही आरोग्य प्राप्त हो जाता है।

दूसरी शंका कि जब प्राणायाम सब रोगों को समाप्त कर देता है तो फिर षट्कर्मों का अभ्यास क्यों किया जाये। तो इस पर चिन्तन करने से ज्ञात होता है कि यह कथन सही है कि प्राणायाम सर्वरोगों का नाशक है। किन्तु जितना समय प्राणायाम के द्वारा रोगों को दूर करने में लगता है। उससे बहुत कम समय में षट्कर्मों के द्वारा रोगों को दूर किया जा सकता है। यदि केवल प्राणायाम का ही अभ्यास किया जाये तो रोग कठिनता से दूर होते हैं, जबकि प्राणायाम से पूर्व षट्कर्मों का अभ्यास किया जाए तो रोग आसानी से और शीघ्रता के साथ दूर हो जाते हैं। इसीलिए हठयोग के ग्रन्थों में षट्कर्मों को प्राणायाम से पूर्व करने का विधान किया गया है। पाठको उपनिषदों व वेदों का अगर आप अवलोकन करें तो उपनिषदों व वेदों में कहा गया है- 'जीवेमः शरदः शतम्' अर्थात् हम सौ वर्ष तक जीवित रहें। यह केवल एक विचारधारा ही नहीं, अपितु व्यावहारिक सत्य है। मनुष्य का शरीर यदि विकाररहित रहे तो यह सौ वर्षों से भी अधिक जीवित रह सकता है। भारतीय इतिहास में ऐसे अनेक पुरुष हुए हैं, जिन्होंने कई सौ वर्षों का आरोग्य पूर्ण व सुखपूर्वक जीवन जिया है। हमारे शरीर के तीनों दोष वात, पित्त व कफ शरीर के आधार स्तम्भ है। यदि ये तीनों समान अवस्था में बने रहें तो शरीर स्वस्थ व निरोग बना रहता है। इसके विपरीत इनकी विषमावस्था होने पर शरीर में विभिन्न रोग उत्पन्न हो जाते हैं। आयुर्वेद में वात के कुपित होने से 80 प्रकार के रोग, पित्त के कुपित होने से 40 प्रकार के रोग व कफ के कुपित होने से 20 प्रकार के रोगों का उत्पन्न होना माना गया है। इन सभी प्रकार के रोगों को दूर करने के लिए आयुर्वेद में स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन व वस्ति ये पंच कर्म बताए गए हैं। उसी प्रकार योग में षट्कर्मों का विधान किया गया है।

षट्कर्मों के द्वारा जहाँ शरीर स्वस्थ, निरोग व ओजस्वी बनता है, वहीं दूसरी ओर मन में शान्ति व स्फूर्ति आती है तथा बुद्धि भी निर्मल व तीक्ष्ण हो जाती है। वर्तमान समय में विभिन्न शोध संस्थानों ने यह स्पष्ट किया है कि शोधन क्रिया (षट्कर्म) शरीर व मन दोनों से सम्बन्धित रोगों के उपचार से एक अचूक एवं दिव्य रयासन का कार्य करते हैं। षट्कर्म जहाँ शरीर के आन्तरिक स्थूल अंगों की शुद्धि करते हैं, वहीं इन्द्रियों, मन व बुद्धि जैसे सूक्ष्म करणों को भी मलरहित कर शान्ति प्रदान करते हैं।

षट्कर्मों की उपयोगिता को एक उदाहरण से और स्पष्ट किया जा सकता है। जैसे एक घर की सामान्य सफाई के लिए केवल झाड़ू लगाना पर्याप्त है। लेकिन यदि घर में बहुत पुराना कूड़ा-करकट जमा हो तो उसके लिए कुदाल, खुरपा आदि की आवश्यकता होती है। उनके द्वारा कूड़े-कचरे को खोदकर बाहर निकाल दिया जाता है। तब उसके बाद आसानी से

सफाई हो जाती है। उसी प्रकार यदि शरीर में वात, पित्त, कफ इनमें से कोई एक, अधिक या सब कुपित हो गये हों तो प्रथम षट्कर्मों के द्वारा उन्हें सम अवस्था में लाकर, फिर प्राणायाम के द्वारा शरीर को आसानी से निरोग बनाया जा सकता है।

उपर्युक्त आधार पर हम देखते हैं कि आन्तरिक शुद्धि, आरोग्यता तथा सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए षट्कर्मों की उपयोगिता सिद्ध होती है, वहीं दूसरी ओर षट्कर्म मन व बुद्धि को भी एकाग्र व शान्त करते है और जिज्ञासु साधक के लिए मोक्ष तक का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

षट्कर्मों के फल का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

षट्कर्मनिर्गतस्थौल्यकफ दोषमलादिकः।।

प्राणायामं ततः कुर्यादनायासेन सिद्धयति।। ह०प्र० 2/37

अर्थात् षट्कर्मों के अभ्यास से साधक के शरीर की स्थूलता दूर हो जाती है तथा बीस प्रकार के कफ दोष, दूषित वात, पित्त आदि मल दूर हो जाते हैं जिससे प्राणायाम आदि करने में शीघ्र सफलता मिलती है। इस प्रकार हठयोग में षट्कर्मों का अधिक बहुत महत्व प्रतिपादित किया गया है और सामान्यतः षटकर्म का महत्वपूर्ण फल शुद्धिकरण है और जब शरीर का शुद्धिकरण होता है तब शरीर में कोई विकार नहीं रहते।

11.6 हठ प्रदीपिका के अनुसार षट्कर्मो की व्याख्या

हठयोगप्रदीपिका हठयोग के महत्वपूर्ण ग्रन्थों में से एक हैं। इस ग्रन्थ के रचयिता योगी स्वात्माराम जी हैं। हठयोग प्रदीपिका के द्वितीय अध्याय में षट्कर्मों का वर्णन किया गया है। षट्कर्मों का वर्णन करते हुए वे कहते हैं-

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।

कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते।। ह०प्र० 2/22

अर्थात् धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि और कपालभॉति ये छः कर्म हैं। बुद्धिमान् योगियों ने इन छः कर्मों को योगमार्ग में करने का निर्देश किया है। इन छह कर्मों के अतिरिक्त गजकरणी का भी हठयोगप्रदीपिका में वर्णन किया गया है। वैसे गजकरणी धौतिकर्म के अन्तर्गत ही आ जाती है। इन सबका वर्णन निम्नलिखित है-

11.6.1 धौति - धौतिकर्म के अन्तर्गत हठ प्रदीपिका में केवल वस्त्र धौति का ही वर्णन किया गया है। धौति-क्रिया का वर्णन करते हुए योगी स्वात्माराम जी कहते हैं-

चतुरंगुल विस्तारं हस्तपंचदशायतम्।।

गुरूपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्गसेत्।।

पुनः प्रत्याहरेच्चैतदुदितं धौतिकर्म तत्।। ह०प्र० 2/24

अर्थात् पन्द्रह हाथ लम्बा व चार अंगुल चौड़ा मुलायम वस्त्र लें। फिर उसको गर्म जल में भिगोकर गुरू के निर्देश के अनुसार प्रत्येक दिन एक-एक हाथ खाने का अभ्यास करें इस वस्त्र को खाते समय एक हाथ वस्त्र को बाहर ही रखें तथा धौति को दाँतों में दबाकर नौलि कर्म करें तत्पश्चात् धौति को धीरे-धीरे बाहर निकालें। धौति बाहर निकालते समय यदि अटकती हुई अनुभव हो तो घबराना नहीं चाहिए। थोड़ा उष्ण जल पीकर पुनः निकालना चाहिए। धौति आसानी से बाहर आ जायेगी। फिर भली प्रकार धोकर सुखाने के पश्चात् उसको लपेटकर रखना चाहिए। यही धौतिकर्म है। इस धौतिकर्म के लाभों का वर्णन करते हुए हठयोगप्रदीपिका में कहा गया है-

कासश्वासप्लीहकुष्ठं कफरोगाश्च विंशतिः।।

धौतिकर्म प्रभावेन प्रयान्त्येव न संशयः।। ह०प्र० 2/25

धौति आमाशय को धोकर उसकी पूर्णरूपेण शुद्धि कर देती है। इसी कारण इसे धौति कहा जाता है। हठयोगप्रदीपिका के रचयिता स्वात्माराम योगी जी इसका फल बताते हुए कहते हैं कि इसके अभ्यास से कास (खाँसी), श्वास (दमा) आदि रोग दूर होते हैं। प्लीहा के विकार दूर होते हैं। स्वामी चरणदास अपने ग्रन्थ भक्तिसागर में इसके महत्व की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि इसके नियमित अभ्यास करने से कुष्ठ रोग भी ठीक हो जाता है तथा विकृत कफ से उत्पन्न बीस प्रकार के रोग इसके अभ्यास से समाप्त हो जाते हैं-

कोढ अठारह न भवें करैं जु नित परभात।।

काया होवै शुद्ध ही भजें पित्त कफ रोग।। (भक्तिसागर)

11.6.2 बस्ति - बस्तिकर्म भी बहुत महत्वपूर्ण कर्म है। आयुर्वेद में भी इसका पंचकर्म के अन्तर्गत वर्णन किया गया है। आधुनिक चिकित्सा में भी इसी को आधार बनाकर एनिमा क्रिया रोगियों को कराई जाती है। हठयोगप्रदीपिका में बस्तिकर्म का वर्णन करते हुए कहा गया है-

नाभिदघ्न जले पायौ न्यस्तनालोत्कटासनः।।

आधाराकुंचनं कुर्यात्क्षालनं वस्तिकर्म तत्।। ह०प्र० 2/26

अर्थात् नदी आदि के जल में उत्कटासन में ऐसे स्थान पर बैठकर जहाँ नाभि तक जल आये, गुदा में कनिष्ठिका अंगुली के बराबर छिद्र वाली बाँस की नाल को प्रवेश कराकर मूलाधार का आकुंचन करे, जिससे जल गुदा में प्रवेश कर जाये। फिर नौलिकर्म द्वारा इस पानी को उदर में चलाकर गुदामार्ग से त्याग देना चाहिए। इस प्रकार मलाशय के धोने के कर्म को बस्तिकर्म कहते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि नदी आदि का जल गंदा न हो और न बहुत ठण्डा हो, न अधिक गर्म ही हो। आजकल नदियों का पानी अधिकतर प्रदूषित रहता है। इसलिए किसी बड़े टब में जिसमें बैठने पर नाभि तक जल आ जाये उसमें यह क्रिया करनी चाहिए। पानी के साथ गुदा में कोई जीव-जन्तु न चला जाये, इसके लिए बाँस की नली के बाहर वाले मुख पर महीन कपड़ा बाँधकर रखना चाहिए। बाँस की नली चिकनी तथा छह अंगुल लम्बी होनी चाहिए। उसमें से चार अंगुल गुदा में प्रवेश करायें तथा दो अंगुल बाहर रखनी चाहिए। इस प्रकार स्वाभाविक रूप से गुदा में जल प्रवेश कराकर बस्तिकर्म करना चाहिए।

यह बस्तिकर्म स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। बस्ति के लाभों का वर्णन करते हुए हठयोगप्रदीपिका में कहा गया है-

गुल्मप्लीहोदरं चापि वातपित्तकफोद्भवाः।।

बस्ति कर्म प्रभावेन क्षीयन्ते सकलामयाः।। ह०प्र० 2/28

अर्थात् बस्तिकर्म के प्रभाव से वायु गोला, तिल्ली सम्बन्धी दोष, जलोदर आदि रोग दूर हो जाते हैं और विकृत वात, पित्त व कफ के द्वारा उत्पन्न हुए रोग नष्ट हो जाते हैं।

स्वात्माराम जी कहते है -

धात्विंद्रियांतःकरणप्रसादं दद्याच्चकांति दहनप्रदीप्तिम्।।

अशेषदोषोपचयं निहन्यादभ्यस्यमानं जलबस्तिकर्म।। ह०प्र० 2/29

अर्थात् बस्तिकर्म करने वाले पुरुष की सभी धातुएँ (रस, रक्त, माँस, भेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) और वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ - ये पंच कर्मेन्द्रिय, श्रोत्र, त्वक्, जिह्वा, घ्राण और चक्षु - ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि चित्त और अहंकार रूपी अन्तःकरण ये सभी मलों से रहित हो जाते हैं तथा प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं। अर्थात् बस्तिकर्म इनके परिताप, विक्षेप, शोक, मोह आदि रजोगुण व तमोगुण धर्मों को दूर करके सुख का प्रकाश करके सात्त्विक धर्मों को प्रकट करता है और शरीर को कांतियुक्त और जठराग्नि को प्रदीप्त कर देता है। यह बस्तिकर्म वात्त, पित्त एवं कफ से सम्बन्धित दोषों को दूर करता है और इन दोषों की न्यूनता को भी दूर करने वाला तथा उन्हें समान अवस्था में लाकर आरोग्य प्रदान करने वाला है।

11.6.3 नेति - दूध बिलोने की रई पर लिपटी रस्सी को नेति कहते हैं। उसी प्रकार नासान्धों से सूत्र डालकर बिलोचन करने की क्रिया को नेति नाम से कहा गया है। हठयोगप्रदीपिका में केवल सूत्रनेति का ही वर्णन किया गया है। जल, दुग्ध, घृत, तेल आदि से भी नेतिक्रिया की जाती है। नेति के विषय में स्वात्माराम योगी भी कहते हैं।

सूत्रं वितस्तिसुस्निग्धं नासानाले प्रवेशयेत् ।।

मुखान्निर्गमयेच्चैषा नेतिः सिद्धैर्निगद्यते।। ह०प्र० 2/30

अर्थात् एक बालिश्त स्निग्ध (चिकने) सूत्र को नासिका छिद्र में प्रवेश करके मुख से निकाल दें। इस कर्म को सिद्धों ने नेतिकर्म कहा है। यहाँ बालिश्त का अर्थ उतने सूत्र से लेना चाहिए जिसने सूत्र से सुविधापूर्वक नेति क्रिया हो सके। यह सूत्र दस या पन्द्रह तार का होना चाहिए। उस सूत्र के आधे भाग को रस्सी की भांति बाँटकर उस पर मोम लगा लें तथा आधे सूत्र को खुला रखना चाहिए। कागासन में बैठकर उस सूत्र के बिना मोम वाले भाग को उषण पानी में भिगोकर तथा मोम वाले भाग पर हल्का-सा नमकीन पानी लगाकर जो स्वर चल रहा हो, उस नासाछिद्र में प्रवेश कराते जायें। जब नेति गले में आ जाये तो दो अंगुली मुख में डालकर नेति को पकड़ कर धीरे-धीरे मुख से बाहर निकाले। इसी प्रकार दूसरे नासारन्ध्र से डालकर धीरे-धीरे मुख से निकाल लें। जब इस प्रकार निकालने का भली प्रकार अभ्यास हो जाए तो फिर दोनों हाथों से नेति को पकड़ कर नासारन्ध्र में धीरे-धीरे घर्षण करें। इस नेतिकर्म को क्रमशः दोनों नासारन्ध्रों से किया जाता है। यह नेतिकर्म सिद्धयोगियों द्वारा बताया गया है।

नेतिक्रिया के लाभों का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

कपालशोधिनी चैव दिव्य दृष्टि प्रदायिनी ।।

जत्रूर्ध्वजातरोगौघं नेतिराशु निहन्ति च।। ह०प्र० 2/31

अर्थात् नेतिक्रिया कपाल को शुद्ध करती है तथा नासिका आदि के मल को दूर करती है। यह साधक को दिव्यदृष्टि प्रदान करती है तथा कन्धों की सन्धि से ऊपर के अंगों से सम्बन्धित रोग समूह को शीघ्र ही नष्ट करती है अर्थात् इस क्रिया के द्वारा आँख, नाक, कान, गला आदि के रोगों का नाश होता है। भक्ति सागर में कहा गया है-

नाक, कान अरु दाँत को रोग न व्यायें कोई।

निर्मल होवे नैन ही नित नेति करै सोई।।

11.6.4 त्राटक - त्राट्ककर्म योगसाधना का एक मुख्य कर्म माना जाता है। त्राटक क्रिया का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

निरीक्षेन्निश्चदृशा सूक्ष्मलक्ष्शा समाहितः ।।

अश्रुसंपात पर्यंतमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम्।। ह०प्र० 2।32

अर्थात् चित्त को एकाग्र कर निश्चलदृष्टि से सूक्ष्म लक्ष्य अर्थात् पदार्थ को तब तक देखे, जब तक आँखों से अश्रुपात न हो जाए। इसी क्रिया के करने को हठयोग के आचार्यो ने त्राटक कहा है। त्राटक के लिए किसी स्थिर आसन में बैठकर तीन-चार फुट की दूरी पर आँखों के समानान्तर कोई सूक्ष्मलक्ष्य जैसे दीपक की लौ या दीवार पर काला या हरा गोल चवन्नी का आकार बनाकर उसे निश्चल दृष्टि से देखना चाहिए। जब आँखें थकने लगें या आँसू आने वाले हो तो कुछ समय के लिए आँखें बन्द रखकर बैठना चाहिए। पुनः इसी क्रिया को दोहराना चाहिए। त्राटक का अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाएं। जिनकी आँखें ज्यादा कमजोर हों, उन्हें प्रथम सूत्र नेति, जल नेति का अभ्यास करके अपनी आँखों की स्थिति ठीक करने के पश्चात् ही त्राटक क्रिया करनी चाहिए। षट्कर्मों में त्राटक एक ऐसी क्रिया है, जिसका शरीर व मन दोनों पर शीघ्र प्रभाव पड़ता है। त्राटक के लाभों का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

त्राटक

मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम्।।

यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेटकम्।। ह०प्र० 2/33

अर्थात् इस त्राटक कर्म के अभ्यास से नेत्ररोगों का नाश हो जाता है तथा तन्द्रा आदि के लिए यह कपाट का कार्य करता है। अर्थात् उन्हें शरीर व चित्त में प्रवेश नहीं करने देता। तन्द्रा चित्त की तमोगुण वृत्ति को कहते हैं। इस कर्म के अभ्यास से ये सब समाप्त हो जाते हैं। इस कर्म को योगियों ने इतना महत्वपूर्ण माना है कि जिस प्रकार स्वर्ण की पेटी को छुपाकर रखा

जाता है उसी प्रकार यह त्राटककर्म भी गुप्त रखने योग्य है। इसका तात्पर्य यही है कि योग्य अधिकारी को ही इस कर्म को सिखाना चाहिए। क्योंकि यह सम्मोहन शक्ति का विकास करती है और अनधिकारी पुरुष इससे प्राप्त सम्मोहनशक्ति का दुरुपयोग कर सकते हैं।

11.6.5 नौलि - नौलिक्रिया भी षट्कर्मों में महत्वपूर्ण कर्म है। इसका वर्णन करते हुए हठयोगप्रदीपिका में कहा गया है-

अमंदावर्तवेगेन तुंदं सव्यापसव्यतः।।

नतांसोभ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धः प्रचक्षते।। ह०प्र० 2/34

दक्षिणी नौलि

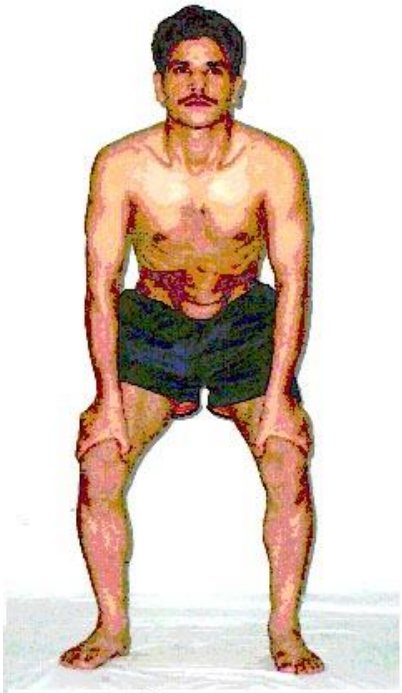

नौलि (मध्यमा)

नौलि (वाम)

अर्थात् जो पुरुष कन्धों को नीचा करके जल-भ्रमर के वेग के समान अपने उदर को दायीं व बायीं ओर से तेजी से घुमाता है। उसके इस कर्म को सिद्धों ने नौलिकर्म कहा है। इसके लिए सर्वप्रथम घुटनों पर हाथ रखकर थोड़ा सामने झुककर, पूरा श्वास बाहर निकालकर उड्डियान बंध लगायें। तत्पश्चात् मानसिक शक्ति से पेट के निम्न भाग को ढीला छोड़कर नलों को सामने की ओर इकट्ठा करें। यह मध्यनौलि कहलाती है। जब इसका अभ्यास हो जाए तब दाहिने हाथ पर दबाब देकर इस क्रिया को करें तो नले दाहिनी ओर हो जायेंगे। जिसे दक्षिणनौलि कहा जाता है। इसी प्रकार बायीं ओर दबाव देने से वामनौलि हो जायेगी। जब तीनों प्रकार का अभ्यास हो जाये तो फिर इच्छा शक्ति से नौलि को दायें से बायें व बायें से दायें गोलाकार घुमाना चाहिए। इसे नौलिसंचालनक्रिया कहा जाता है। इन सब क्रियाओं को कर ही पूर्ण नौलि क्रिया कही जाती है।

नौलिक्रिया हमारे शरीर के लिए बहुत ही लाभकारी क्रिया है। इसके लाभों का वर्णन करते हुए कहा गया है-

मंदाग्निसंदीपनपाचनादिसंधायिकानंदकारी सदैव।

अशेषदोषामय शोषणी च हठक्रिया मौलिरियं च नौलि।। ह0प्र0 2/35

अर्थात् नौलि के अभ्यास से मंदाग्नि दूर होकर पाचन अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। जिससे भूख तथा अन्न का पाचन भली प्रकार होने लगता है। नौलि के अभ्यासी को सदैव आनन्द की अनुभूति होती रहती है। वात आदि समस्त दोषों और उनसे उत्पन्न होने वाले रोगों का नाश करती है। यह नौलि क्रिया धौति आदि जो षट्कर्म की अन्य क्रियायें हैं, उन सबमें श्रेष्ठ क्रिया है।

11.6.6 कपालभाति - कपालभाति भी षट्कर्मों में महत्वपूर्ण कर्म है। इसकी विधि एवं लाभों का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ।।

कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी।। ह०प्र० 2/36

अर्थात् लौहार की धौकनी के समान तेजी से रेचक और पूरक करने की क्रिया को कपालभाति कहा जाता है। इसमें श्वास को तेजी के साथ बाहर निकालते हैं। निकालते समय पेट को अन्दर दबाते हैं। श्वास लेने की क्रिया स्वयमेव होती रहती है। यह कपालभाति कफ का शोषण करती है। अर्थात् कफविकारों को शान्त करती है। उक्त के अलावा गजकरणी का वर्णन भी हठप्रदीपिका में है।

गजकरणी क्रिया वैसे तो धौतिकर्म के अन्तर्गत ही आती है। किन्तु हठयोगप्रदीपिका में इसका वर्णन अलग से किया गया है। वहाँ कहा गया है-

उदरगतपदार्थमुद्वमंति पवनमपानमुदीर्य कंठनाले।।

क्रमपरिचयवश्यनाडिचक्रा गजकरणीति निगद्यते हठज्ञैः।। ह०प्र० 2@26

अर्थात् उदरगत अपानवायु को ऊपर उठाकर अर्थात् कंठ के नाल में पहुँचाकर उदरस्थ अन्न, जल आदि पदार्थों का वमन करना तथा नाड़ियों के समूह को वश में रखना, हठयोग के ज्ञाताओं ने इस क्रिया को गजकरणी नाम दिया है।

इसका यह अर्थ है कि शखिनी नाड़ी का कंठ तक का मार्ग जिसने अभ्यास से वश में कर लिया है वही गजकरणी है। जिस प्रकार हाथी अपनी सूंड से पानी पीकर उसी के द्वारा पानी को बाहर फेंक देता है, उसी प्रकार खाये-पीये अन्न जल का वमन करना हठयोग में गजकरणी कहा गया है। यह क्रिया खाली पेट की जाती है। यदि खाने के बाद उदरगत पदार्थों को निकालने की क्रिया हो तो उसे स्वामी चरणदास 'बाधी' कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) षटकर्मो का वर्णन किस ग्रन्थ में मिलता है।

(अ) हठप्रदीपिका (ब) भगवद् गीता

(स) पातंजलि योग सूत्र (द) वशिष्ट संहिता

(ख) हठप्रदीपिका में तीसरा षटकर्म कौन सा है।

(अ) वस्ति (ब) नेति

(स) कपालभॉति (द) त्राटक

(ग) धौति क्रिया के लिए कितने अंगुल चौढा कपड़ा लेना चाहिए।

(अ) दो अंगुल (ब) चार अंगुल

(स) छः अंगुल (द) आठ अंगुल

(घ) धौति क्रिया का सम्बन्ध है –

(अ) आमाशय से (ब) छोटी औत से

(स) बड़ी औत से (द) उपरोक्त तीनों

(ड.) वस्ति क्रिया से सफाई होती है।

(अ) नाक (ब) आमाशय

(स) छोटी औत (द) बड़ी औत

(च) षटकर्म के किस क्रिया के अभ्यास से नेत्र दोष ठीक होते है।

(अ) धौति (ब) नेति

(स) त्राटक (द) कपालभॉति

11.7 सारांश

आन्तरिक मलों के निष्कासन के लिए जहॉ एक ओर आयुर्वेद में पंचकर्मो की अवधारणा को स्पष्ट किया है वही दूसरी ओर स्वामी स्वात्माराम जी ने छ: कर्म (धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि व कपालभाति) शरीर के शोधन के लिए बताये है। षटकर्मो के अभ्यास से निश्चित रूप से साधक के शरीर की स्थूलता दूर हो जाती है सभी विकारों का निष्कासन होने से शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ्य हो जाता है। शरीर की स्वस्थता के साथ-साथ साधक का मन भी पवित्र हो जाता है परिणामस्वरूप साधक के अन्दर रचनात्मकता सृजनात्मकता तथा आध्यात्मिक चिन्तन का विकास होता है तथा धीरे-धीरे साधक आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसरित होता है।

11.8 शब्दावली

घट - घड़ा (शरीर)

शोधन - शुद्धिकरण

पंचकर्म - स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, वमन, वस्ति

श्लेष्माधिक्तय - कफ, दोष की अधिकता

त्रिदोष - वात, पित्त, कफ

शंख प्रक्षालन – बड़ी औत की सफाई की एक क्रिया

व्याधि – रोग

अश्रुपात – आंसू निकलना

कपाट – द्वार, दरवाजा

रेचक - श्वास छोड़ना

पूरक - श्वास लेना

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) अ (ख) ब (ग) ब (घ) अ (ड.) द (च) स

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

स्वामी स्वात्माराम – कृत दिगम्बर स्वामी, हठप्रदीपिका (2001) कैवल्यधाम श्रीमन्माधव, योग मन्दिर समिति, लोनावाला

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. षटकर्म क्या है ? विविध परिभाषाओं के माध्यम से समझाइये।

2. षटकर्मो के प्रमुख उद्देश्य व उपयोगिता का वर्णन कीजिए।

3. हठप्रदीपिका के अनुसार षटकर्मो की व्याख्या कीजिए। n

इकाई – 12 नाड़ी, चक्र एवं कुण्डलिनी तथा कुण्डलिनी जागरण के उपाय

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 नाड़ी

12.3.1 नाड़ी शब्द का अर्थ

12.3.2 नाड़ियों की संख्या

12.3.3 प्रमुख नाड़िया

12.4 चक्र

12.4.1 चक्र का शाब्दिक अर्थ

12.4.2 मूलाधार चक्र

12.4.3 स्वाधिष्ठान चक्र

12.4.4 मणिपुर चक्र

12.4.5 अनाहत चक्र

12.4.6 विशुद्धि चक्र

12.4.7 आज्ञा चक्र

12.4.8 सहास्रार चक्र

12.5 कुण्डलिनी

12.5.1 कुण्डलिनी का अर्थ

12.5.2 कुण्डलिनी की परिभाषाये

12.5.3 कुण्डलिनी का स्थान एवं ऐतिहासिकता

12.6 कुण्डलिनी जागरण के उपाय

12.6.1 जन्मजात कुण्डलिनी जागरण

12.6.2 मंत्र द्वारा कुण्डलिनी जागरण

12.6.3 तपस्या द्वारा कुण्डलिनी जागरण

12.6.4 जड़ी बूटियों द्वारा कुण्डलिनी जागरण

12.6.5 राजयोग द्वारा कुण्डलिनी जागरण

12.6.6 प्राणायाम द्वारा कुण्डलिनी जागरण

12.6.7 क्रियायोग द्वारा कुण्डलिनी जागरण

12.6.8 तंत्र द्वारा कुण्डलिनी जागरण

12.6.9 शक्तिपात द्वारा कुण्डलिनी जागरण

12.6.10 आत्मसमर्पण द्वारा कुण्डलिनी नागरण

12.7 साराश

12.8 शब्दावली

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

भारतीय चिन्तन में सत्य की खोज, मानव कल्याण और मोक्ष की प्राप्ति मुख्य लक्ष्य रहा है। मानव जीवन में ही व्यक्ति योग साधना कर मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। योग साधना का आधार मानव शरीर है। यौगिक दृष्टि से तीन शरीर नाड़ी चक्र तथा कुण्डलिनी शक्ति योग साधना का आधार है।

प्रस्तुत इकाई में विविध नाड़ियों, षटचक्रों तथा मानव में अन्तरनिहित कुण्डलिनी शक्ति का सम्यक वर्णन किया जा रहा है जिज्ञासु पाठको तथा साधको को चाहिए कि वह एक योग्य गुरू के संरक्षण में रहकर कुण्डलिनी नाड़ी,चक्रों तथा कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के उपायो को आत्मसात् कर अपने लक्ष्य की प्राप्ति करे।

12.2 उद्देश्य – प्रस्तुत इकाई में आप

- विविध नाड़ियों का सम्यक अध्ययन करेंगे।
- चक्र के शाब्दिक अर्थ को जानकर विविध चक्रों का विश्लेषण करेंगे।
- कुण्डलिनी के अर्थ को जानकर कुण्डलिनी की विविध परिभाषाओं को जान सकेंगे।
- कुण्डलिनी जागरण के विविध उपायों को समझ सकेंगे।

12.3 नाड़ी

प्राचीन काल से ही ऋषि-मुनियों ने अपने ज्ञान द्वारा प्राणशक्ति का उत्थान किया तथा उसे प्राणशक्ति को जाग्रत कर चेतना को विकसित किया करते थे। आज मानव ने अणु को भी तोड़कर परमाणु ऊर्जा हासिल कर ली है। ठीक इसी

तरह अगर वह चाहे तो अपने भीतर छिपी ऊर्जा के विशाल भण्डार को जाग्रत कर अपने जीवन को उत्कृष्ट कर सकता है। हमारे ऋषि-मुनि प्राचीन काल से ही यह कार्य यौगिक तकनीकों से किया करते थे, और ऊर्जा का उत्पादन बाह्य साधनों से न करके अपने शरीर और मन के भीतर ही किया करते थे।

मानव शरीर में प्राण-संचालन का तंत्र जाल फैला है। वह आन्तरिक ऊर्जा प्राप्त करने के लिए जल और वाष्प ऊर्जा केन्द्रों की प्रणाली व्यवस्थित की जाती है ऊपर से जल को गिराकर उसके दवाब के फलस्वरूप नीचे टरबाइन घूमती है, उससे उत्पन्न ताप की सहायता से विद्युत निर्माण कर ऊर्जा को संग्राहकों में संचित कर लिया जाता है। उसी प्रकार इस मानव शरीर में श्वास-प्रश्वास द्वारा शरीर में प्राण ऊर्जा के क्षेत्र आवेशित होते है। ऊर्जा उत्पादन में हमारी श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया अहम् भूमिका निभाती हैं। श्वास-प्रश्वास द्वारा उत्पादित ऊर्जा को ऊर्जा संग्राहको, जिन्हें योग की शब्दावली में चक्र कहा जाता है, में दिशान्तरित कर दिया जाता है।

ऊर्जा संचयन के पश्चात ऊर्जा को विद्युत उत्पादन केन्द्रों से तारो द्वारा उप केन्द्रों को भेजी जाती है। फिर ट्रांसफार्म के द्वारा उनका वोल्टेज घटाकर उसे अलग-अलग कार्यो में प्रयुक्त किया जाता है। यही सिद्धान्त भौतिक शरीर और मन द्वारा ऊर्जा उत्पादन पर भी लागू होता है। इनमें बस अन्तर यह है कि बाहर की ऊर्जा विशेष तारों द्वारा तथा यह कार्य नाड़ियों द्वारा सम्पन्न होता है। नाड़ियां संवेदनाओं एवं प्राण को प्रवाहित करती है। स्थूल शरीर में इन्हें नर्व के रूप में जाना जा सकता है जो रक्त प्रवाह में सहायक होती है। परन्तु योग में जो नाड़ियॉ वर्णित है उन्हें नग्न ऑखों से नहीं देखा जा सकता है। क्योंकि वे अति सूक्ष्म होती है और उनमें सूक्ष्म प्राण शक्ति ही प्रवाहित होती है।

12.3.1 नाड़ी शब्द का अर्थ – नाड़ी शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के नाड् शब्द से हुई है। जिसका अर्थ है प्रवाह। सूक्ष्म ध्वनि कम्पनों को भी नाद कहा जाता है। इस तरह नाड़ियां ध्वनि की सूक्ष्म कम्पनों का प्रवाह होती है।

उपनिषद में वर्णित है, कि समूचे शरीर में नाड़ियों का विस्तार सिर से लेकर पैर के तलवों तक पाया जाता है। ये नाड़ियॉ जीवनदायिनी श्वास द्वारा ऊर्जा को पूरे शरीर में प्रवाहित करती है। नाड़ियां समस्त प्राणी मात्र के जीवन का आधार तथा आत्म शक्ति का स्रोत है।

छांन्दोग्य और वृहदारण्यक उपनिषदों में स्पष्ट रूप से कहा गया है – शरीर में नाड़ी जाल अत्यन्त सूक्ष्म रचना होती है। ये नाड़ियाँ संवेदनाओं, प्राण उद्वेगों आदि को सतत् प्रवाहित करती रहती है।

12.3.2 नाड़ियों की संख्या – हमारे शरीर में स्थित नाड़ी जाल बहुत विस्तृत है। शास्त्रों के अनुसार शरीर में 72000 नाड़ियॉ स्थित है। परन्तु योग विषयक ग्रन्थों में इसकी संख्या में मतभेद पाया जाता है। शिव संहिता कहती है, कि हमारे नाभि क्षेत्र से साढ़े तीन लाख नाड़ियॉ निकलती है।

12.3.3 प्रमुख नाड़िया – जिस प्रकार किसी भी विद्युतीय धारा मण्डल (सर्किट) के विद्युत परिचालन के लिए तीन तार (धनात्मक, ऋणात्मक तथा उदासीन) की आवश्यकता पड़ती है। ठीक उसी प्रकार हमारे शरीर में ऊर्जा संचार की व्यवस्था का यह कार्य तीन विशेष नाड़ियों द्वारा होता है। यह तीन नाड़ियॉ है इड़ा पिंगला तथा सुषुम्ना। योग में इड़ा को ऋणात्मक धारा प्रवाह के रूप में जो कि गत्यात्मक शारीरिक शक्ति कही जाती है। जिस प्रकार घरों में विपरीत धाराओं के शार्ट सर्किट से बचने के उद्देश्य से एक भूधृत अर्थिंग तार डाला जाता है जिसका सिरा भूमि में गड़ा होता है। इसी प्रकार हमारे शरीर में भी इड़ा तथा पिंगला नाड़ी के शार्ट सर्किट को टालने के उद्देश्य से एक उदासीन अथवा तटस्थ नाड़ी होती है। जिसका एक सिरा मूलाधार में स्थित होता है। इसी को सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं। सुषुम्ना नाड़ी का वास्तविक प्रयोजन आध्यात्मिक शक्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करना होता है। शिव सहिता के अनसार नाड़ियों की संख्या दस है इनमें मुख्य तीन है- जिसका उल्लेख द्वितीय पटल के 14वें 15वें श्लोक में मिलता है।

सुषुम्णेडा पिण्डला च गान्धारी हस्तिजिव्हिका।

कुहु: सरस्वती पूषा शडिवनी च पयस्विनी।

वारूण्यलम्बुषा चैव विश्ओदरी यशस्विनी।

एतासु तिस्त्रो मुख्यास्स्यु: पिण्डलेडासुषुम्णिका।।शि0सं0 2/14-15

अर्थात सुषुम्ना, इड़ा, पिंगला, गंधारी, हस्तिजिव्हा, कुहु सरस्वती, पूषा, शंखिनी, पयस्विनि, वरूणी, अलम्बुषा, विश्वोदरा और यशस्विनी (ये दस नाड़िया है) इनमें भी तीन मुख्य है – इड़ा पिंगला तथा सुषुम्ना।

वशिष्ट संहिता के अनुसार चौदह नाड़िया है –

नाड़ीनामपि सर्वासां मुख्यां: पुत्र चतुदर्शा।।

वशिष्ट संहिता 2/20

अर्थात हे पुत्र सभी नाड़ियों में 14 नाड़िया मुख्य हैं।

वे इस प्रकार हैं –

1. सुषुम्ना 2. इड़ा 3. पिंगला 4. गांधारी 5. हस्तिजिव्हा 6. कुहु

7. सरस्वती 8. पूषा 9. शंखिनी 10. पयस्विनी 11. वारूणी 12.अलंबुषा 13.विश्वोदरा 14. यशस्विनी

इन चौदह नाड़ियों में से तीन नाड़ियों में से तीन नाड़िया प्रमुख है जो इस प्रकार है –

1. इड़ा 2. पिंगला 3. सुषुम्ना

1. इड़ा नाड़ी – वायी नासिका द्वारा प्रवाहित होने वाली नाड़ी इड़ा है, जो शीतलता का प्रतीक है। इसके कई अन्य नाम है – जैसे चन्द्र, शीत, कफ, अपान रात्रि, जीव, शक्ति, तामस आदि।

शरीर विज्ञान की दृष्टि से इंड़ा नाड़ी का सम्बन्ध हमारे परानुकम्पी तंत्रिका तत्र से होता है। इससे हमारे अंगों यथा कंठ, नाभि के बीच स्थित अंगों, हृदय, फेफड़ों तथा पाचन संस्थानों को प्रेरणा जाती है, जिससे मांसपेशियों में शिथिलीकरण होने से तापमान में गिरावट आती है। इसलिए इस नाड़ी की प्रकृति, चित्त को अर्न्तमुखी बनाने वाली, शीतल मानी जाती है।

इड़ा नाड़ी का उद्गम स्थान रीढ़ की हड्डी का अधोभाग 'मूलाधार चक्र' माना जाता है, तथा इसका अन्तशीर्ष 'आज्ञा-चक्र' माना जाता हे। इड़ानाडी मूलाधार से बलखाती हुई किसी को स्पर्श किये बिना सभी चक्रों (स्वाधिष्ठान, मणिपुर अनाहत और विशुद्धि) को पार करते हुए ऊपर आज्ञाचक में पहुँच कर विलीन हो जाती है।

इड़ा के प्रवाहित होने से मस्तिष्क का दाया भाग क्रियाशील होता है। इड़ा सुषुम्ना की उपनाड़ी है तथा मनस शक्ति या चन्द्र शक्ति की प्रदायिनी है। इसका रंग नीला होता है।

पिंगला नाड़ी – प्राण शक्ति प्रावाहिनी हमारी पिंगला नाड़ी को माना जाता है। क्योंकि यह धनात्मक प्राण ऊर्जा को प्रवाहित करती है। प्राण शक्ति की ऊर्जा शरीर में जोश उत्पन्न करती है। इसलिए इसे सूर्य नाड़ी के नाम से जाना जाता है। यह चेतना को वर्हिमुखी भी बनाती है। और शरीर को स्फूर्ति तथा कठोर परिश्रम के लिए तैयार करती है। इसका प्रवाह दायी नासिका द्वारा होता है। पिंगला नाड़ी का सीधा संबंध हमारे शरीर में मेरूदण्ड की दाहिनी ओर स्थित अनुकम्पी नाड़ी संस्थान से होता है। यह शरीर में हृदय की धड़कन तेज कर अतिरिक्त ताप उत्पन्न करती है। इसलिए कहा जाता है कि पिंगला नाड़ी शक्ति तथा उष्णता बढ़ाती है तथा चित्त को बर्हिमुखी बनाने वाली होती है। पिंगला नाड़ी (दाई नासिका) का ताप बायी नासिका इड़ा नाड़ी से अधिक होता है। यह पुरानी यौगिक पद्धति को सिद्ध करता है, इसको कई नामों से जाना जाता है – जैसे सूर्य, ग्रीष्म, पित्त, प्राण, ब्रहम, राजस आदि।

मूलाधार चक्र के दाहिने पार्श्व से पिंगला का उद्गम होता है यह हर चक्र को पार करते हुए लहराती हुई मेरूदण्ड के सहारे ऊपर उठती है। तथा दाहिने नासिका रन्ध्र के मूल में जहॉ आज्ञा चक्र है वहॉ समाप्त होती है। पिंगला नाड़ी मेरूदण्ड के दाहिने ओर समूचे शरीर को नियमित तथा नियन्त्रित करती है। पिंगला नाड़ी के प्रवाहित होने पर मस्तिष्क का बायॉ भाग क्रियाशील होता है। इस पिंगला नाड़ी का रंग लाल बताया जाता है।

पिंगला नाड़ी द्वारा बाहरी शारीरिक कार्यो द्वारा उत्पन्न तनाव और थकावट व दबाव को सहने करने की क्षमता बढ़ाता है। सुषुम्ना – हमारा शरीर ऊर्जा प्रवाह के परिप्रेक्ष्य में दो भागों में विभक्त रहता है। धनात्मक तथा ऋणात्मक बलों तथा ऊर्जा प्रवाह के परस्पर खिचाव द्वारा ये भाग नियमित होते है। तीसरा पक्ष मध्य अक्ष जहॉ धनात्मक तथा ऋणात्मक ऊर्जा मिलती हैं। दोनों समान हो जाती है। वहॉ पर ऊर्जा तटस्थ होती है। जो उस अक्ष के ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर प्रवाहित ऊर्जा प्रवाहित होती है। योग में इस मध्य अक्ष को सुषुम्ना नाड़ी कहा जाता है।

मेरूदण्ड के मूल से सुषुम्ना नाड़ी प्रारम्भ होती है, इसका मार्ग मेरूदण्ड में एक दम सीधा होता है। यह मार्ग में आने वाले सभी चक्रों को वेधते हुए आगे बढ़कर आज्ञाचक्र में इड़ा और पिंगला से जा मिलती है। सुषुम्ना में अपार शक्ति का भण्डार छिपा पड़ा है। यह महत शक्ति ले जाने वाली नाड़ी है। जहॉ इड़ा और पिंगला स्थूल शक्ति का निर्माण करती है। वहीं सूक्ष्म शक्ति का निर्माण सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा होता है। सुषुम्ना में असीमित शक्तियों का भण्डार है।

सुषुम्ना जब जाग्रत अवस्था में होती है, तो पूरा मस्तिष्क क्रियाशील हो जाता है। सुषुम्ना की शक्ति जिसे कुण्डलिनी के नाम से जाना जाता है। मूलाधार में स्थित होती है। जब इड़ा व पिंगला एक साथ प्रवाहित होती है तब प्राण और चेतना का अंतर टूट जाता है, एक अवस्था समरूप हो जाती है, तब कुण्डलिनी स्वयं ही सुषुम्ना नाड़ी से आज्ञा चक्र में पहुँच जाती है।

सुषुम्ना नाड़ी द्वारा ही समस्त ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में चेतना का संचार होता है। सुषुम्ना नाड़ी का दूसरा नाम ब्रहमनाड़ी भी है। इसका रंग चाँदी जैसा होता है।

12.4 चक्र

हमारे शरीर में प्राण ऊर्जा को सूक्ष्म प्रवाह प्रत्येक नाड़ी के एक निश्चित मार्ग द्वारा होता है। और एक विशिष्ट बिन्दु पर इसका संगम होता है। यह बिन्दु प्राण अथवा आत्मिक का केन्द्र होते है। योग में इन्हें चक्र कहा जाता है। चक्र हमारे शरीर में ऊर्जा के परिपथ का निर्माण करते हैं। यह परिपथ मेरूदण्ड में होता हे चक्र उच्च तलों से ऊर्जा को ग्रहण करते है तथा उसका वितरण मन और शरीर को करते है।

12.4.1 चक्र का शाब्दिक अर्थ –

'चक्र' का शाब्दिक अर्थ पहिया या वृत्त माना जाता है। किन्तु इस संस्कृत शब्द का यौगिक दृष्टि से अर्थ चक्रवात अथवा भँवर से है। चक्र अतीन्द्रिय शक्ति केन्द्रों के ऐसी विशेष तरंगे हैं, जो वृत्ताकार रूप में गतिमान रहते हैं। इन तरंगों को अनुभव किया जा सकता है। हर चक्र की अपनी अलग तरंग होती है। अलग-अलग चक्र की तरंगगति के अनुसार अलग-अलग रंग को घूर्णनशील प्रकाश के रूप में इन्हें देखा जाता है।

योगियों ने गहन ध्यान की स्थिति में चक्रों को विभिन्न दलों व रंगों वाले कमल पुष्प के रूप में देखा था इसीलिए योगशास्त्र में इन चक्रों को 'शरीर का कमल पुष्प' कहा गया है।

कुण्डलिनी शक्ति के मूल में छ: द्वारों द्वारा पहुँचा जा सकता है। छ: द्वार या छ: ताले भी कहा जा सकता है। यह द्वार या ताले खोलकर ही उन शक्ति केन्द्रों तक जीव पहुँच सकता है। आध्यात्मिक भाषा में इन्हीं छ: अवरोधों को 'षट् चक्र' कहते हैं।

सुषुम्ना के अन्तर्गत सबसे भीतर स्थित ब्रहम नाड़ी से ये छ: चक्र सम्बन्धित है – इनकी उपमा माला के सूत्र में पिरोये हुए कमल पुष्पों से की जाती है।

चित्र द्वारा यह समझा जा सकता है कि कौन सा चक्र किस स्थान पर है – मूलाधार चक्र योनि की सीध में स्वाधिष्ठान चक्र पेडू की सीध में, मणिपुर चक्र नाभि की सीध में, अनाहत चक्र हृदय की सीध में, विशुद्धि चक्र कंठ की सीध में और आज्ञा चक्र भृकुटि के मध्य में अवस्थित है। उनसे ऊपर सहस्त्रार है। चक्रों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है।

12.4.2 मूलाधार चक्र – मेरूदण्ड के मूल में स्थित ऊर्जा का निम्न चक्र मूलाधार का शाब्दिक अर्थ मूल को अर्थ जड़ तथा आधार का अर्थ जगह होता है। मनुष्यों में विकास यात्रा का प्रस्थान बिन्दु मूलाधार होता है। मूलाधार उत्सर्जन संस्थान तथा जननांगों को नियमित ही नियन्त्रित करता है। इसका सम्बन्ध नासिका तथा प्राण शक्ति से होता है। मूलाधार को सक्रिय नासिकाग्र दृष्टि के अभ्यास द्वारा किया जा सकता है।

मूलाधार चक्र की आकृति चतुष्कोण रक्त वर्ग चार दलों वाला कमल होता है। इसके भीतर पीले रंग का वर्ग होता है। चारों दलों में अक्षर अर्थात वर्ण है। चारों पंखुडियों पर वं शं षं सं – ये चार मात्रिका वर्ण है। चार मात्रिका वर्णो की चार ही वृत्तियॉ है – काम, क्रोध, लोभ और मोह ये वृत्तियॉ है। चतुष्कोण युक्त सुवर्ण रंग के सहश पृथ्वी तत्व का मुख्य स्थान है, इसका तत्व बीज 'ल' है और इस पृथ्वी तत्व का गुण गन्ध है। इसमें लोक भू लोक है। तत्व बीज का वाहन ऐरावत हाथी है। जिसके उपर इन्द्रदेव विराजमान है। इसके अधिक देवता चतुर्मुख वाले ब्रहमा जी है। वह अपने शक्ति चतुर्भुजा डाकिनी के साथ विराजमान है।

इसके ध्यान का फल इस प्रकार है- आनन्द व आरोग्यता का उदय होना, वाक्य सिद्धि, सृजनात्मकता, काव्य सिद्धि आदि दक्षता प्राप्त करना आदि विशेष लाभ है।

12.4.3 स्वाधिष्ठान चक्र – मुलाधार चक्र से दो अंगुल ऊपर पेडू के पास स्वाधिष्ठान का स्थान है। स्व का अर्थ है स्वयं और अधिष्ठान का अर्थ जगह होता है। जब स्वाधिष्ठान में चेतना और ऊर्जा कार्य करने लगती है तो साधक में स्व तथा अहम् की चेतना जाग्रत होने लगती है। स्वाधिष्ठान व मूलाधार में निकट से सम्बन्ध होता है। यह जननांगों से सम्बन्धित ग्रन्थियों को प्रभावित करता है।

इस चक्र की आकृति सिन्दुरी रंग के प्रकाश से युक्त छ: पंखुड़ी-दलों वाला कमल के समान हैं। इन छ: दलों पर – बं, भं, मं, यं, रं, लं, - ये छ: मात्रिका वर्ण हैं । इन छ दलों की छ: प्रकार की वृत्तियॉ है। ये है – प्रश्रय, अवज्ञा, मूर्च्छा विश्वास, सर्वनाश और क्रूरता। इसमें अद्धर्चन्द्राकार युक्त जल तत्व व श्वेत वर्ण (रंग) का मुख्य स्थान है। जल तत्व का बीज 'बं' है इस जल तत्व का गुण रस है। इसका लोक भुवर्लोक है। तत्व बीज का वाहन मकर है। जिस के उपर जल देवता वरूणदेव विराजमान है। इसके देवता विष्णु जो अधिपति देवता हैं अपनी चतुर्भुजा वाली राकिनी शक्ति के साथ शोभायमान है।

इसके बीज मंत्र का मानसिक जाप करते हुए स्वाधिष्ठा न चक्र का ध्यान करने से प्रबुद्ध बुद्धि का उदय होता है। तथा जिह्वा वा में सरस्वती का वास, नवनिर्माण की शक्ति प्राप्त होती है।

12.4.4 मणिपुर चक्र – हमारे शरीर में मेरूदण्ड के पीछे मणिपूर चक्र स्थित होता है। मणिपुर का शाब्दिक अर्थ – मणि का अर्थ मोती तथा पुर का अर्थ नगर होता है अत: मणिपूर को मोतियों, मणियों का नगर भी कहा जाता है। यहॉ नाड़ियों के मिलन के उपरान्त तीव्र आलोक का विकरण होता है। इस आलोक की तुलना योग ग्रन्थों में जाज्वल्यमान मोतियों की आभा से की गई है। मणिपुर में अग्नित्व स्थित माना जाता है। जो जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। मणिपुर चक्र का संबंध आत्मीकरण, प्राण ऊर्जा और भोजन के पाचन से है।

इस मणिपुर चक्र का स्थान नाभिमूल है। इस चक्र को Epigastric Plexus अथवा Solar Plexus के नाम से भी जाना जाता है। इसकी आकृति अरूणाभायुक्त आलोकित दस दलों वाले कमल के समान होती है, इनके दस दलों में दस मात्रिका वर्ण है – डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं, इन दस मत्रिका वर्णो या अक्षरों की धवनियॉ विभिन्न प्रकार से होकर निकलती है। इन दस दलों की दस वृत्तियाँ इस प्रकार है – लज्जा, ईर्ष्या, सुषुप्ति, विषाद, कषाद, तृष्णा, मोह, घृणा और भय। त्रिकोणाकार रक्तवर्ण अग्नितत्व का मुख्य स्थान है। अग्नितत्व का बीज रं है। अग्नितत्व की स्वाभाविक गुणानुसार इस तत्वबीज की गति ऊपर की ओर होती है तत्वबीज का वाहक मेष है और उसके ऊपर अग्निदेवता विराजमान हैं इसका अधिपति देवता इन्द्र अपनी चतुभुर्जा शक्ति लाकिनी के साथ शोभायमान है।

अग्नि के ध्यान बीज यंत्र रं का ध्यान करने से मानसिक कायव्यूह का ज्ञान हो जाता है और पालन तथा संहार की शक्ति आती है। योगी तेजस्वी हो जाता है। शरीर कान्तियुक्त हो जाता है।

12.4.5 अनाहत चक्र - चौथे चक्र का नाम अनाहत चक्र है। हमारे शरीर में स्थित मेरूदण्ड में हृदय के पीछे अनाहत चक्र है। अनाहत यदि शाब्दिक अर्थ लिया जाए तो अनाहत का अर्थ होता है 'चोट नहीं करना' इस अनाहत चक्र का स्थान हृदय प्रदेश है। अनाहत चक्र आकृति परमोज्जवल नव पुष्पित कमलाकार धूसर रंग युक्त है। इस चक्र में दत्तादश दल होते है, द्वादश दलों पर द्वादश मात्रिका वर्ण है। ये इस प्रकार है- कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, नं, टं, ठं, इन द्वादस वायुतत्व के गुण धर्म वृत्तियॉ है- यथा- आशा, चिन्ता, चेष्टा, मतता दम्भ, विफलता, विवेक, अंहकार, कपटता, वितर्क और अनुताप, वायुतत्व का बीज 'यं' है और इस तत्वबीज की गति तिर्यक गति है। वायुतत्व का गुण स्पर्श है। इसको शास्त्र में दिव्य लोक भी कहा गया है। इसका अधिपति देवता रूद्र है जो अपनी त्रिनेत्रा चतुर्भुजा शक्ति काकिनी के साथ विराजमान है। षटकोणयुक्त इस चक्र का यन्त्र है और उसका रंग धूमवर्ण है।

वायुतत्व के बीज 'यं' का मानसिक जाप करते हुए इस चक्र का ध्यान करने से वाक्पतित्व, अर्थात कवित्व शक्ति प्राप्त हो जाती है। ध्यान अधिक करने से 10 प्रकार के नाद तथा श्रुतिगोचर होने लगते है।

12.4.6 विशुद्धि चक्र – पांचवा चक्र विशुद्धि चक्र हमारे शरीर में स्थित मेरूदण्ड में कण्ठ के पीछे स्थित है। इसका शाब्दिक अर्थ 'वि' अर्थात विशेष, जिसकी तुलना नहीं हो सकती है और शुद्धि का अर्थ शुद्ध करने से लिया जाता है। विशुद्धि चक्र शरीर में विषाक्त तत्वों को फैलने से रोकता है। इसका प्रभाव स्थर यंत्र, गले, टॉसिल, चुल्लिका उपचुल्लिका ग्रंथियों पर पड़ता है।

इसकी आकृति निलाभायुक्त खिले हुए कमल के समान है। इसमें 16 दल होते है। सोहल दलों पर सोलह मात्रिका वर्ण हैं, जो इस प्रकार है – अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं , ॠं, लृं, एं, ओं, औं, आं, अः। इन सोलह दलों पर आकाश तत्व की वृत्तियॉ है जो सोलह है यथा – निषाद ऋषभ, गान्धार षडश, मध्यम, धौवत, पंचम – ये सात स्वर रूप में है और अं, हूं, फट, वषट, स्वधा, स्वाहा स्वर रूप में है और अमृत यह नौ बिना स्वर के हैं। आकाश तत्व का 'हं' बीज है। तत्व की गति गम्भीर होती है। आकाश तत्व का गुण शब्द होता है। जो ऊपर की ओर गति करने वाला है। तत्वबीज का वाहन हस्ती जिसके ऊपर प्रकाश देवता है। इसके अधिपति देवता पंच कत्र पंच मुख वाले सदाशिव हैं जो अपनी शक्ति चर्तुभुज, 'शाकिनी' के साथ विराजमान है। इसका यन्त्र पूर्णचन्द्रमा के वृत्ताकार आकाश मण्डल के समान है।

आकाश तत्व का बीज हं का जाप करते हुए विशुद्धि चक्र का ध्यान करना चाहिए। विशुद्धि चक्र में ध्यान करने से भूत, वर्तमान और भविष्य इन तीनों कालों का ज्ञान हो जाता है। साधक ज्ञानवान, तेजस्वी, शान्चित्त और दीर्घजीवी हो जाता है।

12.4.7 आज्ञाचक्र – छटा चक्र आज्ञाचक्र कहलाता है। आज्ञा चक्र हमारे शरीर में मेरूदण्ड के उपरी छोर पर भूमध्य के पीछे स्थित होता है। इसका सम्बन्ध पिनियल ग्रन्थि से होता है। इसी को तीसरा नेत्र भी कहा जाता है इस चक्र की आकृति दो दलों वाला कमल के समान होती है। दोनों दलों पर मात्रिका वर्ण 'हं' और 'क्षं' है। इनकी वृत्तियॉ भी दो ही है- प्रवृत्ति

और अहंमन्यता। इसका तत्व महतत्व है। इसके तत्वबीज ऊँ है और तत्व बीज की गति नाद है। तत्वबीज के वाहन नाद पर लिंग देवता विराजमान हैं। इसका अधिपति देवता ज्ञान प्रदाता शिव हैं जो कि चतुर्भुजा षड़ानना (छ: मुखवली) 'हाकिनी' शक्ति के साथ शोभायमान है। इसका यन्त्र लिंगाकार के समान वर्तुल है।

इस चक्र का ध्यान, ओंकार बीज मंत्र का मानसिक जप करने से प्रतिभ चक्षु या दिव्य नेत्र खुल जाते है योगी को दिव्य–दृष्टि मिलती है। दिव्य योग दृष्टि प्राप्त योगी के लिए विश्व–ब्रहमाण्ड में हर तत्व का ज्ञान हो जाता है। उससे कोई भी तत्व अज्ञात नहीं रहता है।

12.4.8 सहस्रार चक्र – सबसे ऊपर और सबके अन्त में यह सहस्रार चक्र, सहस्त्र दल कमल के रूप में विद्यमान है। यह सहस्रार चक्र के सूक्ष्म स्वरूप का स्थूल रूप मात्र है। इसका स्थान, जो सभी शक्तियों का केन्द्र स्थान है ब्रह्मताल या ब्रहमरंध्र के ऊपर मस्तिष्क में है। विभिन्न प्रकार के रंगों के प्रकाश से युक्त हजार दलों वाले कमल के समान इसकी आकृति है। वह कमल एक छत्री के समान अध: मुख विकसित है। इन सहस्र दलों पर मत्रिका समूह 'अं' से लेकर 'क्षं' विद्यमान है। जिसमें समस्त स्वर और व्यंजन वर्ण समूह विद्यमान है। इसका तत्व तत्वातीत है। बिंदु तत्वबीज का वाहन है तथा अधिपति देवता परब्रह्म (शिव) हैं। जो अपनी महाशक्ति के साथ शोभा पा रहे हैं। इसमें लोक अन्तिम सत्य लोक है। इससे ऊपर कोई लोक नहीं है।

इस सहस्रार चक्र का यन्त्र शुभ्र आभा युक्त पूर्ण चन्द्रमा के समान वर्तुल है। वही पर इस यन्त्र में कुण्डलिनी शक्ति उपस्थित होकर सदैव परमात्मा के साथ युग्म रूप में पर महाशक्ति से मिलन होता है। यहाँ पर शिव और शक्ति का मिलन होता है।

कुण्डलिनी शक्ति परम शिव के साथ लीन होने के साथ ही विभिन्न चक्रों की शक्तियों अहंकार, चित्त, बुद्धि तथा मन के साथ सम्पूर्ण रूप से परमात्मा में विलीन हो जाती है तत्पश्चात् साधक को इस जगत का भी मान नहीं रहता और उसे असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति हो जाती है। इस फल या अमरत्व या अमरपद की प्राप्ति होती है।

12.5 कुण्डलिनी

प्रत्येक योग साधक की कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया के प्रति अगाध जिज्ञासा रहती है। प्रत्येक योग अनुयायी अवश्य ही यह इच्छा मन में संजोए रखता है कि वह भी कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत कर इसकी विभूतियों तथा उपलब्धियों से लाभान्वित हो सके। परन्तु कुण्डलिनी शक्ति तभी जाग्रत हो पाती है जब मन को वास्तव में कामनाओं तथा वासनाओं से मुक्त कर लिया जाए। जब कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाती है तो मन, प्राण और जीव के साथ सुषुम्ना में प्रवेश करता है और चिदाकाश में ही सारा प्रत्यक्ष दर्शन होता है। कुण्डलिनी योग में सम्पूर्ण शरीर में संग्रहित शक्ति का भगवान शिव के साथ यथार्थ में मिलन होता है।

परन्तु साधकों की महती अभिलाषा व आकांक्षा के बावजूद ऐसे कुछ गिने चुने ही होते है। जो सफलतम रीति से कुण्डली जाग्रत कर पाये हों। अधिकतर साधको को शाब्दिक एवं बौद्धिक सन्तोष ही करना पड़ता है। इसका कारण कुण्डलिनी शक्ति की सही जानकारी का अभाव व उपयुक्त मार्गदर्शन का ना होना।

कुण्डलिनी शक्ति मानव शरीर में आध्यात्मिक शक्ति के महत्वपूर्ण केन्द्र के कुछ ऐसे सुषुप्त बीज हैं, यदि उनका उत्कर्ष हो जाए तो मानव योग की उच्च अवस्था, उच्च पराकाष्ठा तक पहुँच कर अपने जीवन को दिव्य बना सकता है।

12.5.1 कुण्डलिनी का अर्थ – संस्कृत व्याकरण पर दृष्टिपात करें तो कुण्डलिनी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के दो मूल शब्दों से हुयी है। 'कुण्डल' एवं 'कुण्ड', कुण्डल का तात्पर्य है गोल फन्दा या घेरा, तथा कुण्ड का तात्पर्य है कोई गहरा

स्पान गर्त, छेद या गड्डा। वैदिक काल से ही यज्ञ हवन की प्रक्रिया भी कुण्ड में ही होती रही है योगियों के अनुसार कुण्डलिनी शब्द का तात्पर्य उस शक्ति से है जो गुप्त व निष्क्रिय अवस्था में मूलाधार चक्र में पड़ी रहती है। ऐसी ही गुप्त शक्ति की तिजोरी कुण्डलिनी शक्ति है। वह दैवीय ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से युक्त है। कुण्डजिनी शक्ति में ही दुर्गा, काली, राजराजेश्वरी त्रिपुरा सुन्दरी, महालक्ष्मी, महासरस्वती आदि नामों और रूपों को धारण किया है। कुण्डलिनी शक्ति ही विश्व में प्राण विद्युत बल, चुम्बकत्व, संयोग, गुरूत्वाकर्षण को संजोए हुए है।

12.5.2 कुण्डलिनी की परिभाषायें –

हठ प्रदीपिका के अनुसार –

सशैलवनधात्रीणां यथाधारोडहिनायक:।

सर्वेषां योगतन्त्राणां तथा धारो हि कुण्डली।। ह0प्र0 3/1

जिस प्रकार सर्पो के स्वामी शेषनाग पर्वत, बन सहित सम्पूर्ण पृथ्वी के आधार है। उसी प्रकार सम्पूर्ण योग तंत्रों का आधार कुण्डलिनी है।

कुण्डली कुटिलाकारा सर्पवत् परिकीर्तिता।

सा शक्तिश्चालिता येन स मुक्तो नात्र संशय:।। ह0प्र0 3/104

कुण्डलिनी सर्प के समान टेडी-मेढ़ी आकार वाली बताई गयी है। उस कुण्डलिनी शक्ति को जिसने जाग्रत कर लिया वह मुक्त हो जाता है। इसमें संदेह नहीं है।

शिव संहिता के अनुसार –

तत्र विधुल्लताकारा कुण्डली परदेवता

सार्द्धत्रिकरा कुटिला सुषुम्ना मार्ग संस्थिता।।13।।

(शिव संहिता 2/30)

उसी में विधुतलता के समान परम् देवतारूप कुण्डलिनी विद्यमान है, जो साढ़े तीन आवृत्ति से टेढ़ी सुषुम्णा मार्ग में स्थित है।

जगत्संष्टिरूपा सा निर्माणे सततोद्ता।

वाचामवाच्या वाग्देवी सदा देवैर्नमस्कृता।।24।। (शिव संहिता 2/24)

वह जगतरचना स्वरूप निर्माण में सतत उद्यमरूप है। वाणियों का उच्चारण कराने वाली वही वाग्देवी है। वह सदा देवताओं द्वारा नमस्कार की जाती है।

योग विज्ञान के अनुसार – ''कुण्डलिनी सारे संसार की आधारभूत तथा मानव शरीर में स्थित जीवन अग्नि है। शास्त्रों में इसे ब्राहमी शक्ति कहा गया है। यह शक्ति ही जीव के वधन एवं मोक्ष का कारण हैं।''

मैडम ब्लेवेटस्की के अनुसार – ''कुण्डलिनी विश्व व्यापी सूक्ष्म विद्युत शक्ति है, जो स्थूल बिजली की अपेक्षा कही अधिक शक्ति शालिनी है। इसकी चाल सर्प की तरह टेढ़ी है, इसलिए इसे सर्पाकार कहते है।''

12.5.3 कुण्डलिनी का स्थान एवं ऐतिहासिकता

मानव शरीर की रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले हिस्से में सोई हुई एक गुप्त शक्ति है, पुरूष के शरीर में इसकी स्थिति मूत्राशय और मलाशय के बीच पेरिनियम में है स्त्रियों में यह गर्भाशय व सविक्स में स्थित है, वस्तुत यह केन्द्र एक स्थूल संरचना है। जिसे मूलाधार चक्र कहते है।

यूरोप एवं मध्य पूर्व के देशों में और विश्व की कई सभ्यता के स्मारक एवं प्राचीन प्रतिमाएं किसी न किसी रूप में सर्प शक्ति के सिद्धान्तों को व्यक्त करती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से ही लोगों को कुण्डलिनी का ज्ञान था तांत्रिका ग्रन्थों में कुण्डलिनी शक्ति को आदि शक्ति माना गया है और यह गुप्त शक्ति निष्क्रिय अवस्था में पड़ी रहती है। उसी शक्ति के जागरण के ही विविध नाम काली, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी है।

भारतीय अध्यात्म के अनुसार कैवल्य या मोक्ष की प्राप्ति का सबसे सरल मार्ग योग ही है, और इस योग की उच्च पराकाष्ठा तक पहुँचने का कार्य कुण्डलिनी शक्ति ही करती है।

आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार –

आधुनिक मनोविज्ञान के मतानुसार इसे मानव में निहित अचेतन शक्ति कहा जा सकता है। पुराणों में जहॉ एक ओर इसे काली कहा गया वहीं दूसरी ओर शैव दर्शन ने इसे चारों तरफ से सर्प से लिपटे शिवलिंग के माध्यम से स्पष्ट किया है। कुण्डलिनी कुण्डली मारे एक सर्प के रूप में निवास करती है, जब यह सर्प जागता है। तब वह सुषुम्ना के माध्यम से सभी चक्रों को जाग्रत करते हुए ऊपर की ओर बढ़ता है।

साधकों ने सुषुम्ना को एक प्रकाशमान स्तम्भ के रूप में माना है। एक सुनहरे पीले सर्प के रूप में देखा है। कभी उन्होंने इसे एक दस इंच लम्बे चमकीले काले सर्प के रूप में जिसकी ऑखे अंगारों की तरह लाल है। जीभ बाहर निकली है, और जीभ में बिजली सी चमक रही है। उसे रीढ़ में विचरण करते देखा है। कुण्डलिनी साढ़े तीन फेरे मारे सुषुप्त अवस्था में पड़ी है। साढ़े तीन फेरे का तात्पर्य यहॉ ॐ की तीन मात्राओं से है। जो तीनों कालों जो भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों गुणों सतोगुण, रजोगुण तमोगुण, चेतना के तीन अनुभव जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों लोकों धरती आकाश पाताल तीन प्रकार के अनुभव स्वानुभूतिमूलक, इन्द्रियानुभव एवं अनुभवरहितता की प्रतीक है और आधी कुण्डली उस स्थिति की प्रतीक है जहॉ न जाग्रत अवस्था है और न ही सुषुप्ता अवस्था और न ही स्वप्न अवस्था इस प्रकार यह साढ़े तीन कुण्डली विश्व के समस्त अनुभवों को इंगित करती है।

उपनिषदों में भी कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन किया गया है। कठोपनिषद में यम-नचिकेता संवाद में पंचाग्नि विद्या के रूप में इसका वर्णन किया गया है।

श्वेताश्वरतर उपनिषद में कुण्डलिनी शक्ति को योगाग्नि कह कर सम्बोधित किया गया है।

महान साधिका मैडम ब्लेवेटस्की ने इसे 'कास्मिक इलेक्ट्रिसिटी' कहा है। ईसाईयों द्वारा बाइबिल में इसे 'साधको का पथ' या 'स्वर्ग का रास्ता' कहा गया है तथा कुण्डलिनी जागरण को बताया गया है।

तंत्र में कुण्डलिनी को विश्व जननी और सृष्टि संचालिनी शक्ति कहा गया है। इन सभी कथनों से यह स्पष्ट होता है कि हमारे आध्यात्मिक जीवन में जो कुछ भी होता है। वह सभी कुण्डलिनी जागरण से ही सम्बन्धित होता है। क्योकि किसी भी प्रकार की योग साधना का सफल होना कुण्डलिनी शक्ति के जागरण द्वारा ही संभव है।

यह कुण्डलिनी जागरण बहुत आसान भी है और दुष्कर्म भी है क्योंकि यदि कुण्डलिनी शक्ति को नियन्त्रित व जाग्रत किया जाए तो यही कुण्डलिनी शक्ति दुर्गा का सौम्य रूप धारण कर जीवन को उत्कृष्ट बना देती है। परन्तु यदि इसे नियंत्रित न किया जा सका तो वही कुण्डलिनी शक्ति महाकाली बनकर प्रलय के दृश्य उपस्थित करती है। कुछ लोग मानसिक रूप से स्थिर ना होने के कारण अपने अचेतन के सम्पर्क में आ जाते हैं। जिस कारण उन्हें अशुभ व भयानक दृश्य

दिखाई देने लगते है। परन्तु निरन्तर अभ्यास के द्वारा जब अचेतन शक्ति का जागरण होता है, तो यह शक्ति उर्ध्वगामी हो आनन्दप्रदायिनी, उच्च चेतना दुर्गा का सौम्य रूप धारण कर लेती है।

12.6 कुण्डलिनी जागरण के उपाय

कुण्डलिनी शक्ति के बारे में यह तो निश्चित ही है कि इस कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा मनुष्य की चेतना स्तर ऊँचा उठाया जा सकता है, साधन अपनी प्रतिभा को इतना विकसित कर सकता है कि अपने प्राकृतिक स्वभाव से निकटतम सम्बन्ध स्थापित कर वैश्विक चेतना से एकाकार हो सकता है।

तत्र के अनुसार कुण्डलिनी को कई तरह के उपायो द्वारा जाग्रत किया जा सकता है एक उपाय को छोड़कर, क्योंकि वह है- जन्म से यदि किसी की कुण्डलिनी जाग्रत हो। कुण्डलिनी जागरण के उपायों का वर्णन इस प्रकार है।

12.6.1 जन्मजात कुण्डलिनी जागरण – आत्मज्ञान सम्पन्न माता-पिता के घर में ऐसी सन्तान हो सकती है जिसकी कुण्डलिनी जन्म से ही जाग्रत हो। अगर शिशु का जन्म आंशिक जाग्रति के साथ हो तो उसे संत कहा जाता है। परन्तु कुण्डलिनी के पूर्ण जाग्रति होने पर उसे अवतार या भगवान के पुत्र के रूप में जाना जाता है।

जिस बच्चे के जन्म से कुण्डलिनी जाग्रत होती है, उसके विचार उच्च तथा स्पष्ट दृष्टिकोण वाले होते है, यह जीवन के प्रति पूर्णरूप से अनासक्त भाव वाला होता है, उसका दृष्टिकोण असामान्य होता है।

योगाभ्यास के द्वारा मानव अपने जीवन के स्तर को उच्च कर सकता है, क्योंकि मनुष्य के जीन द्वारा ही कलाकारों, बौद्धिक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों, खोजकर्ताओं, वैज्ञानिकों आदि की रचना की जा सकती है, तो इसी प्रकार उच्च योगाभ्यास द्वारा जागृत कुण्डलिनी सम्पन्न व्यक्तियों की रचना भी की जा सकती है।

12.6.2 मंत्र द्वारा कुण्डलिनी जागरण – कुण्डलिनी जागरण के दूसरे उपाय में नियमित मंत्र जप आता है। मंत्र जाप एक सरल, निरापद एवं बहुत-ही शक्तिशाली मार्ग है, परन्तु यह साधना ऐसी साधना है जिसमें समय अधिक लगता है साथ ही इसमें धैर्य की आवश्यकता होती है।

इसमें सबसे पहले योग के किसी योग्य गुरू से मंत्र लिया जाता है, जो साधना के मार्ग में पथ प्रदर्शित कर सके। किसी भी मंत्र के निरन्तर अभ्यास से आन्तरिक शक्ति में वृद्धि होती है। इससे जीवन में तटस्थता आती है। जिस प्रकार किसी शान्त जलाशय में कंकड़ फेका जाए तो उसमें तरंगे उत्पन्न होती है। उसी प्रकार मंत्र को लाखों करोड़ों बार दोहराने से मंत्र रूपी समुद्र में तरंगे उठती है और उसका प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है। इससे शारीरिक,मानसिक और आध्यात्मिक तीनों स्तरों की शुद्धिकरण की प्रक्रिया होती है। मंत्र को कीर्तन के द्वारा जोर से गाकर भी या मानसिक रूप से श्वास के साथ भी दोहराया जा सकता है। सबसे सौम्य तरीका कुण्डलिनी जागरण का यही है।

12.6.3 तपस्या द्वारा कुण्डलिनी जागरण – तपस्या द्वारा कुण्डलिनी जागरण तीसरा उपाय है तपस्या को वह चिता या अग्नि कहा जाता है। जिसमें तपकर हमारे शरीर के मन के कल्मश कसायों के निष्कासन की प्रक्रिया शुरू होती है। तपस्या के द्वारा शुद्धिकरण होता है।

तपस्या एक मनोभावनात्मक या मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है तपस्या का मनोवैज्ञानिक पहलू बहुत ही महत्वपूर्ण है – यदि व्यक्ति इन्द्रियों व भौतिक सुख सुविधा, भोग इत्यादि से तृप्त रहती है तो उसके मस्तिष्क तथा नाड़ी संस्थान से कमजोर रहने के कारण उसका चेतना का, ऊर्जा का स्तर भी कम पाया जाता है। ऐसी स्थिति में तप का मार्ग, अत्यन्त उपयोगी व महत्वपूर्ण फलदायी होता है, और कुण्डलिनी जागरण का मार्ग प्रशस्त करता है।

इस तपस्या द्वारा होने वाले परिवर्तन प्रारम्भ में अपेक्षाकृत भयानक होते हैं। आरम्भ में आसुरी शक्तियों की प्रबलता होती है। कभी-कभी अत्यन्त भय लगता है, संसार के प्रति असिक्त, काम वासना क्रशकाय शरीर, ये लक्षण उभर कर आते हैं। परन्तु सिद्धियों के प्राकट्य होने पर इन्द्रियों से परे अनुभव अर्थात दूसरे के विचार जाने जा सकते है।

12.6.4 जड़ी बूटियों द्वारा जागरण - जड़ी बूटियों द्वारा जागरण चौथा उपाय है। औषधि द्वारा कुण्डलिनी जागरण शक्तिशाली और सबसे आसान उपाय है, किन्तु इसकी जानकारी कम ही लोगों को है तथा यह उपाय सभी लोगों के लिए है भी नहीं, इन औषधियों का प्रयोग गुरू के निर्देशन में ही किया जना चाहिए। क्योंकि इसके बहुत ही दुष्प्रभाव भी देखने को मिलते है। यही कारण है कि औषधि बहुत ही खतरनाक तथा अविश्वसनीय उपाय माना जाता है।

प्राचीन काल में सोण नामक एक द्रव का उल्लेख वेदों में मिलता है, यह रस एक लता से कृष्ण पक्ष में विशेष दिनों में निकाला जाता था। इसे कुछ दिनों तक मटके में दबाकर पूर्णिमा के दिन निकाल कर तथा छान कर प्रयोग किया जाता था। इससे परम चेतना के जागरण का अनुभव होता था साधको ने औषधियों के प्रयोग से पर्वतों दिव्य आत्माओं, तीर्थ स्थलों, महात्माओं के दर्शनों को प्राप्त किया था।

औषधि द्वारा कुण्डलिनी जागरण में शरीर का तापमान गिर जाता है, चयापचय मंद पड़ जाता है। शरीर स्थिर हो जाता है, इस सभी के परिणामस्वरूप स्नायुओं के कार्य करने के ढंग में परिवर्तन हो जाता है। और इस प्रकार का जागरण अस्थायी होता है, अत: यह पद्धति लुप्त सी हो गयी, इसी कारण यह उपाय आज भी गुप्त है।

12.6.5 राजयोग द्वारा – कुण्डलिनी जागरण राजयोग द्वारा कुण्डलिनी जागरण पॉचवी विधि है मन को केन्द्रित करना, जब तक कर्मयोग और भक्तियोग द्वारा कर्मो का क्षय और भावनाऍं शुद्ध न हो जाए तब तक राजयोग द्वारा कुण्डलिनी जागरण नहीं हो सकता, क्योंकि यह बहुत ही कठिन विधि है। इसमें अत्यधिक धैर्य, अनुशासन, समय एवं सुरक्षा की आवश्यकता होती है।

राजयोग द्वारा व्यक्तिगत चेतना वैश्व चेतना में पूर्णरूप विलीन हो जाती है।

हठयोग व राजयोग के अभ्यास द्वारा स्थायी व सूक्ष्म अनुभव देखने को मिलते है। साधक में परिवर्तन होने लगते हैं। भूख, काम- वासनायें छटने लगती है। सांसारिक, भौतिक पदार्थो से विरक्ति होती है, और अनासक्त भाव जागने लगता है।

12.6.6 प्राणायाम द्वारा कुण्डलिनी जागरण – कुण्डलिनी जागरण का छटा उपाय प्राणायाम है। जब कोई साधक किसी शांत व ठंडे स्थान पर गहन प्राणायाम का अभ्यास करता है। जीवन यापन के लिए जितना उचित हो उतना आहार लेना हो तब एकाएक विस्फोट की भॉति कुण्डली जागरण होता है, प्राणायाम द्वारा कुण्डलिनी तेजी से सहस्रार तक तुरन्त पहुँच जाती है।

प्राणायाम एक प्रकार से यौगिक अग्नि को प्रज्जवलित करने के लिए है, यह केवल श्वास का अभ्यास नहीं है। इस अग्नि द्वारा कुण्डलिनी जाग्रत होती है लेकिन प्राणायाम का अभ्यास बिना पर्याप्त तैयारी के किया जाये तो उत्पादित ऊर्जा उपर्युक्त केन्द्रों में नहीं पहुँच पाती है, इसलिए प्राण पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए प्राण को मस्तिष्क के सामने हिस्से में पहुँचाने के लिए ही तीनों बंधों मूल बंध, जालन्धर, उड्डियान बंध का अभ्यास किया जाता है।

प्राणायाम का अभ्यास मन पर स्वत: ही नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है। किन्तु प्राणायाम से हुए परिवर्तन से अतिरिक्त ऊर्जा का उत्पादन होता है, सूक्ष्म शरीर का तापमान भी गिर जाता है, और मन का शीघ्र ही रूपान्तरण होता है। इस प्रकार कुण्डलिनी जागरण के कुछ विशेष अनुभव होते है। उन लोगों को डरावने अनुभव होते है जो मानसिक शारिरीक, दार्शनिक, भावनात्मक तौर पर तैयार नहीं होते हैं।

12.6.7 क्रियायोग द्वारा कुण्डलिनी जागरण – आधुनिक मनुष्य के लिए व्यवहारिक व सबसे सरल विधि है, सात्विक व्यक्ति राजयोग द्वारा कुण्डली जाग्रत कर सकता है किन्तु चंचल मन एवं राजसिक व्यक्ति ऐसा करने में सफल नहीं हो पाते है। जो जोग ग्लानि, कुंठा, तनाव के शिकार होते है ऐसे लोग क्रियायोग के द्वारा कुण्डलिनी जाग्रत कर सकते है। यह उनके लिए उत्तम और प्रभावशाली विधि है।

क्रियायोग द्वारा कुण्डली जागरण विस्फोटक न होकर के सौम्य, शालीनता के साथ धीरे-धीरे होता है।

क्रियायोग द्वारा व्यक्ति अपने को कभी गलत समझता है कभी महान समझता है। वह कभी संसार के प्रति आकर्षित होता है कभी उसे विरक्ति होती है। कभी भूखों की तरह खूब खाने लगता है तो कभी कई दिनों तक भूखा भी रहता है। कभी उसे बहुत नींद आती है कभी रात में भी जागरण करता है। सुप्तावस्था व जागरण के ये लक्षण क्रियायोग द्वारा जागरण में दिखाई देते हैं।

12.6.8 तंत्र द्वारा कुण्डलिनी जागरण – जो शिव और शक्ति के सिद्धान्तों को समझते है। जिन्होंने वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली हो। वे ही केवल इस विधि के अधिकारी होते हैं। तांत्रिक दीक्षा द्वारा कुण्डली जागरण बहुत ही गुप्त माना जाता है इस उपाय द्वारा कुण्डली जागरण में गुरू के मार्गदर्शन में कुण्डली जाग्रत होती रहती है। चेतना के विस्तार होने के साथ-साथ परिवर्तन होता रहता है इस विशेष विधि में सिर्फ तीन सैकेण्ड में कुण्डली का जागरण और उसका सहस्रार गमन एक साथ ही होते है। इस विधि में बहुत ही कम समय लगता है। परन्तु इस पथ के योग्य व्यक्तियों का मिलना कठिन है। क्योंकि संसार में ऐसे लोग कुछ ही मिलेंगे जिन्होंने काम-वासनाओं को परास्त कर उन पर विजय प्राप्त कर ली हो।

12.6.9 शक्तिपात द्वारा कुण्डलिनी जागरण – जागरण की नयी विधि शक्तिपात द्वारा जागरण है है इसका प्रयोग गुरू द्वारा किया जाता है। इसके द्वारा जागरण अति शीघ्र क्षणिक व अस्थायी होता है। जब गुरू इसके द्वारा जागरण करता है तब समाधि का अनुभव होने लगता है। व्यक्ति बिना सीखें सभी आसन, प्राणायाम, मुद्रा व बंध इत्यादि का अभ्यास करने लगता है। उसके मंत्र स्वत: सिद्ध हो जाते है शास्त्रों का ज्ञान स्वत: हो जाता है, त्वचा कोमल, कान्तियुक्त व स्थूल शरीर में परिवर्तन होने लगते हैं। ऑखे दिव्य व चमकीली तथा शरीर से विशिष्ट प्रकार की गंध उठने लगती है।

शक्तिपात स्थूल शरीर से ही नहीं किया जा सकता है। इसे स्पर्श, माला, फूल, रूमाल, फल अथवा खाने की कोई वस्तु इत्यादि के माध्यम से किया जा सकता है। इसमें गुरू चेतना के विकास के स्तर को ध्यान में रखकर शक्तिपात करता है। यह एक आध्यात्मिक उन्नति को प्रकट करता है।

12.6.10 आत्मसमर्पण द्वारा कुण्डलिनी जागरण – अभी तक नौ मान्यता प्राप्त विधियों का वर्णन किया गया है – परन्तु इससे अलग एक दसवॉ रास्ता भी है इसके लिए साधना विशेष की आवश्कता नहीं होती। प्रकृति पर सब कुछ समर्पित कर दिया जाता है। यह भाव रखकर कि जागरण प्रकृति स्वयं करा रही है इसके लिए मैं उत्तरदायी नहीं हूँ। जो मिल रहा है उसी में सन्तोष करना, स्वीकार करना, इस मार्ग को आत्मसमर्पण के नाम से जाना जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :-

1. रिक्त स्थान भरिए

(क) नाड़ी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत व्याकरण के .....धातु से हुई है।

(ख) शिव संहिता के अनुसार नाभि क्षेत्र से.....नाड़ियां निकलती है।

(ग) वशिष्ट संहिता में.....नाड़ियों का वर्णन मिलता है।

(घ) इडा नाड़ी.....का प्रतीक है।

(ड.) प्राण शक्ति प्रवाहिनी .....नाड़ी को माना जाता है।

2. सत्य/असत्य बताइये

(क) चक्र का शाब्दिक अर्थ वृत्त माना जाता है।

(ख) मूलाधार चक्र में दलबीज मंत्र वं है।

(ग) मणिपुर चक्र में दस दल कमल के है।

(घ) विशुद्धि चक्र का स्थान कण्ठ प्रदेश है।

(ड.) आज्ञा चक्र का सम्बन्ध पीनियल ग्रन्थि से है।

(च) श्वेताश्वतर उपनिषद में कुण्डलिनी शक्ति की योगाग्नि कहकर सम्बोधित किया गया है।

12.7 सारांश

इस इकाई में आपने नाड़ियों, चक्रों तथा कुण्डलिनी शक्ति का अध्ययन किया। यौगिक दृष्टि से अगर देखे तो षटचक्र तथा कुण्डलिनी शक्ति से मानव में अन्तरनिहित शक्ति, साधना की सुनिश्चित तात्विक महत्ता, आत्मा की असीम सम्भावनाओं का जाल फैला है भले ही नाड़ियों की संख्या लाखों में बताई गई है पर तीन प्रमुख नाड़ियों इडा, पिगला व सुषुम्ना की महत्ता यौगिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। जब प्राण प्रवाह सूर्य स्वर अर्थात दाहिनी नासिका में चलता है तो उस समय पिंगला नाड़ी क्रियाशील रहती है। जब प्राण प्रवाह चन्द्र स्वर अर्थात बॉयी नासिका में चलता है तो उस समय इड़ा नाड़ी क्रियाशील रहती है। जब प्राण प्रवाह में सामंजस्य रहता है तो उस समय सुषुम्ना नाड़ी क्रियाशील रहती है जहॉ एक ओर इडा व पिंगला स्थूल शक्ति का निर्माण करती है वही सुषुम्ना द्वारा सूक्ष्म शक्ति का निर्माण होता है और कुण्डलिनी शक्ति षटचक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार शिव में जाकर समाहित हो जाती है तथा सहज ही साधक को अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है।

12.8 शब्दावली

इडा – चन्द्र नाड़ी, बॉया स्वर

पिंगला – सूर्य नाड़ी, दायॉ स्वर

अधोभाग – मूल भाग, गुदा प्रदेश

उष्ण – गर्म

मूल – जड़

कषाय – कड़वा

सहस्रार – हजार

सुषुप्त - सोई हुई

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क. नाड् ख. साढे तीन लाख

ग. 14 घ. चन्द्र

ड. पिंगला

2. क. सत्य ख. असत्य ग. सत्य

घ. असत्य ड. सत्य च. सत्य

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सरस्वती, सत्यानन्द (2002) कुण्डलिनी योग, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर बिहार।

2. सरस्वती, सत्यानन्द (1994) स्वरयोग, विहारयोग विद्यालय मुंगेर बिहार।

3. शर्मा, राघवेन्द्र (2006) शिवसंहिता, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली।

4. दिगम्बर (1984) वशिष्ट संहिता, कैवल्य घाम योग मन्दिर समिति पुणे।

5. प्रकाशानन्द (2002) कुण्डलिनी शक्ति, सिद्धयोग कुण्डलिनी ज्ञान प्रशिक्षण जागरण एवं षटचक्र शिविका, पिथौरागढ़।

6. सरस्वती, शिवानन्द (2007) कुण्डलिनीयोग, डिवाइन लाइफ सोसायटी, उत्तराखण्ड।

7. शर्मा श्री राम, (2004) गायत्री महाविज्ञान, युग निर्माण योजना गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

8. कुमार कामाख्या, जोशी डा0 भानु (2009) योग रहस्य स्टैण्डर्ड पब्लशर्स दिल्ली।

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. नाड़ी शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए प्रमुख नाड़ियों का वर्णन कीजिए ?

2. चक्र की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए विविध चक्रो का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

3. कुण्डलिनी शक्ति से आप क्या समझते है कुण्डलिनी जागरण के उपायो की चर्चा कीजिए।

इकाई 13 – आसनों का अर्थ, परिभाषायें उद्देश्य, वर्गीकरण एवं सिद्धान्त, हठयोग प्रदीपिका में वर्णित आसनों का वर्णन

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 आसन का अर्थ एवं परिभाषायें

13.4 आसनों का उद्देश्य

13.5 आसनों का वर्गीकरण

13.6 आसनों के सिद्धान्त

13.7 हठ प्रदीपिका में वर्णित आसनों का वर्णन

- 13.7.1 स्वस्तिकासन
- 13.7.2 गोमुखासन
- 13.7.3 वीरासन
- 13.7.4 कूर्मासन
- 13.7.5 कुक्कुटासन
- 13.7.6 उत्तान कूर्मासन
- 13.7.7 धनुरासन
- 13.7.8 मत्स्येन्द्रासन
- 13.7.9 पश्चिमोतानासन
- 13.7.10 मयूरासन
- 13.7.11 शवासन
- 13.7.12 सिद्धासन
- 13.7.13 पद्मासन
- 13.7.14 सिंहासन
- 13.7.15 भद्रासन

13.8 सारांश

13.9 शब्दावली

13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.12 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

हठयोग के साधनों में आसनों का महत्वपूर्ण स्थान है। आसनों का शरीर पर सार्थक व सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वर्तमान में आसनों पर हो रहे अनेकानेक शोध अनुसंधान आसनों की उपयोगिता को शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के परिपेक्ष्य में इनकी उपयोगिता को प्रतिपादित करते है। आसनों का सीधा सम्बन्ध शारीरिक स्वास्थ्य से है पर इसके सूक्ष्म प्रभाव हमारे मन पर भी पड़ते है। आसनों की सिद्धि होने पर भी साधक कैवल्य की प्राप्ति भी कर सकता है। प्रस्तुत इकाई में आसनों का अर्थ परिभाषा, उद्देश्य, वर्गीकरण तथा आसनों के सिद्धान्त के साथ-साथ हठयोग की महत्वपूर्ण पुस्तक हठप्रदीपिका में वर्णित आसनों का वर्णन किया जा रहा है। पाठको को चाहिए कि आसनों की सावधानियों तथा सिद्धान्तों को मध्यनजर रखते हुए इनका अभ्यास एक कुशल मार्गदर्शन में करें।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप -

- आसनों के अर्थ को समझ सकेंगे।
- जान सकेंगे कि आसनों को विविध ग्रन्थों में कैसे परिभाषित किया है।
- आसनों के उद्देश्य को समझ सकेंगे।
- आसनों के वर्गीकरण तथा सिद्धान्तों का विश्लेषण करेंगे।
- हठप्रदीपिका में वर्णित 15 आसनों का अध्ययन करेंगे।

13.3 आसन का अर्थ एवं परिभाषायें

आसन के अनेकानेक अर्थ है- जैसे बैठना, शरीर के अंगों की एक विशेष स्थिति या बैठने का ढंग, ठहर जाना, शत्रु के विरूद्ध किसी स्थान पर डटे रहना, हाथी के शरीर का अगला भाग, घोड़े का कन्धा, आसन अर्थात जिसके ऊपर बैठा जाता है।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार आसन शब्द अस धातु से बना है जिसके दो अर्थ है :-

1. बैठने का स्थान :- जैसे दरी, मृग छाल, कालीन, चादर

2. शारीरिक स्थिति :- अर्थात शरीर के अंगों की स्थिति

प्रिय विद्यार्थियों अगर आप उपरोक्त दोनों अर्थो का विवेचन करे तो आसन एक ऐसी शारीरिक स्थिति का नाम हे जो मृगछाल, दरी या कालीन पर बैठकर की गई है।

हम जिस स्थिति में रहते है वह आसन उसी नाम से जाना जाता है। जैसे मुर्गे की स्थिति को कुक्कुटासन, मयूर की स्थिति को मयूरासन। आसनों की विविध ग्रन्थों में अलग-अलग तरीके से परिभाषित किया है।

(क) महर्षि पतंजलि के अनुसार :- महर्षि पतंजलि योगसूत्र के साधन पाद में आसन को परिभाषित कर कहते है।

'स्थिरसुखमासनम्' – योगसूत्र 2/46

अर्थात स्थिरता पूर्वक रहकर जिसमें सुख की अनुभूति हो वह आसन है।

पाठको उक्त परिभाषा का अगर विवेचन करे तो हम कह सकते है शरीर को बिना हिलाए, डुलाए अथवा चित्त में किसी प्रकार का उद्वेग हुए बिना चिरकाल तक निश्चल होकर एक ही स्थिति में सुखपूर्वक बैठने को आसन कहते है। इस परिभाषा से स्पष्ट हो रह है केवल ध्यानात्मक आसन ही इस परिधि में आते दिखाई देते है किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। व्यायामात्मक आसन व विश्रामात्मक आसन भी इसी परिभाषा के अन्तर्गत आते है क्योंकि वे आसन भी शरीर को सुखपूर्वक बैठने के लिए तैयार करते है। उन्हीं के द्वारा शरीर निरोग और देर तक बैठने का अभ्यस्त होता है।

(ख) तेजबिन्दु उपनिषद के अनुसार :- जिस स्थिति में बैठकर सुखपूर्वक निरन्तर परम ब्रहम का चिन्तन किया जा सके उसे आसन कहते है।

''सुखनैव भवेत् यस्मिन जस्रं ब्रहमचिन्तनम्''

(ग) श्रीमदभगवद्गीता के अनुसार :- भगवान कृष्ण कहते है –

तत्रैकाग्रं मन: कृत्वा यतचिन्तेन्द्रियक्रिय:

उपविश्यासने युज्जयाधोगमात्मविशुद्धये 6/12 गीता

अर्थात उस आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्त:करण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करें।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिर:

समप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिश श्रानवलोकयन् 6/13 गीता

काया सिर व गले के समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर, अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर किसी अन्य दिशा को न देखते हुए किया अभ्यास आसन है।

(घ) चरणदास जी के अनुसार :- चरणदास जी कहते है – ''चौरासी लाख आसन जानो योनि की बैठक पहचानो'' अर्थात चौरासी लाख जीव-जन्तु जिस अवस्था में बैठते है। वह आसन उस नाम से जाना जाता है।

(ड.) गोरक्षसंहिता के अनुसार :- गोरक्षसंहिता में महर्षि गोरक्षनाथ ने कहा है –

आसनानि तुतावन्तो पावन्तो जीव जन्तव: - अर्थात जितने जीव जन्तु जिस आसन में बैठते है वह उसी नाम से जाने जाते है।

(च) स्वात्माराम जी के अनुसार :- स्वामी स्वात्मा राम ने हठप्रगदीपिका में कहा है –

''कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाड्.गलाघवम्" (1/17)

अर्थात आसन के द्वारा स्थिरता (धैर्य) आरोग्य व शरीर तथा मन को लाघव की प्राप्ति होती है।

(छ) तंत्र शास्त्र के अनुसार :- आसनों के माध्यम से व्यक्ति अपने शरीर एवं मन की सीमाओं को बढ़ाता है।

(ज) आचार्य नारायण तीर्थ कहते है जो स्थिर निश्चल और सुखकर होता है वह आसन है।

विविध परिभाषाओं का अध्ययन करने के बाद हम कह सकते है कि शरीर, मन व आत्मा की सरल व सुखद अवस्था का नाम आसन है।

13.4 आसनों का उद्देश्य

आसनों का मुख्य उद्देश्य शारीरिक कष्टों व मानसिक उद्वेगों से मुक्ति दिलाना है। आसनों से शरीर लचीला बन जाता है। शरीर की मांसपेशियाँ खिंचाव आने से उनका लचीलापन बढ़ जाता है तथा सक्रियता में वृद्धि होती है जिससे सम्पूर्ण तंत्रिकातंत्र स्वस्थ हो जाता है। इस प्रक्रिया से गुजरने के बाद शरीर और मन के क्रियाकलापों में सामंजस्य तथा एकरूपता आ जाती है जिसके कारण साधक की कार्यक्षमता बढ़ जाती है। इसलिए आसनों का अभ्यास आवश्यक कहा गया है। 'आसनेन रुजो हन्ति' कहकर आसनों का 'रोग निवारक रूप' प्रस्तुत किया गया है क्योंकि सम्पूर्ण शरीर को सामान्य रूप से विकसित करने के कारण विषाक्त द्रव्यों से मुक्ति मिल जाती है। लेकिन आसन स्वस्थ शरीर को रोगरहित रखते हैं। इसका यह 'रोगों से बचाव का रूप' और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। रोग आए ही नहीं, यह अच्छा है और रोग आ जाए तो दूर भी किया जा सकता है। 'आसनेन भवेद् दृढम्' आसन से शरीर दृढ़ होता हैं, मजबूत होता है तथा बल की वृद्धि होती है। अंगों का समान रूप से विकास होता है। अतः स्वस्थ शरीर के लिए आसन आवश्यक है।

आसनों को शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा तथा रोग हो जाने पर उसकी चिकित्सा के लिए प्रयोग करना तो महत्वपूर्ण है ही, इसका आध्यात्मिक पक्ष और भी अधिक महत्वपूर्ण है। आसनों का उपयोग किए बिना साधना सम्पन्न नहीं हो सकती। शरीरस्थ चक्रों की स्थिति मेरुदण्ड के निचले सिरे से प्रारम्भ होकर ऊर्ध्वगमन करते हुए सहस्रार तक है। कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर ऊर्ध्वगमन करती है। अतः मेरुदण्ड को सीधा रखकर, गर्दन तथा सिर को भी उसी प्रकार सीधा रखने से शक्ति के ऊर्ध्वगमन में व्यवधान उत्पन्न नहीं होगा और सुगमता से लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। यही नहीं शरीर को मजबूत किए बिना बैठने से मेरुदण्ड आगे की ओर झुक जाता है तथा नींद आने लगती है। ऐसी अवस्था में ध्यान किस प्रकार किया जा सकता है लचीला मेरुदण्ड ही स्वस्थ माना जाता है। जिससे समस्त नाड़ियों के साथ सुषम्ना (जो प्रधान नाड़ी है) भी सक्रिय रहती है। अतः सुषुम्ना को गतिशील बनाए रखने के लिए भी आसन का अभ्यास अनिवार्य है। सुषुम्ना की क्रियाशीलता से साधक भौतिक जगत् के क्रियाकलापों को भी ठीक विधि से शीघ्रतापूर्वक आलस्यरहित होकर कर सकता है। अतः आसन का उपयोग इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए करना भी आवश्यक है।

13.5 आसनों का वर्गीकरण

आसनों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए इन्हें तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है-

(क) ध्यानात्मक आसन- ये वें आसन है जिनमें बैठकर पूजा-पाठ, ध्यान आदि आध्यात्मिक क्रियायें की जाती है। इन आसनों में पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन, सुखासन, वज्रासन आदि प्रमुख है।

(ख) व्यायामात्मक आसन- ये वे आसन हैं जिनके अभ्यास से शरीर का व्यायाम तथा संवर्धन होता है। इसीलिए इनको शरीर संवर्धनात्मक आसन भी कहा जाता है। शारीरिक स्वास्थ्य के संरक्षण तथा रोगों की चिकित्सा में भी इन आसनों का महत्व है।

(ग) विश्रामात्मक आसन- शारीरिक व मानसिक थकान को दूर करने के लिए जिन आसनों का अभ्यास किया जाता है, उन्हें विश्रामात्मक आसन कहा जाता है। इन आसनों के अन्तर्गत शवासन, बालासन, मकरासन, शशांकासन आदि प्रमुख है। इनके अभ्यास से शारीरिक थकान दूर होकर साधक को नवीन स्फूर्ति प्राप्त होती है। व्यायामात्मक आसनों के द्वारा थकान उत्पन्न होने पर विश्रामात्मक आसनों का अभ्यास थकान को दूर करके ताजगी भर देता है।

अभ्यास की दृष्टि से आसनों को प्रमुख रूप से चार भागों में बांटा जा सकता हैं। (1) चित लेटकर किये जाने वाले आसन, (2) पेट के बल लेटकर किये जाने वाले आसन, (3) बैठकर किये जाने वाले आसन तथा (4) खड़े होकर किये जाने वाले आसन। इनके अतिरिक्त शीर्षासन समुदाय के विपरीत स्थिति वाले आसनों का एक अन्य विभाग भी किया जा सकता है।

13.6 आसनों के सिद्धान्त

आसन योगाभ्यास के महत्वपूर्ण अंग हैं। इसलिए इन्हें करने के कुछ विशेष नियम हैं। उनके अनुसार करने पर ही आसनों से अपेक्षित लाभ प्राप्त होता है। भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं-

युक्ताहारविहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। गीता 6@17

अर्थात् जिसके आहार, विहार एवं नित्य कर्मों में युक्तता हो तथा सोना और जागना भी युक्त हो, उसके लिए यह योग दुःखों का नाश करने वाला होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि नियमपूर्वक किये जाने पर ही योग सिद्ध होता है। इसी प्रकार आसन करते समय कुछ आवश्यक सिद्धान्तों पर ध्यान देना भी आवश्यक है। जिनमें से कुछ इस प्रकार है-

1. योगासन शुद्ध एवं पवित्र स्थान पर ही करने चाहिएँ। जहाँ योगासन किये जायें वहाँ पर धूल धुआँ, दुर्गन्ध आदि नहीं होने चाहिए।

2. आसन सदैव खाली पेट करने चाहिए। यदि भोजन करने के बाद करने हो तो न्यूनतम लगभग चार घण्टे पश्चात् ही आसन करने चाहिए।

3. योगासनों का अभ्यास प्रातःकाल करना ही श्रेयस्कर है क्योंकि उस समय वातावरण शान्त एवं शुद्ध होता है। किन्तु दिन भर कार्य करके शरीर खुल जाता है, अतः सायंकाल अच्छी स्थिति लग सकती है। इसलिए सायं को भी अभ्यास किया जा सकता है।

4. आसनों का अभ्यास कभी भी शीघ्रता से नहीं करना चाहिए। बल्कि धीरे-धीरे लयबद्ध रूप से ही अभ्यास करना चाहिए।

5. कठिन रोगों से पीड़ित या जिनकी शल्य क्रिया हुई हो, तुरन्त आसन नहीं करने चाहिए। गर्भवती महिलाओं भी तीन माह के बाद आसनों का अभ्यास नहीं करना चाहिए। रजस्वला होने पर भी आसन नहीं करने चाहिए। प्रसव के तीन माह पश्चात् ही आसन करें।

6. प्रारम्भ में सरल आसन करें। फिर धीरे-धीरे कठिन आसनों का अभ्यास करना चाहिए।

7. आसन करते समय पीछे की ओर झुकने वाली स्थिति में जायें तो श्वास लेते हुए जाना चाहिए और जब आगे की ओर झुकें तो श्वास निकालते हुए वापिस आना चाहिए।

8. आसन सदैव समभाव से करें। अर्थात् यदि एक आसन सामने झुकने वाला किया है तो उसके बाद पीछे झुकने वाला आसन करना चाहिए। यदि दाँयें झुकने वाला आसन किया है तो उसके पश्चात् बाँयें झुकने वाला आसन करें।

9. आसन करते समय शरीर से निकलने वाले स्वेद (पसीने) को पोंछना नहीं चाहिए वरन् उसे हाथों से मलकर सुखना चाहिए।

10. आसनों के पश्चात् शवासन आदि के द्वारा पूर्ण विश्राम करना चाहिए जिससे शारीरिक थकान दूर हो सके।

11. आसन करने के तुरन्त बाद स्नान अथवा भोजन नहीं करना चाहिए बल्कि न्यूनतम आधे घंटे के पश्चात् ही स्नान अथवा भोजन करना चाहिए।

12. जिस प्रकार आसन करते समय कुछ सिद्धान्तों का पालन किया जाता है। उसी प्रकार आसन करने से पूर्व कुछ तैयारी की आवश्यकता भी होती है। जिसका वर्णन इस प्रकार है-

13. आसन करने के लिए शुद्ध पवित्र और समतल स्थान का चयन करना चाहिए।

14. आसन के लिए दरी बिछाकर उसके ऊपर कम्बल या मोटा कालीन बिछाना चाहिए।

15. आसन से पूर्व शौच आदि क्रियाओं से निवृत्त हो जाना चाहिए।

16. आसन करने के लिए शरीर पर कम से कम वस्त्र पहनने चाहिएँ तथा वस्त्र ढीले होने चाहिए। सर्दियों में कुर्ता-पायजामा पहना जा सकता है।

17. आसन करने से पूर्व आसनों की विधि का ज्ञान होना आवश्यक है। किसी योग्य गुरु द्वारा सीखकर ही योगासन करने चाहिएँ।

उपर्युक्त सिद्धान्तों का पालन करते हुए पूर्व तैयारी के साथ किये गये योगासन ही शरीर को स्वस्थ तथा साधना के लिए उपयुक्त बनाते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. रिक्त स्थान भरिए

(क) आसन शब्द संस्कृत व्याकरण के .....धातु से बना है।

(ख) आसनों से शरीर.....बनता है।

(ग) पदमासन.....आसन की श्रेणी में आता है।

(घ) आसन सदैव.....करने चाहिए।

13.7 हठ प्रदीपिका में वर्णित आसनों का वर्णन

हठ प्रदीपिका में पन्द्रह आसनों का वर्णन किया गया है। वहाँ कहा गया है-

हठस्य प्रथमांगत्वादासनं पूर्वमुच्यते।

कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चांड्गलाघवम्।। ह०प्र० 1@17

अर्थात् हठयोग का प्रथम अंग होने से आसन का प्रथम वर्णन करते हैं। आसन प्रथम अभ्यास इसलिए कहा गया है क्योंकि आसन करने से साधक के शरीर में स्थिरता आती है, उसकी चंचलता दूर हो जाती है, पूर्ण आरोग्य प्राप्त हो जाता है तथा शरीर के अंग लघुता को प्राप्त हो जाते हैं। शरीर से तमोगुण का प्रभाव दूर होकर शरीर हल्का हो जाता है। इन आसनों का वर्णन निम्नलिखित हैं-

13.7.1 स्वस्तिकासन- इस आसन में साधक के पैरों की स्थिति स्वस्तिक चिन्ह के समान हो जाती है। इसीलिए इसका नाम स्वस्तिक आसन रखा गया है। इसका वर्णन करते हुए हठ प्रदीपिका में कहा गया है-

जानूर्वोरंतरे सम्यकृत्वा पादतलेउभे।

ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते। ह०प्र० 1@19

(LofLrdklu)

विधि- जानु (घुटने) और जंघा के मध्य दोनों पाद तलों को रखकर शरीर को सीधा रखते हुँ, सावधानीपूर्वक बैठने की स्थिति को स्वस्तिकासन कहा गया है।

लाभ- यह एक ध्यानात्मक आसन है। इसके अभ्यास से मन आसानी से एकाग्र हो जाता है।

13.7.2 गोमुखासन- इस आसन की स्थिति में दोनों घुटनों की स्थिति गाय के मुख के समान हो जाती है। इसीलिए इसका नाम गोमुखासन रखा गया है।

इसका वर्णन करते हुए हठ प्रदीपिका में कहा गया है-

सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत्।

दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं गोमुखाकृति।। ह॰प्र॰ 1@20

गोमुखासन (पहली विधि)

गोमुखासन (दूसरी विधि)

विधि- दाँयें टखने को कटि के बायें भाग में रखने पर तथा बाँयें टखने को दाँयें भाग में रखने से जो गोमुख के समान आकृति बनती है, उसे ही गोमुखासन कहा जाता है।

लाभ- इस आसन के अभ्यास से पैर पुष्ट होते हैं। अण्डकोष वृद्धि दूर होती है तथा मन शान्त होता है।

13.7.3 वीरासन- इस आसन के अभ्यास से वीरों के समान धैर्य की प्राप्ति होती है, इसलिए इसे वीरासन कहा गया है। इसका वर्णन करते हुए हठ प्रदीपिका में कहा गया है-

एकं पादमथैकस्मिन् विन्यसेदुरूणि स्थिरम्।

इतरस्मिंस्तथा चोरूं वीरासनमितीरितम्।। ह०1० 1/21

ohjklu

विधि- एक पैर बाँयीं जंघा पर और दूसरे पैर को दाँयीं जंघा पर रखकर स्थिर भाव से बैठने की स्थिति को वीरासन कहते हैं।

लाभ- इस आसन के अभ्यास से साधक के पैर पुष्ट होते हैं तथा मन वीरों के समान दृढ़ हो जाता है।

13.7.4 कूर्मासन - इस आसन में शरीर की स्थिति कछुए के समान हो जाती है, इसीलिए इसका नाम कूर्मासन रखा गया है। इसका वर्णन करते हुए हठ प्रदीपिका में कहा गया है.

गुदं निरुध्य गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण समाहितः।

कूर्मासनं भवेदेतदिति योगविदो विदुः।। ह०प्र० 1@22

(dwekZlu)

कूर्मासन- इस आसन में शरीर की स्थिति कछुए के समान हो जाती है, इसीलिए इसका नाम कूर्मासन रखा गया है।

लाभ – मधुमेय के रोगी के लिए यह आसन लाभकारी है।

13.7.5 कुक्कुटासन- जिस आसन में मुर्गे के समान शरीर की स्थिति हो जाये, उस आसन को कुक्कुटासन कहा जाता है। इसके विषय में हठ प्रदीपिका में कहा गया है-

पद्मासनं तु संस्थाप्य जानूर्वोरन्तरे करौ।

निवेश्य भूमौ संस्थाप्य व्योयमस्थं कुक्कुटासनम्।। ह०प्र० 1/23

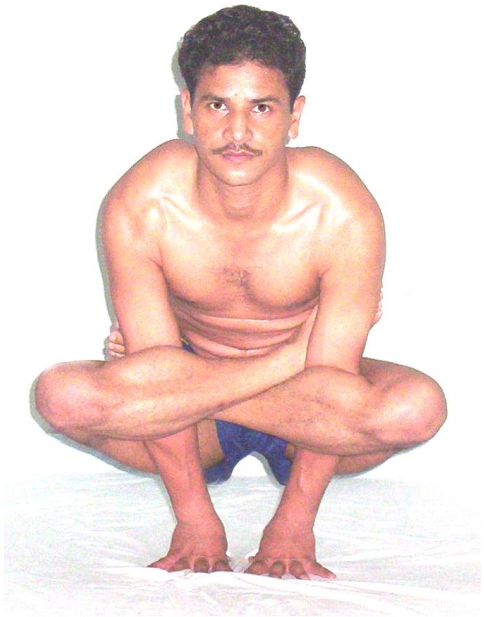

कुक्कुटासन

विधि- पद्मासन लगाकर फिर जंघाओं और घुटनों के मध्य से दोनों हाथों को निकालकर दोनों हथेलियों को भूमि पर स्थापित करते हुए आकाश में स्थिर रहने की जो स्थिति है] यही कुक्कुटासन है।

लाभ- इस आसन के अभ्यास से हाथ व पैर पुष्ट होते हैं तथा वीर्य ऊर्ध्वगामी हो जाता है। उदर के अंग पुष्ट होते हैं।

13.7.6 उत्तानकूर्मासन- कूर्मासन की स्थिति को खींचकर रखने को उत्तान कूर्मासन कहा गया है। इसका वर्णन करते हुए हठ प्रदीपिका में कहा गया है-

कुक्कुटासनबंधस्थो दोर्भ्या संबध्य कंधराम्।

शेतेकूर्मवदुत्तान एतदुत्तानकूर्मकम्।। ह॰प्र॰1@24

(mRrkludqekZlu)

विधि- कुक्कुटासन लगाकर और दोनों हाथों से ग्रीवा को भली प्रकार बांधकर कछुएँ के समान चित्त लेट जाने को कूर्मासन कहा जाता है।

लाभ- इस आसन के अभ्यास से हाथ पैर पुष्ट होने के साथ साधक इन्द्रियजयी हो जाता है।

13.7.7 धनुरासन- जिस आसन में शरीर की आकृति धनुष के समान हो जाती है, उसी को धनुरासन कहा जाता है। इसका वर्णन करते हुए हठ प्रदीपिका में कहा गया है-

पादांङ्गुष्ठौ तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणावधि।

धनुराकर्षणं कुर्यात् धनुरासनमुच्यते।। ह०प्र० 1@25

विधि- दोनों पैरों के अंगूठों को हाथों से पकड़कर कानों तक धनुष के समान खींचे, उसे धनुरासन कहते हैं।

लाभ- इस आसन के अभ्यास से हाथों व पैरों के जोड़ पुष्ट होते हैं।

(धनुरासन)

13.7.8 मत्स्येन्द्रासन- इस आसन का नाम मत्स्येन्द्रनाथ योगी के नाम पर रखा गया है। इसका वर्णन करते हुए कहा गया है-

वामोरुमूलार्पित दक्षपादं जानोर्बहिर्वेष्टितवामपादम्।

प्रगृहा तिष्ठेत्परिवर्तिताड.ग श्रीमत्स्यनाथोदितमासनं स्यात्।। ह०प्र० 1/26

(मत्स्येन्द्रासन)

विधि- बाँयीं जंघा के मूल में दाँयीं पैर को रखकर तथा बाँये पैर को दाँये घुटने के बाहर रखते हुए विपरीत हाथ से खड़े हुए घुटने को लपेटते हुए बाँयें हाथ को पीछे पीठ पर रखकर बाँयीं ओर गर्दन व कमर मोड़कर पीछे देखें। शरीर की इस स्थिति का नाम ही मत्स्येन्द्रासन है। इसी प्रकार हाथ व पैरों की स्थिति बदलकर दाँयीं ओर से करें।

लाभ- यह आसन उदर के अंगों के लिए विशेष लाभकारी है। पाचक अग्नि को तीव्र करता है तथा मधुमेह के रोग से लाभकारी है। हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है कि इसके अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है तथा साधक को ब्रह्मरन्ध से झरने वाली आनन्द क्षुधा का अनुभव होने लगता है।

13.7.9 पश्चिमोतानासन- इस आसन की स्थिति में शरीर के पृष्ठ भाग में खिंचाव उत्पन्न होता है। इसीलिए इसका नाम पश्चिमोतानासन रखा गया है। इसका वर्णन करते हुए हठ प्रदीपिका में कहा गया है-

प्रसार्य पादौ भुवि दंडरूपौ दोर्भ्यां पदाग्रद्वितयं गृहीत्वा।

जानूपरिन्यस्तललाटदेशो वसेदिदं पश्चिमतान माहुः।। ह०प्र० 1@28

(पश्चिमोतान)

विधि- दण्ड के समान दोनों पैरों को भूमि पर सामने फैलाकर बैठें। पैरों की एड़ी पंजे मिले रहें। फिर दोनों हाथों के पंजों को पकड़ते हुए माथे को घुटनों के साथ लगायें। दोनों पैर सीधे जमीन से लगे रहने चाहिएँ। शरीर की इस स्थिति का नाम ही पश्चिमोतानासन है।

लाभ- इस आसन को सब आसनों में मुख्य मानते हुए हठ प्रदीपिका में कहा गया है कि यह पश्चिमोतान आसन प्रणव रूप पवन को पश्चिमवाही करता है। अर्थात् इसके अभ्यास से प्राण सुषुम्ना नाड़ी में बहने लगता है। यह जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। पेट की बढ़ी हुई चरबी को कम करता है। अभ्यासी पुरुष को यह निरोग करता है तथा नाडियों में बल की क्षमता प्रदान करता है।

13.7.10 मयूरासन- इस आसन में शरीर की स्थिति मयूर के समान हो जाती है। इसीलिए इसे मयूरासन कहा जाता है। इसका वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

धरामवष्टभ्य करद्वयेन तत्कूर्परस्थापितनाभिपार्श्वः।

उच्चासनोदण्डवदुत्थितः खे मायूरमेतत्प्रवंदति पीठम्।। ह०प्र० 1@30

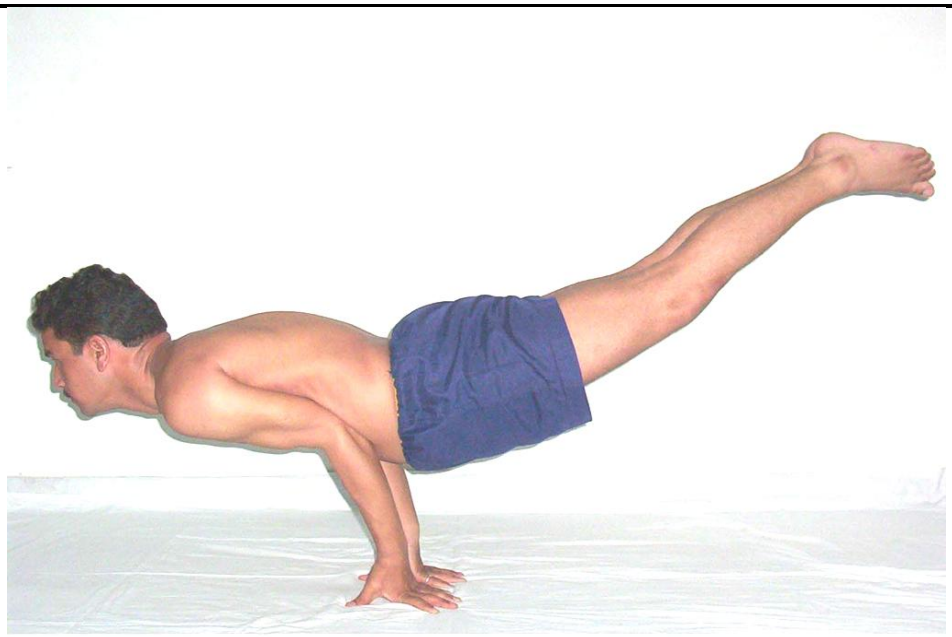

मयूरासन

विधि- दोनों हाथों को भूमि पर रखकर दोनों कोहनिया नाभि के पार्श्व भागों में लगाकर पूरे शरीर को दण्ड के समान दोनों हाथों को ऊपर उठाकर रखने से शरीर की जो स्थिति बनती है, उसी का नाम मयूरासन है।

लाभ- इसके लाभों का वर्णन करते हुए हठ प्रदीपिका में कहा गया है कि इसके अभ्यास से गुल्म, जलोदर, प्लीहा आदि रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। वात, पित्त, कफ आदि दोषों को दूर कर आलस्य को भगाता है। अधिक या विषाक्त अन्न को पचाकर पाचन अग्नि क्रिया को तीव्र करता है।

13.7.11 शवासन- इस आसन में शरीर की स्थिति शव के समान निश्चेष्ट रहती है। इसीलिए इसका नाम शवासन रखा गया है। इसका वर्णन करते हुए हठ प्रदीपिका में कहा गया है-

उत्तानं शववद्भूमौ शयनं तच्छवासनम्।

शवासनं श्रांतिहरं चित्तविश्रान्तिकारकम्।। ह०प्र० 1/32

(शवासन)

विधि- मृत के समान भूमि पर पीठ को लगाकर सीधा निद्रा के तुल्य लेटना शवासन कहलाता है इसमें शरीर निश्चेष्ट रहता है।

लाभ- इस आसन के अभ्यास से शरीर व मन की थकान दूर होकर चित्त शान्त होता है।

13.7.12 सिद्धासन- इस आसन के सिद्ध कर लेने से साधक को अनायास ही अनेक सिद्धिया प्राप्त हो जाती हैं। इसीलिए इसका नाम सिद्धासन रखा गया है। इसका वर्णन करते हुए हठ प्रदीपिका में कहा गया है-

योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढंविन्यसेत्।

मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम्।

स्थाणुः संयमितेन्द्रियऽचंलदृशा पश्येद्भ्रुवोरन्तरम्।

होतन्मोक्षकपाट भेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते।। ह०प्र० 1/35

(सिद्धासन)

विधि- बायें पैर की एड़ी को गुदा और उपस्थ के मध्य सीवनी पर दृढ़ता के साथ लगाकर तथा दाँयें पेर की एड़ी को उपस्थ इन्द्रिय के ऊपर रखकर ठोढ़ी को कण्ठकूप में लाकर दोनों भौंहों के मध्य से देखता हुआ अपनी इन्द्रियों को रोककर जब साधक निश्चल भाव से बैठता है तो उसी को योगियों ने सिद्धासन कहा है।

लाभ- हठ प्रदीपिका में कहा गया है कि साधना के लिए किये जाने वाले चौरासी आसनों में सिद्धासन सबसे मुख्य आसन है। क्योंकि इसके करने से शरीरगत बहत्तर हजार नाड़ियों का शोधन हो जाता है। जो आत्मा में ध्यान लगाने वाला मिताहारी पुरुष है, वह केवल सिद्धासन के अभ्यास से ही अनेक सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। इसके दीर्घ समय तक प्रयोग से तीनों बंध स्वयं ही लगने लगते हैं।

13.7.13 पद्मासन- इस आसन में साधक के पैरों की स्थिति कमल की पंखुडियों के समान हो जाती है। इसीलिए इसका नाम पद्मासन रखा गया है। इसका वर्णन करते हुए हठ प्रदीपिका में कहा है-

वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा

दक्षोरुपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वाकराभ्यां दृढम्।

अंड्.गुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेत्।

एतद्व्याधिवानाशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते।। ह०प्र० 1/44

पद्मासन (ज्ञान मुद्रा)

विधि- बाँयीं जंघा के ऊपर दाहिने पैर के पंजे को रखें। फिर बाँये को दाहिनी जंघा के ऊपर स्थिर रखें। तत्पश्चात् कमर के पीछे से हाथ लेते हुए दाहिने हाथ से दाहिने पैर का अंगूठा और बाँयें हाथ से बाँयें पैर का अंगूठा पकड़कर ठुड्डी को कण्ठकूप में लगाकर दृष्टि को नासाग्र रखते हुए बैठे, उसी को योगियों ने रोगों को नष्ट करने वाला पद्मासन कहा है। योगी मत्स्येन्द्रनाथ ने इसकी विधि में दोनों हाथों को ब्रह्मांजलि मुद्रा में चरणों के ऊपर रखना तथा जिह्वा को दाढ़ों में लगाकर मूल बन्ध लगाने का प्रावधान किया है। यह बद्धपद्मासन की प्रचलित विधि है। पद्मासन में हाथों को घुटनों पर ज्ञानमुद्रा या पैरों पर ब्रह्मांजलि मुद्रा में रखा जाता है।

लाभ- हठ प्रदीपिका में कहा गया है कि यह सम्पूर्ण व्याधि विनाशक है। कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर ज्ञान का उदय होता है। प्राण और अपान की एकता होती है। चित्त स्थिर हो जाता है तथा आत्म साक्षात्कार होता है।

13.7.14 सिंहासन- इस आसन के अभ्यास से साधक सिंह के समान बलवान व निडर हो जाता है। इसीलिए इसका नाम सिंहासन रखा गया है। इसका वर्णन करते हुए हठ प्रदीपिका में कहा गया है-

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोःक्षिपेत्।।

दक्षिणे सव्यगुल्फं तु दक्षगुल्फं तु सव्यके।। ह०प्र० 1@50

हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य स्वाङ्गुली: संम्प्रसार्यच।।

व्यात्तवक्त्रो निरीक्षेत् नासाग्रं तु समाहितः।। ह०प्र० 1@51

विधि- अण्डकोषों के नीचे सीवनी नाड़ी के ऊपर दाहिने और बाँयें पैर की एड़ी को दृढ़ता से लगाई। इसी प्रकार बाँयी और दाहिनी एड़ी को लगायें और घुटनों के ऊपर हथेलियों को दृढता के साथ लगाकर हाथों की अंगुलियों को फैलाकर जिह्वा को बाहर निकालकर दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर स्थिर रखते हुए बैठें। योगियों ने इस स्थिति को सिहांसन कहा है।

(सिहांसन)

लाभ- हठ प्रदीपिका में कहा है कि यह आसन सर्वोत्तम आसन है। यह तीनों बंधों को प्रकट करने वाला आसन है।

13.7.15 भद्रासन- इस आसन का अभ्यास गोरक्ष आदि महान् योगी एवं भद्र पुरुषों ने किया है, इसीलिए इसका नाम भद्रासन पड़ा। इसी को कुछ विद्वान् गोरक्षासन भी कहते हैं। इसका वर्णन करते हुए कहा गया है-

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पाश्र्वयोः क्षिपेत्।

सव्यगुल्फं तथा सव्ये दक्षगुल्फं तु दक्षिणे।। ह०प्र० 1/53

पार्श्वपादौ च पाणिभ्यां दृढं बद्ध्वा सुनिश्चलम्।

भद्रासनं भवेदेतत्सर्वव्याधि विनाशनम्।। ह०प्र० 1/54

(भद्रासन)

विधि- वृषणों के नीचे सीवनी वनी नाडी के दोनों ओर टखनों को इस प्रकार रखें जिसमें दाहिना टखना दायीं ओर और बाँयां टखना बाँयी ओर लगा रहे तथा दोनों हाथों से पैरों के पंजों को इस प्रकार पकड़कर रखें कि उनके तल व अंगुलियाँ मिले रहें। ऐसी स्थिति में निश्चल बैठना ही भद्रासन या गोरक्षासन कहा जाता है।

लाभ- हठ प्रदीपिका में कहा है कि यह आसन समस्त नाड़ियों की शुद्धि करने वाला और समस्त व्याधियों का नाश करने वाला है।

नोट :- उपरोक्त विविध आसनों की विधि हठप्रदीपिका के अनुसार बताई है। वर्तमान में कई विद्वानों ने इन विधियों को सरलता व सहजता से बदल कर बताया है। जिज्ञासु पाठको को चाहिए कि उचित मार्गदर्शन में इनका अभ्यास करें।

अभ्यास प्रश्न :-

2. एक शब्द में उत्तर दीजिए ?

(क) हठप्रदीपिका में कुल कितने आसनों का वर्णन किया है।

(ख) किसी एक ध्यानात्मक आसन का नाम लिखिए।

(ग) किस आसन को करने से साधक को अनायास ही अनेक सिद्धियों की प्राप्ति होती है।

(घ) किसी एक विश्रान्तिकारक आसन का नाम लिखिए।

(ड.) किस आसन को करने से शरीर की स्थिति मयूर के समान हो जाती है।

(च) हठ प्रदीपिका के किस अध्याय में आसनों का वर्णन किया गया है।

13.8 सारांश

आधुनिक भौतिकवादी प्रगतिशील के वैज्ञानिक युग से जीवन तेजी से विलासिता की ओर बढ़ता जा रहा है। शारीरिक श्रम नहीं के बराबर रह गया है। अधिकांश कार्य मशीनों से होने के कारण आज का मनुष्य मशीनों पर निर्भर हो गया है। शारीरिक श्रम का अभाव तथा आलस्यपूर्ण जीवन ही आज आधुनिकता का परिचायक बन गया है। आसन हमारे शरीर, मन और मस्तिष्क को प्रत्यक्षत: प्रभावित करते है। इसलिए आसनों के द्वारा निश्चित रूप से जीवन की वर्तमान धारा को बदला जा सकता है और जीवन को प्रकृति से पूर्णरूपेण जोड़ा जा सकता है।

13.9 शब्दावली

कैवल्य – मोक्ष, समाधि

सामंजस्य - समानता, एकरूपता

विषाक्त – जहरीला, अपशिष्ट

मेरूदण्ड - रीढ की हड्डी

उर्ध्वगमन – ऊपर को जाना

सहसार – हजार, एक चक्र

पदम् - कमल

युक्तता – एकरूपता, ठीक तरीका

स्वेद – पसीना

जानु – घुटना

कूर्म – कछुवा

कुक्कुट – मूर्गा

13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) अस् (ख) सुढोल, मजबूत
   (ग) ध्यानात्मक (घ) खाली पेट
2. (क) 15 (ख) पदमासन्
   (ग) सिद्धासन (घ) शवासन
   (ड.) मयूरासन (च) प्रथम अध्याय

13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वात्माराम कृत दिगम्बर स्वामी – हठप्रदीपिका (2001) कैवल्यधाम श्रीमन्माधव, योग मन्दिर समिति, लोनावाला

2. महर्षि घेरण्ड – कृत निरंजनानन्द स्वामी घेरण्ड संहिता (2003) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार

3. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द – आसन, प्राणायाम मुद्रा बन्ध (2003) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार

4. भारद्वाज डॉ0 ईश्वर – सरल योगासन (2005) सत्यम् पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।

13.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. आसन से आप क्या समझते हो ? विविध परिभाषाओं के माध्यम से समझाइये ?

2. आसन क्या है ? आसनों के उद्देश्य व सिद्धान्तों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए ?

3. आसनों को परिभाषित करते हुए किन्हीं चार शरीर संवर्धनात्मक आसनों का वर्णन कीजिए ?

4. हठप्रदीपिका में वर्णित किन्हीं दो ध्यानात्मक आसनों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए ?

इकाई 14– प्राणायाम का अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य, वर्गीकरण, सिद्धान्त, हठप्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों का वर्णन

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 प्राणायाम का अर्थ एवं परिभाषायें

14.4 प्राणायाम के उद्देश्य

- 14.4.1 शारीरिक उन्नति
- 14.4.2 मानसिक उन्नति
- 14.4.3 आध्यात्मिक उन्नति

14.5 प्राणायाम का वर्गीकरण

14.6 प्राणायाम के सिद्धान्त

14.7 हठप्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों का वर्णन

- 14.7.1 सूर्यभेदन
- 14.7.2 उज्जायी प्राणायाम
- 14.7.3 सीत्कारी प्राणायाम
- 14.7.4 शीतली प्राणायाम
- 14.7.5 भस्त्रिका
- 14.7.6 भ्रामरी प्राणायाम
- 14.7.7 मूर्च्छा प्राणायाम
- 14.7.8 प्लाविनी प्राणायाम

14.8 सारांश

14.9 शब्दावली

14.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.12 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग में आसनों के बाद प्राणायाम को रखा है। प्राणायाम के महत्व को जानते हुए हमारे ऋषिमुनियों ने बड़े सहज व स्पष्ट रूप से प्राणायाम की चर्चा की है, प्राण वायु का शुद्ध व सात्विक अंश है इस प्राण शक्ति को पूरे शरीर में विस्तारित करना ही प्राणायाम है। प्राणायाम क्या है इसके क्या उद्देश्य है, प्राणायाम के क्या सिद्धान्त है, प्राणायाम के कितने प्रकार है प्रस्तुत इकाई में विस्तार से उपरोक्त तथ्यों की चर्चा की गई है।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- बता सकेंगे कि प्राणायाम क्यो किया जाता है।
- समझा सकेंगे कि प्राणायाम का वास्तविक अर्थ क्या है।
- प्राणायाम के विविध प्रकारों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- प्राणायाम के उद्देश्य, सिद्धान्तों के साथ-साथ प्राणायाम को वर्गीकृत कर सकेंगे।
- हठ प्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों का विश्लेषण कर सकेंगे।

14.3 प्राणायाम अर्थ एवं परिभाषाये

प्राणायाम शब्द, प्राण तथा आयाम दो शब्दों के मूल से बनता है। प्राण जीवनी शक्ति है और आयाम उसका ठहराव या पड़ाव है। हमारे श्वास-प्रश्वास की अनैच्छिक क्रिया निरन्तर अनवरत से चल रही है। इस अनैच्छिक क्रिया को अपने वश में करके ऐच्छिक बना लेने पर श्वास का पूरक करके कुम्भक करना और फिर इच्छानुसार रेचक करना प्राणायाम कहलाता है।

प्राणायाम शब्द दो शब्दों से बना है प्राण तथा आयाम। प्राण वायु का शुद्ध व सात्विक अंश है। प्रिय विद्यार्थियों अगर प्राण शब्द का विवेचन करे तो प्राण शब्द (प्र$अन्$अच) का अर्थ गति, कम्पन, गमन, प्रकृष्टता आदि के रूप में ग्रहण किया जाता है। छान्दोग्योपनिषद् कहता है- 'प्राणो वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किंच।' (छा॰ - 3@15@4)

प्राण वह तत्व है जिसके होने पर ही सबकी सत्ता है-

'प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्'। (प्रश्नोपनिषद् - 2@6)

तथा प्राण के वश में ही सम्पूर्ण जगत् है-

'प्राणस्वेदं वशे सर्वम्।' (प्रश्नो॰ & 2@13)

अथर्वद में कहा गया है-

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।

यो भूतः सर्वेश्वरो यस्मिन् सर्वप्रतिष्ठितम्।। (अथर्ववेद- 11@4@1)

'उस प्राण को नमस्कार है, जिसके वश में यह सम्पूर्ण संसार है। सब प्राणियों का जो ईश्वर है तथा जिसमें सभी प्रतिष्ठित हैं अर्थात् जिसकी सत्ता से ही सबकी सत्ता है।'

यह प्राण उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से ही उत्पन्न हुआ है। प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है-

'आत्मन एषः प्राणो जायते।' (प्रश्नो॰ & 3@3)

तथा परमेश्वर ने ही उस प्राण का सृजन किया है जो सब प्राणियों का आधार बना-

'स प्राणमसृजत।' (प्रश्नो॰ & 6@4)

प्राणियों का जीवनाधार यह प्राण ही ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ तत्व है-

'प्राणो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च।' (बृहदारण्यकोप॰ - 6@1@1)

यह प्राण मुख्य रूप से पाँच प्रकार का कहा गया है-

प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। इसके पाँच गौण भेद भी गहे गए हैं- नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त तथा धनंजय।

(क) प्राण- यह जीवनी शक्ति है। इसी के कारण यह शरीर जीवित रहता है। बी.एन. पंडित कहते है 'समस्त आन्तरिक एवं बाह्य वस्तुओं का निष्क्रमण एवं विलोपन प्राण है और सम्पूर्ण स्वांगी तथा विचारों को एकत्रित या आत्मसात् कर लेना अपान है जबकि बोलने की प्रक्रिया निष्क्रमणशील होने के कारण प्राण है।'

'प्राण शब्द दो प्रकार के अर्थ का अभिव्यंजक है। यह सूक्ष्म जीवन-शक्ति को प्रकट करता है, उस सारतत्व को, जो हमारे शरीर को जीवित रखता है। दूसरे, यह श्वसन का परिचायक है जो मन, शरीर एवं इन्द्रियों का बहिर्गमनशील रूप है।'

'प्राण का स्थान हृदय माना गया है। श्वसन क्रिया की स्थिति में इसका विस्तार नासारन्ध्रों से श्वासपटल (डायफ्राम) तक होता है।

([k) **अपान-** अपान का स्थान गुदा माना गया है। नाभि से नीचे गुदा, वृक्क, मूत्रेन्द्रिय आदि के कार्य इसी से सम्पन्न होते हैं।

(ग) समान- इसका स्थान नाभि प्रदेश है। हृदय से नाभि पर्यन्त गति करता हुआ यह पाचन संस्थान, यकृत, क्लोमग्रंथि, आंतों, आमाशय आदि की क्रिया को संचालित करता है।

(घ) उदान- इसका स्थान कंठ कहा गया है। कंठ के निकटवर्ती क्षेत्र का नियंत्रण इसके द्वारा होता है। इसी की शक्ति पाकर नाक, कान, आंख आदि इन्द्रियाँ सशक्त होती है।

(ड) व्यान- सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त यह जीवनी शक्ति शरीर का आधार है। शरीर की गतिविधियाँ इसके अभाव में सम्पन्न नहीं हो सकती। सभी अवयवों में इसके द्वारा ही तालमेल सम्भव है। इसके असंतुलित होने पर मन, शरीर व इन्द्रियाँ अपना तालमेल खो देती है जिसके फलस्वरूप समस्त क्रियाएँ असंतुलित हो जाती है।

पॉच उपप्राण कहे गये है।

(क) नाग - डकार व हिचकी लेने में नागवायु का कार्य है।

(ख) कूर्म - पलकों को उठाना-गिराना कूर्म वायु का कार्य है।

(ग) कृकल - भूख-प्यास इस वायु के प्रभाव से लगती है।

(घ) देवदत्त - जम्भाई लेने में देवदत्त वायु कार्य करता है।

(ड़) घनंजय - यह मृत्यु के बाद भी शरीर को नहीं छोड़ता। मृत्यु के पश्चात् इसी के कारण शरीर फूलता है।

प्रिय विद्यार्थियों प्राण के अर्थ को आप समझ गये होंगे अब प्रश्न उठता है कि आयाम क्या है आयाम के कई अर्थ है जैसे विस्तार करना, बढाना, लम्बायमान करना। अब प्राणायाम का अर्थ स्पष्ट है कि प्राण शक्ति का पूरे शरीर में विस्तार करना प्राणायाम है। जिज्ञासु पाठको स्मरण रहे कि प्राणायाम का अभ्यास करके आप प्राण को अपने वश में कर सकते है। जब प्राण दीर्घ और सूक्ष्म हो जाता है तो धीमी गति होने के कारण सामान्य स्थिति से प्राण ऊर्जा का क्षय कम होता है। हमारे ऋषिमुनियों द्वारा इस विद्या का सकल प्रयोग किया गया है।

प्राणायाम को अनेकानेक ग्रन्थों में अलग-अलग तरीके से परिभाषित करते कहा है -

क. महर्षि पतंजलि के अनुसार – महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र के साधनपाद में प्राणायाम को परिभाषित करा है।

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गति विच्छेद: प्राणायाम:, योगसूत्र 2/49

अर्थात आसन सिद्ध हो जाने पर श्वास-प्रश्वास की गति का विच्छेद करना प्राणायाम है। श्वास प्रश्वास की गति अनवरत से चल रही है। श्वास का रूकना मृत्यु का कारण है। अत: स्वाभाविक रूप से निरन्तर बिना प्रयास यह श्वसन क्रिया हो रही है। इस सामान्य श्वसन क्रिया को अपने इच्छानुसार चलाना प्राणायाम के द्वारा सम्भव है। प्राणायाम के फलों को बताते हुए योगसूत्र में कहा है

तत: क्षीयते प्रकाशावरणम्

योग सूत्र 2/52

अर्थात प्राणायाम के अभ्यास से प्रकाश का अवरण क्षीण हो जाता है।

धारणासुच योग्यता मनस:

योग सूत्र 2/53

तथा धारणा की योग्यता भी प्राणायाम से आ जाती है।

ख. हठ प्रदीपिका के अनुसार : हठप्रदीपिका में प्राणायाम के बारे में कहा है –

''चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत'' 2/2

अर्थात प्राणवायु के चलने पर चित्त चलायमान् होना है तथा उसके रूकने पर रूक जाता है एकाग्र हो जाता है।

ग. घेरण्ड संहिता के अनुसार :- घेरण्ड संहिता में प्राणायाम को परिभाषित कर कहा है कि मनुष्य को देवता बनाने की विद्या प्राणायाम है –

अर्थात संप्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य सद्विधिम्

यस्य साधनमात्रेण देवतुल्यों भवेन्नर: घे0सं0 5/1

अर्थात – महर्षि घेरण्ड कहते है अब में प्राणायाम की विधि बताता हूँ जिसका साधन करने मात्र से मनुष्य देवता के समान हो जाता है।

घ. मनुस्मृति के अनुसार – मनुस्मृति में प्राणायाम को परिभाषित कर कहा है इन्द्रिय दोषों का नाश करने वाला तप प्राणायाम हैं।

दहन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मला: तथेन्द्रियाणां दहन्ते दोषा: प्राणस्य निग्रहात्

मनुस्मृति 6/71

जिस प्रकार तप शरीर व इन्द्रियों के दोषों को नष्ट कर देता हैं। उसी प्रकार प्राणायाम शरीर व इन्द्रिय के दोषों का नाश करके शुद्ध चैतन्य स्वरूप की प्राप्ति करवाने में समर्थ है।

ड.. गोरक्षनाथ के अनुसार – गुरू गोरथानाथ ने सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में कहा है –

''प्राणायाम दूति प्राणस्य स्थिरता'' 2/35
अर्थात शरीर की नाडियों में प्रयासपूर्वक प्राण के प्रवाह को रोकना प्राणायाम है।

च. जाबालदर्शनोपनिषद में कहा है – प्राणायाम: इति प्रोक्तो रेचक पूरक कुम्भक:- अर्थात पूरक, रेचक तथा कुम्भक क्रियाओं के द्वारा प्राण संतुलन की क्रिया को प्राणायाम कहते है।

छ. वरिष्ठ संहिता के अनुसार – वशिष्ठ संहिता में कहा है

प्राणायानसमायोग: प्रोक्तो रेचपूरककुम्भ कै: 3/2 (ब0सं0) अर्थात प्राण और अपान का उचित संयोग प्राणायाम कहा जाता है। पूरक, कुम्भक एवं रेचक इन तीनों से प्राणायाम बनता है।

ज. गीता में कहा गया है –

अपाने जुहवति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे

प्राणापानगती रूद्ध्वा प्राणायाम: परायण: 4/29

अर्थात अपान वायु में प्राणवायु का हवन, प्राणवायु में अपान वायु का हवन या प्राण व अपान की गति का निरोध प्राणायाम है।

झ. श्री ब्रहमानन्द के अनुसार – प्राणवायु का निरोध करना प्राणायाम है।

ञ. शिव संहिता में कहा है : वायु की साधना को प्राणायाम कहते है।

ट. पंचशिखोपनिषद में कहा है – प्राणायाम से बढ़कर कोई तप नहीं है प्राणायाम से अन्त:करण के मलदोष दूर हो जाते है।

ठ. त्रिशिखब्राहमणोपनिषद के अनुसार – निरोध: सर्ववृतीनां प्राणायाम: अर्थात सभी प्रकार की वृतियों के निरोध को प्राणायाम कहा गया है।

ड. अमृतनादोपनिषद कहता है – जिस प्रकार सोने को तपाने से उसके मल निकल जाते है उसी प्रकार इन्द्रियों के विकार प्राणायाम से जलकर नष्ट हो जाते है।

ढ़. स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार – शरीरस्थ जीवनी शक्ति को वश में लाना प्राणायाम कहलाता है।

ण. स्वामी शिवानन्द के अनुसार – प्राणायाम वह माध्यम है जिसके द्वारा योगी अपने छोटे से शरीर में समस्त ब्रहमाण्ड के जीवन को अनुभव करने का प्रयास करता है तथा सृष्टि की समस्त शक्तियॉं प्राप्त कर पूर्णता का प्रयत्न करता है।

त. श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार – प्राणायाम का मतलब है प्राण शक्ति का परिशोधन व अभिवर्द्धन। दूसरे शब्दों में प्राण शक्ति के अनावश्यक क्षरण को रोकने एवं क्षरण से हुई क्षति की पूर्ति करते रहने तथा प्राणतत्व की अधिक मात्रा को आकर्षित कर अपना व्यक्तित्व अधिकाधिक समुन्नत कर प्राणवान, परिष्कृत बनाए जाने की समग्र साधाना की पद्धति को प्राणायाम कहते है।

14.4 प्राणायाम के उद्देश्य

मानव के लिए प्राणायाम अमूल्य धरोहर है इसका उपयोग करके वह जीवन को भली प्रकार जी सकता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसकी उपयोगिता विभिन्न शोधों के माध्यम से सिद्ध हो रही है। शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक उन्नति प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से प्राप्त की जा सकती है। निःसन्देह प्राणायाम ऋषियों की अनुपम देन है।

14.4.1 शारीरिक उन्नति - प्राणायाम के द्वारा साधक की शारीरिक स्थिति उन्नत होती है। योग का सिद्धान्त है कि जो स्वस्थ हों, उनको स्वस्थ रखा जाए और जो रोगी हो, उन्हें रोग मुक्त किया जाए। 'स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम् आतुरस्य विकारप्रशमनम् च' आयुर्वेद की यह मान्यता योग पर भी इसी रूप में लागू होती है। प्राणायाम को योग का सार कहा गया है। प्राणायाम' द्वारा उक्त दोनों दृष्टिकोणों की पूर्ति होती है। प्राणायाम का अभ्यास करके साधक असीम बल, तेज व बुद्धि की प्राप्ति तथा आन्तरिक शक्तियों का जागरण करने में समर्थ होता है। बलिष्ठ शरीर समस्त दैनिक क्रियाकलापों तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में बढ़ने के लिए प्रथम आवश्यकता है। अतः शरीर को दृढ़ करने के लिए प्राणायाम का उपयोग किया जाता है। प्राणायाम के अभ्यास के त्रिदोषों (वात, पित्त व कफ) को साम्यावस्था में रखा जा सकता है जिससे समस्त धातुओं (रस, रक्त, माँस, मेद, अस्थि, मज्जा व शुक्र) की पुष्टि होकर शरीर नीरोग रहता है। शरीरस्थ प्राण शक्ति साधक को ऊर्जावान्

बनाती है। इस प्रकार प्राणायाम के अभ्यासी साधक को स्वस्थ एवं बलिष्ठ शरीर की प्राप्ति होती है। हमारे फेफड़ों के असंख्य कोष है जो वायु को धारण करते हैं किन्तु कुछ कोषों तक प्राणवायु नहीं पहुँचती तथा उनका उपयोग नहीं होता जिससे वे स्वस्थ नहीं रहते तथा धीरे-धीरे शरीर में ह्रास की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। फेफड़ों में वायु पूर्ण रूप से भरकर रक्त में स्थित कार्बनडाइऑक्साइड को कम करके शरीर को नीरोग रखा जा सकता है। प्राणायाम का अभ्यास करने वाला साधक विभिन्न शारीरिक व्याधियों से बचा रहता है तथा उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि हो जाती है। शरीरस्थ मलों का निवारण होने पर त्रिदोष साम्यावस्था में आ जाते हैं जिससे व्याधि का कारण ही नष्ट हो जाता है। प्राणायाम के विविध भेदों द्वारा विविध रोगों के निवारण का वर्णन प्राप्त होता है। जैसे-

सूर्यभेदन- कपालशोधक, वातरोग व कृमिरोग नशक आदि। (ह०प्र०- 2@50)

उज्जायी- कण्ठस्थित कफनिवृति, जठराग्नि प्रदीप्ति कारक, जलोदर, धातुदोष आदि का निवारक (ह०प्र० & 2@52]53)

सीत्कारी- क्षुधा, तृष्णा, निद्रा व आलस्य का नाश करने वाला, शरीर पर नियंत्रण देने वाला, कामदेव के समान सुन्दर शरीर बनाने वाला। (ह०प्र० & 2@55&56)

शीतली- वायुगोला, तिल्ली, ज्वर, पित्त, क्षुधा, तृष्णा आदि में लाभकारी तथा विष के प्रभाव को नष्ट करने वाला है। (ह०प्र० & 2@58)

भस्त्रिका- वात पित्त-कफ जन्य विकारों में लाभदायक तथा जठराग्नि प्रदीप्ति कारक है। (ह०प्र० - 2@65)

स्वामी चरणदास भक्तिसागर में कहते हैं कि प्राणायाम आयु व बल बढ़ाने वाला तथा शरीर में रोगों की निवृत्ति करने वाला है-

प्राणायाम बड़ा तप सोई। प्राणायाम सों बल नहिं कोई।

प्राणवायु को यह वश लावै। मन को निश्चल करि ठहरावै।।

आयुर्दा को यही बढावै। तन में रोग रहन नहिं पावै।। (भक्तिसागर-अष्टांगयोग)

14.4.2 मानसिक उन्नति- प्राणायाम का अभ्यासी स्वस्थ शरीर के कारण उच्च मानसिक स्थिति वाला होता है। 'प्राणायामैर्दहेद्दोषान्' प्राणायाम के अभ्यास से दोष नष्ट हो जाते हैं। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है। 'आसनेन रुजो हन्ति प्राणायामेन पातकम्' आसन से रोग दूर होते हैं और प्राणायाम से मानसिक विकार दूर होते हैं। मन अपनी इच्छानुकूल गति न करके साधक के वश में हो जाता है और साधक का अन्तःकरण पवित्र होने के कारण उसमें दोषों या विकारों के लिए कोई स्थान नहीं बचता। इसी कारण ऐसा साधक संसार में एकत्व की भावना रखता है। वह न किसी से राग, न किसी से द्वेष की स्थिति प्राप्त होने पर सब पापों से मुक्त होकर आध्यात्म मार्ग पर अग्रसर हो जाता है। ऐसा साधक ही संसार का आभूषण बनकर सबके हृदयों पर राज्य करता है।

14.4.3 आध्यात्मिक उन्नति- आध्यात्मिक दृष्टिकोण से प्राणायाम का उद्देश्य चित्त की स्थिरता है जिससे समाधि की अवस्था प्राप्त करके कैवल्य की सीमा में प्रविष्ट हो सके। कहा भी है-

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्। ह०प्र० & 2/2

इसलिए चित्त की चंचलता को समाप्त करने के लिए प्राणायाम का प्रयोग किया जाता है। साधना की प्रारम्भिक अवस्था में आसन का अभ्यास दृढ़ हो जाने के बाद चित्त को नियंत्रित करने में प्राणायाम महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता है।

योगसूत्र में कहा गया है-

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्। योगसूत्र & 2@52

प्राणायाम के अभ्यास से विवेकज्ञान पर पड़े अविद्या रूपी अज्ञान के आवरण को क्षीण किया जाता है और

धारणासु च योग्यता मनसः। योगसूत्र & 2@53

चित्त में धारणा, ध्यान व समाधि की योग्यता उत्पन्न हो जाती है जिससे चरमलक्ष्य कैवल्य की प्राप्ति सम्भव हो सकती है।

हठयोग प्रदीपिका की मान्यता है कि मल से पूरित नाड़ियों में पवन का संचरण नहीं होता। सुषुम्ना में पवन-संचरण न होने पर कुण्डलिनी जागरण सम्भव नहीं है। अतः प्राणायाम करके मलों का निवारण करने पर कुण्डलिनी द्वारा चक्रभेदन की क्रिया होने से चरमलक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है।

मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव मध्यगः।

कथं स्यादुन्मनी भावः कार्यसिद्धिः कथं भवेत्।।

शुद्धिमेति यदा सर्वं नाडीचक्रं मलाकुलम्।

तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षमः।।

प्राणायामं ततः कुर्यान्नित्यं सात्विकया धिया।

यथा सुषुम्ना नाडीस्था मलाः शुद्धिं प्रयान्ति च।। (ह॰प्र॰-2/4,5,6)

इसके लिए नाडीशोधन प्राणायाम का विधान किया गया है।

भक्तिसागर में स्वामी चरणदास भी कहते हैं-

ज्यों-ज्यों होवै प्राणवश, त्यों-त्यों मन वश होय।

ज्यों-ज्यों इन्द्री थिर रहै, विषय जायं सब खोय।।

ताते प्राणायाम करि, प्राणायामहि सार।

पहिले प्राणायाम करि पीछे, प्रत्याहार।। (अष्टांगयोग)

यह तो निर्विवाद है कि प्राणायाम मनुष्य के लिए दैवी-वरदान है जिसका उपयोग करके वह लोक में रहकर सफलतापूर्वक जीवनयापन कर सकता है। दोषों के नष्ट होने तथा सुसंस्कारों के अर्जन से वह उच्चतर योनियों में जन्म धारण करेगा अथवा कैवल्य की स्थिति प्राप्त कर असीम आनन्द का उपभोग करेगा।

14.5 प्राणायामों का वर्गीकरण

प्राणायामों के वर्गीकरण में भिन्न-भिन्न मान्यताएँ प्राप्त होती है। योगसूत्रकार महर्षि पतंजलि कहते हैं-

बाह्याभ्यन्तर स्तम्भवृत्तिर्देशकाल संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः। योगसूत्र -2@50

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः। योगसूत्र & 2@51

उनके अनुसार प्राणायाम के चार भेद है-

(क) बाह्यवृत्ति प्राणायाम

(ख) आभ्यन्तरवृत्ति प्राणायाम

(ग) स्तम्भवृत्ति प्राणायाम

(घ) बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी प्राणायाम

हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारीशीतली तथा।

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्टकुम्भकाः।। ह०प्र० & 2@44

इनके अनुसार प्राणायाम (कुम्भक) आठ प्रकार के हैं-

सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा व प्लाविनी। इनके अतिरिक्त शरीरस्थ बहत्तर हजार नाड़ियों की शुद्धि हेतु उन्होंने नाडी शोधन प्राणायाम का उल्लेख किया है जो इन प्राणायामों से पूर्व करणीय बताया गया है।

घेरण्ड संहिता में कहा गया है-

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा।

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भकाः।। घे०सं० 5@46

सहित, सूर्यभेदन, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा तथा केवली ये आठ प्राणायाम (कुम्भक) है।

14.6 प्राणायाम के सिद्धान्त

प्राणायाम करने से पहले प्राणायाम करने के सिद्धान्तों की जानकारी आवश्यक है। अतः संक्षेप में यहाँ इनका वर्णन किया जा रहा है-

1. प्राण को अग्नि कहा जाता है। अग्नि के साथ खिलवाड़ करने वाला भस्म हो जाता है। उसी प्रकार प्राणायाम को खेल समझकर इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। अपितु जैसे वन में रहने वाले सिंह, व्याघ्र, हाथी आदि बलिष्ठ जन्तु भी धीरे-धीरे विधिपूर्वक वश में कर लिए जाते है, उसी प्रकार धीरे- धीरे प्राणायाम का विधिपूर्वक अभ्यास करने पर प्राण वश में हो जाता है और किसी प्रकार का अहित नहीं होता। हठयोग प्रदीपिका में कहा है-

यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्य शनैः शनैः।

तथैव सेवितो वायुरन्यथा हन्ति साधकम्।। ह०प्र० & 2@15

2. विधिपूर्वक अभ्यास करने पर रोगों का नाश तथा ठीक विधि से न किए जाने पर रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। अतः मात्रा, काल, शरीर की सामर्थ्य, उचित आहार आदि का ध्यान रखकर अभ्यास करें। (ह०प्र० 2@16)

3. स्थूल काय प्रकृति वाले साधकों को चाहिए कि षट्कर्मों का अभ्यास करके पहले दोष-निवारण कर ले। अन्य लोगों को षट्कर्मों की आवश्यकता नहीं है। फिर भी नेति, धौति, नौलि, त्राटक, कपालभाति के अभ्यास से साधक के शरीर में हल्कापन आ जाता है। अतः कभी-कभी इनका अभ्यास करना भी श्रेयस्कर है। ;ह०प्र० &2@21)

4. प्राणायाम के अभ्यास से शरीर में पसीना आए तो उसे शरीर पर मल लेना चाहिए। इससे शरीर में दृढ़ता व स्थिरता आती है। (ह०प्र० 2@13)

5. शुद्ध, स्वच्छ, पवित्र, धूल-धुआँ व दुर्गन्ध रहित एकान्त स्थान पर ही अभ्यास करे।

6. केवल योग साधना कार्य में रत पूर्णकालिक साधको को चार बार प्राणायाम का अभ्यास करने का विधान किया गया है। किन्तु अन्य अंशकालिक साधकों को प्रातःकाल ही प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। (ह०प्र० &2@11)

7. बसन्त व शरद ऋतु में योगारम्भ करना चाहिए। हेमन्त, शिशिर, ग्रीष्म तथा वर्षा में योगाभ्यास न करें। यदि करेंगे तो रोग होने की सम्भावना होगी। (घे०सं० 5@8&9)

8. प्राणायाम के अभ्यास को एक बार में 5 से बढ़ाकर 80 तक ले जाना तथा 4 मात्रा से 20 मात्रा तक बढ़ाना चाहिए। इसी प्रकार पूरक, कुम्भक व रेचक में 1:1:1, 1:2:1, 1:2:2, 1:3:2, 1:4:2 का अनुपात रखकर धीरे-धीरे (10-15 दिन तक एक अभ्यास करना) अभ्यास करने पर प्राणायाम सिद्ध हो जाता है।

9. पूरक (श्वास भरते समय) में पेट बाहर तथ वक्षस्थल उभार लेता हुआ होना चाहिए। रेचक (श्वास निकलते समय) में पेट अन्दर तथा वक्षस्थल दबता हुआ रहे। उड्डीयान बंध लगाकर पेट को ऊपर की ओर खींचना चाहिए।

10. मिताहार का प्रयोग करें। घी, दूध आदि चिकनाई युक्त पदार्थों का सेवन करने से प्राणायाम द्वारा उत्पन्न अग्नि का शमन होता रहता है। यात्रा, आगतापना व स्त्री-संग वर्जित है।

11. सर्वप्रथम केवल नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास न्यूनातिन्यून चार मास करके नाड़ियों की शुद्धि कर ले। तत्पश्चात् प्राणायाम का अभ्यास करें।

12. अनावश्यक बल प्रयोग सर्वथा वर्जित है।

प्राणायाम से पूर्व निम्न तैयारी आवश्यक है -

- पद्मासन या सिद्धासन में सिद्धि प्राप्त कर लेनी चाहिए ताकि प्राणायाम के लिए निश्चल होकर बैठा जा सके।
- खाली पेट अभ्यास करें। भोजन के बाद यदि करना है तो 5-6 घंटे के अन्तराल पर करें।
- जिस स्थान पर अभ्यास करना है, वहाँ वायु का आवागमन तो हो किन्तु वायु सीधी अभ्यासी के शरीर पर नहीं लगनी चाहिए।
- स्नान प्राणायाम से पूर्व कर लें। यदि बाद में करना है तो न्यूनतम आधा घंटा का अंतर होना चाहिए।
- वस्त्र आरामदायक हो। यदि मच्छर, मक्खी आदि का व्यवधान हो तो साधक वस्त्र ओढ़कर भी बैठ सकता है।
- प्राणायाम की सही विधि जानकर ही अभ्यास करें। यदि अभ्यास करते हुए सिरदर्द, आँखों में दर्द, हिचकी, खांसी, श्वास रोग, कानदर्द आदि हो जाए तो अभ्यास छोड़कर केवल दीर्घश्वसन करना चाहिए।
- रेचक, पूरक, कुम्भक, प्राण भेद, प्राणायाम भेद, प्राणायाम की सही विधियाँ, मात्रा, काल, बंध, षट्चक्र, कुण्डलिनी, नाडियाँ आदि की जानकारी साधक को होनी चाहिए।

14.7 हठ प्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों का वर्णन

हठ प्रदीपिका में आसन सिद्ध, षट्कर्मो का अभ्यास व नाड़ी शुद्धि होने के पश्चात् प्राणायाम करने का विधान किया गया है। प्राणायाम को हठप्रदीपिका में कुम्भक कहा है, यहाँ प्राणायामों का वर्गीकरण करते हुए कहा गया है-

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्टकंुभकाः।। ह०प्र० & 2@44

अर्थात् सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी में आठ प्रकार के प्राणायाम है। इनका वर्णन इस प्रकार है-

15.7.1 सूर्यभेदन- हठयोग प्रदीपिका में सूर्यभेदन या सूर्यभेदी प्राणायाम का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

आसने सुखदे योगी बद्ध्वा चैवासनं ततः।

दक्षनाड्या समाकृष्य बहिस्थं पवनं शनैः।।

आकेशादानखाग्राच्च निरोधावधि क्रुंभयेत्।

ततः शनैः सव्य नाड्या रेचयेत् पवनं शनैः।। ह०प्र०&2/48/49

अर्थात् पवित्र और समतल स्थान में उपयुक्त आसन बिछाकर उसके ऊपर पद्मासन, स्वस्तिकासन आदि किसी आसन में सुखपूर्वक मेरुदण्ड, गर्दन और सिर को सीधा रखते हुए बैठे। फिर दाहिने नासारन्ध्र अर्थात् पिंगला नाडी से शनैः शनैः पूरक करें। आभ्यन्तर कुभक करें। कुम्भक के समय मूलबन्ध व जालन्धरबन्ध लगा कर रखें। यथा शक्ति कुम्भक के पश्चात् कुम्भक के समय मूलबन्ध व जालन्धरबन्ध लगा कर रखे। यथा शक्ति कुम्भक के पश्चात् जालन्धरबन्ध खोलते हुए गर्दन सीधी करें तथा बांये नासारन्ध्र अर्थात् इड़ा नाड़ी से शनैः शनैः रेचक करें। रेचक के समय उड्डीयान बंध लगाये। इसे ही योगियों ने सूर्यभेदन नाम दिया है।

सूर्यभेदी प्राणायाम का लाभ बताते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

कपालशोधनं वातदोषघ्नं कृमिदोषहृत्।

पुनः पुनरिदं कार्य सूर्यभेदनमुत्तमम्।। ह०प्र० - 2@50

अर्थात् सूर्यभेदन प्राणायाम मस्तक की शुद्धि करता है, अस्सी प्रकार के वात दोषों को हरता है तथा उदर में उत्पन्न कमियों को नष्ट करता है। इसलिए यह उत्तम सूर्यभेदी प्राणायाम बार-बार करना चाहिए।

14.7.2 उज्जायी प्राणायाम - उज्जायी प्राणायाम का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

मुखं संयम्य नाडीभ्यामाड्डष्य पवनं शनैः।

यथा लगति कंठात्तु हृदयावधि सस्वनम्।।

पूर्ववत्कुंभयेत्प्राणं रेचयेदिडया ततः।

श्लेष्मदोषहरं कंठे देहानल विवर्धनम्।। ह०प्र० - 2@51&52

अर्थात् इड़ा और पिंगला दोनों नाड़ियों से कंठ का संकोच करते हुए पूरक करें। इसमें वायु शनैः शनै कण्ठ से हृदय तक शब्द करती हुई अन्दर जाये। तत्पश्चात् कुम्भक करें कुम्भक के उपरान्त इड़ा नाडी अर्थात् वाम स्वर से रेचक करे। इसी को उज्जायी प्राणायाम कहते हैं। ग्रन्थकार ने इस प्राणायाम का लाभ बताया है कि इस प्राणायाम के अभ्यास से कण्ठगत श्लेष्मा के दोष नष्ट होते हैं और यह जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

इस प्राणायाम के अन्य लाभों का वर्णन आगे बताया गया है-

नाडीजलोदराधातुगत दोषविनाशनम्।

गच्छता तिष्ठता कार्यमुज्जाय्याख्यं तु कुंभकम्।।ह०प्र० & 2@53

अर्थात् नाड़ियों के जलोदर तथा शरीरगत धातुओं के सभी दोषों को यह प्राणायाम नष्ट करता है। यह उज्जायी नाम का कुंभक बैठे हुए या गमन करते हुए भी करने योग्य है।

14.7.3 सीत्कारी प्राणायाम - सीत्कारी प्राणायाम का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

सीत्कां कुर्यान्तथा वक्त्रे घ्राणेनैव विजृम्भिकाम्।

एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः।। ह०प्र० - 2@54

अर्थात् दातों को आपस में मिलाकर जिह्वा को उनके साथ लगायें। होठों को खोलकर दातों के मध्य से सीत्कार की आवाज के साथ पूरक करें। तत्पश्चात् आभ्यन्तर कुम्भक करें। कुम्भक के पश्चात् दोनों नासारन्ध्रों से रेचक करें। ग्रंथकार कहते हैं कि इसका अभ्यास करने वाला योगी कामदेव के समान हो जाता है।

इसके लाभ का वर्णन करते हुए आगे कहा गया है-

योगिनी चक्रसम्मान्यः सृष्टि संहार कारकः।

न क्षुधा न तृषा निद्रा नैवालस्यं प्रजायते।।

भवेत्सत्त्वं च देहस्य सर्वोपद्रववर्जितः।

अनेन विधिना सत्यं योगीद्रो भूमिमंडले।। ह०प्र०&2@55&56

अर्थात् वह योगी योगिनियों के समूह का सेवन करने योग्य होता है। सृष्टि की उत्पत्ति और लय करने में समर्थ हो जाता है और योगी भूख, प्यास, निद्रा व आलस्य को जीत लेता है। अर्थात् उसके शरीर व चित्त के दोष दूर हो जाते हैं। इसके अभ्यास से शरीर का बल बढ़ता है। इसका अभ्यासी योगी इन्द्रलोक व सम्पूर्ण भूमि मण्डल के उपद्रवों से रहित होता है। योगी कहते हैं कि इस प्राणायाम का यह फल सत्य है, इसमें संदेह नहीं करना चाहिए।

14.7.4 शीतली प्राणायाम - शीतली प्राणायाम का वर्णन करते हुए योगी स्वात्माराम हठयोग प्रदीपिका में कहते हैं-

जिह्वा वायुमाड्डष्य पूर्ववत्कुंभसाधनम्।

शनकैर्घ्राणरंध्राभ्यां रेचयेत्पवनं सुधी: ।। ह०प्र० 2/57

अर्थात् जिह्वा को होठों से बाहर निकालकर उसे पक्षी की चोंच के समान गोल बनाते हुए जिह्वा के मध्य से शनैः-शनैः पूरक करें। फिर आभ्यन्तर कुम्भक में मूल बन्ध व जालन्धर बन्ध लगायें। यथा शक्ति कुम्भक के पश्चात् जालन्धर बंध खोले और दोनों नासारन्ध्रों से धीरे-धीरे रेचक करें। इसी को शीतली प्राणायाम कहा गया है।

शीतली प्राणायाम का लाभ बताते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

गुल्मप्लीहादिकान्रोगान्ज्वरं पित्तं क्षुधां तृषाम्।।

विषाणि शीतली नाम कुंभिकेयं निहन्ति हि। ह०प्र० - 2@58

अर्थात् इस प्राणायाम का अभ्यास गुल्म, प्लीहा आदि रोग ज्वर, पित्त, क्षुधा और सर्प आदि का विष इन सबको नष्ट करता है अर्थात् इसके कर्ता का देह स्वाभाविक रूप से शीतल रहता है।

14.7.5 भस्त्रिका- भस्त्रिका प्राणायाम का वर्णन करते हुए कहा गया है।-

ऊर्वोरुपरि संस्थाप्य शुभे पादतले उभे।

पद्मासनं भवेदेत्सर्वपाप प्रणाशनम्।।

सम्यक् पद्मासनं वद्ध्वा समग्रीवोदरं सुधीः।

मुखं संयम्ययत्नेन प्राणं घ्राणेन रेचयेत्।।

यथा लगति हत्कंठे कपालावधि सस्वनम्।

वेगेन पूरयेच्चापिहृत्पद्मावधि मारुतम्।।

पुनर्विरचयेत्तद्वत्पूरयेच्च पुनः पुनः।

यथैव लोहकारेण भस्त्रा वेगेन चाल्यते।।

तथैव स्वशरीरस्थं चालयेत्पवनं धिया।

यदा श्रमोभवेद्देहे तथा सूर्येण पूरयेत्।।

यथोदरं भवेतपूर्णपवनेन र्णमनिलेन तथा लघु।

धारयेत्रासिकां मध्यातर्जनीभ्यां विनादृढ़म्।।

विधिवत् कुम्भकं कृत्वा रेचयेदिडयानिलम्।

वातपित्तश्लेष्महरं शरीराग्निविवर्धनम्।। ह०प्र० – 2/59/65

अर्थात् दोनों पादतलों को जंघाओं के ऊपर स्थित करते हुए बैठना पद्मासन कहलाता है और यह पद्मासन सब पापों का नाश करने वाला है। पद्मासन में ग्रीवा और उदर को सीधा रखते हुए बैठकर मुख को बन्द कर एक नासिका से रेचक करें। यह रेचक इस प्रकार शब्द करते हुए करना चाहिए जैसे वह हृदय, कण्ठ व कपाल तक लगे। फिर वेग से हृदय तक पूरक करें तथा उसी प्रकार वेग से प्राण-वायु का रेचक करें और उसी प्रकार पूरक करें। लौहार की भस्त्रा की विधि से वेगपूर्वक बार-बार पूरक-रेचक करते रहें। साथ ही अपनी शरीर में स्थित वायु की बुद्धि से चलावें। यह पूरक रेचक तब तक करें, जब शरीरश्रम का अनुभव न करने लगे। इसके बाद सूर्य नाडी से पूरक करें और शीघ्र ही उदर को वायु से भर ले। तत्पश्चात् आभ्यन्तर कुम्भक करें। कुम्भक में मूलबन्ध व जालन्धरबन्ध लगाये। कुम्भक के पश्चात् इड़ा अर्थात् चन्द्र नाड़ी से रेचक करें। यह भस्त्रिका प्राणायाम वात, पित्त और श्लेष्मा तीनों का हरण करती है और जठराग्नि को बढ़ाती है।

भस्त्रिका प्राणायाम के अन्य लाभों का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में आगे कहा गया है।

कुंण्डलीबोधकं क्षिप्रं पवनं सुखदं हितम्।

ब्रह्मनाडी मुखे संस्थकफाद्यर्गलनाशनम्।।

सम्यग्गात्रसमुद्भूतं ग्रंथि त्रय विभेदकम्।

विशेषेणैव कर्तव्यं भस्त्राख्यं कुंभकं त्विदम्।। ह०प्र० 2@66&67

अर्थात् इस प्राणायाम के अभ्यास से सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है। यह प्राणायाम सुख का देने वाला है, शरीरस्थ तीनों दोषों को हरता है, इसलिए हितकारी है। मोक्ष की ओर ले जाने वाली ब्रह्मनाड़ी के मुख पर स्थित श्लेष्मा आदि दोषों का नाश करने वाला अर्थात् ब्रह्मनाड़ी को शुद्ध करने वाली है। सुषुम्ना नाडी के मध्य जो ब्रह्म, विष्णु व रुद्र ग्रन्थियाँ हैं, विशेष रूप से उनका भेदन करने वाला प्राणायाम है। इसीलिए यह विशेष रूप से करने योग्य है।

14.7.6 भ्रामरी प्राणायाम - भ्रामरी प्राणायाम का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

वेगाद्घोषं पूरकं भृंगनादं भृंगीनादं रेचकं मंदमंदम्।

योगींद्राणामेवमभ्यासयोगाच्चित्ते जाता काचिदानंदलीला।। ह०प्र० 2@68

अर्थात् दोनों नासारन्ध्रों से वेगपूर्वक गले से भ्रमर के समान शब्द उत्पन्न करते हुए पूरक करें। तत्पश्चात् आभ्यन्तर कुंभक करें। कुम्भक में मूलबन्ध व जालन्धर बन्ध लगायें। यथा शक्ति कुंभक के पश्चात् दोनों नासारन्ध्रों से भ्रामरी के समान शब्द करते हुए मंद-मंद गति से रेचक करें। इसे ही योगियों ने भ्रामरी कुम्भक कहा है।

इस प्राणायाम का लाभ बताते हुए ग्रंथकार कहते हैं कि इस प्राणायाम के अभ्यास से योगियों को विशेष आनन्द की प्राप्ति होती है।

14.7.7 मूर्च्छा प्राणायाम - मूर्च्छा प्राणायाम का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

पूरकांते गाढतरं बद्ध्वा जालंधरं शनैः।

रेचयेन्मूर्च्छाख्येयं मनोमूर्च्छा सुखप्रदा।। ह०प्र० 2@69

अर्थात् पूरक करने के पश्चात् अत्यन्त दृढ़ता के साथ जलान्धर बन्ध लगाकर शनैः-शनैः प्राण का रेचक करना चाहिए। इसको बार-बार करने से मूर्च्छा सी आने लगती है। इसीलिए इसको मूर्च्छा प्राणायाम कहा गया है।

इसका लाभ बताते हुए ग्रंथकार कहते हैं कि यह प्राणायाम मन को मूर्च्छित करने वाला है जिससे विशेष सुख की प्राप्ति होती है।

14.7.8 प्लाविनी प्राणायाम - प्लाविनी प्राणायाम का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

अन्तः प्रवर्तितोदारमारुतापूरितोदरः।

पयस्यगाधेऽपि सुखात्प्लवते पद्मपत्रवत्।। ह॰प्र॰ 2@70

अर्थात् पूरक के द्वारा उदर में अधिक से अधिक वायु को भरकर कुम्भक करना इसी को प्लाविनी कुम्भक कहा जाता है। इसका लाभ बताते हुए ग्रंथकार कहते हैं कि इस प्राणायाम से साधक का शरीर ऐसा हो जाता है कि वह जल में बिना प्रयास के कमल के पत्ते के समान तैरता रहता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. एक शब्द में उत्तर दीजिए।

क. प्राणायाम अष्टांग योग का कौन सा अंग है।

ख. हठप्रदीपिका में प्राणायाम को क्या कहा गया है।

ग. हठप्रदीपिका में प्राणायाम के कितने भेद है।

घ. उप-प्राणो की संख्या कितनी है।

ड. कौन सा उप प्राण मृत्यु के बाद भी रहता है।

2. बहुविकल्पीय प्रश्न

क. प्राणे सर्व प्रतिष्ठितम् किस ग्रन्थ से लिया है।

अ. वेद ब. उपनिषद स. पुराण द. गीता

ख. धारणासु च योग्यता मनस: उक्त कथन है।

अ. योग सूत्र ख. गीता

स. प्रश्नोपरिषद घ. शिव-पुराण

ग. अपान वायु का स्थान है।

अ. मुँह ब. हृदय स. गुदा द. कण्ड

घ. किस प्राण का स्थान हृदय है।

अ. प्राण ब. अपान स. समान द. ब्यान

ड.. हठ प्रदीपिका के किस अध्याय में प्राणायाम प्रकरण है।

अ. चौथे ब. तीसरे स. दूसरे द. प्रथम

च. किस प्राणायाम के सिद्ध हो जाने पर साधक जल में तैरता है।

अ. सूर्यभेदन ब. सीत्कारी स. शीतली द. प्लावनी

14.8 सारांश

प्राणायाम हठयोग की एक महत्वपूर्ण साधन है। प्राणायाम से चित्त की चंचलता नष्ट होती है जिससे एकाग्रचित्त होकर किसी भी कार्य को करने की क्षमता में वृद्धि होती है। वास्तव में एकाग्रचित्त व्यक्ति अपने कार्य को उचित रीति से उपयुक्त समय पर सम्पन्न करता है। वस्तुत: प्राणायाम मन: संयम के लिए एक उपयोगी विद्या है यही कारण है कि प्राणायाम के अभ्यास से काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि कषायो की निवृत्ति होकर चित्त में पवित्रता आती है। इससे सहज ही चित्त में विशुद्धिकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। वह निज- पर के भाव से रहित होकर सम्पूर्ण सृष्टि में आत्मभाव देखता है तथा धीरे-धीरे साधक चरम लक्ष्य 'कैवल्य' की प्राप्ति प्राणायाम के अभ्यास से सहज रूप से करता है।

14.9 शब्दावली

अनैच्छिक - जो बिना इच्छा के है।

कुम्भक - श्वास रोकना, प्राणायाम

पूरक - श्वास लेना

रेचक - श्वास छोड़ना

ज्येष्ठ - बढ़ा

प्रवाह - गति

निरोध - रोकना, अवरूद्ध करना

स्वर्ण - सोना, कनक

लाघव - हल्कापन

शरीरस्थ - शरीर में स्थित

ह्रास - कम, क्षीण, तनु

साम्यावस्था - संतुलन, समरसता

तृष्णा - चाह, राग

क्षुधा - भूख

क्षीण - खत्म, कम

नासिकाग्र - नाक का अगला भाग

इड़ा - चन्द्र नाड़ी

पिंगला - सूर्य नाड़ी

14.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क. चौथा ख. कुम्भक ग. आठ घ. पॉच

ड. धनंजय

2. क. ब ख. अ ग. स घ. अ

ड. स च. द

14.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. स्वात्माराम – हठप्रदीपिका (2001) कैवल्यधाम श्रीमन्माघव, योग मन्दिर समिति, लोनावाला

2. महर्षि घेरण्ड – घेरण्ड संहिता (2003) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार

3. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध (2003) योग पब्लिकेशन्स (2005)

14.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राणायाम से आप क्या समझते है, विविध परिभाषाओं के माध्यम से समझाइये।

2. प्राणायाम के कार्य को स्पष्ट करते हुए प्राणायाम के उद्देश्य व सिद्धान्तों की सुदीर्घ व्याख्या करें।

3. हठ प्रदीपिका में वर्णित किन्ही दो प्राणायामों की सुदीर्घ व्याख्या करें।

4. भ्रामरी व शीतली प्राणायाम की सन्दर्भ सहित व्याख्या करें।

इकाई 15- मुद्रा एवं बंध का अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य, हठयोग प्रदीपिका में वर्णित मुद्राओं की विधि लाभ एवं सावधानियाँ

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 मुद्रा का अर्थ एवं परिभाषायें

15.4 बन्ध का अर्थ एवं परिभाषायें

15.5 मुद्रा व बन्ध का उद्देश्य

15.6 हठप्रदीपिका में वर्णित मुद्रा का वर्णन

- 15.6.1 महामुद्रा
- 15.6.2 महाबन्ध
- 15.6.3 महावेध
- 15.6.4 खेचरी
- 15.6.5 उड्डीयान बन्ध
- 15.6.6 मूलबन्ध
- 15.6.7 जालन्धर बन्ध
- 15.6.8 विपरीतकरणी
- 15.6.9 वज्रोली
- 15.6.10 शक्तिचालन

15.7 सारांश

15.8 शब्दावली

15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.11 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में प्राणायाम के विविध पक्षों का अध्ययन किया। तथा प्रस्तुत इकाई से हम हठयोग के महत्वपूर्ण अभ्यासों मुद्रा व बन्धों की जानकारी प्राप्त करेंगे। हठयोग के ग्रन्थ कहते है कि मुद्रा बहुमूल्य साधन है जो कुण्डलिनी का जागरण करके साधक को लक्ष्य तक पहुँचाती है इसे सोने की पिटारी की तरह गुप्त रखना चाहिए। प्राणायाम के अभ्यासों में जब कुम्भक किया जाता है तो बन्धों का लगना अति आवश्यक है योग के दृष्टिकोण से बन्ध का प्रयोग प्राणायाम के समय अति आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई में आप मुद्रा व बंधों की विविध अवधारणा का अध्ययन करेंगे।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप

- मुद्रा के अर्थ व परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे।
- बंध के अर्थ व परिभाषाओं को जान सकेंगे।
- मुद्रा व बंधों के उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
- हठप्रदीपिका में वर्णित विविध मुद्रा व बन्धों का विश्लेषण कर सकेंगे।

15.3 मुद्रा का अर्थ एवं परिभाषायें

'मुद्रा' शब्द का निर्वचन उणादि कोष में इस प्रकार किया गया है-
'मोदन्ते हृष्यन्ति यया सा मुद्रा यन्त्रिता सुवर्णादि धातुमया वा'

अर्थात् जिसके द्वारा सभी व्यक्ति प्रसन्न होते हैं] वह मुद्रा है जैसे सुवर्णादि बहुमूल्य धातुएं प्राप्त करके व्यक्ति प्रसन्नता का अनुभव अवश्य करता है। 'मुद हर्षे' धातु में 'रक्' प्रत्यय लगाकर मुद्रा शब्दं की निष्पत्ति होती है जिसका अर्थ प्रसन्नतादायिनी स्थिति है। धन या रूपये के अर्थ में 'मुद्रा' शब्द का प्रयोग भी इसी आशय से किया गया है।
कोष में 'मुद्रा' शब्द के अनेक अर्थ मिलते हैं। जैसे मोहर] छाप] मुहरबंद करना] नामांकित अंगूठी] प्रतिभा चिन्ह] पदक] रुपया] रहस्य] अंगों की विशिष्ट स्थिति (हाथ या मुख की मुद्रा)] नृत्य की मुद्रा (स्थिति) आदि।

- यौगिक सन्दर्भ में मुद्रा शब्द को 'रहस्य' तथा 'अंगों की विशिष्ट स्थिति' के अर्थ में लिया जा सकता है। कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने के लिए जिस विधि का प्रयोग किया जाता है, वह रहस्यमयी ही है। व गोपनीय होने के कारण सार्वजनिक नहीं की जाने वाली विधि है। अतः रहस्य अर्थ उचित है। आसन व प्राणायाम के साथ बन्धों का प्रयोग करके विशिष्ट स्थिति में बैठकर 'मुद्रा' का अभ्यास किया जाता है। इसलिए इसे अंगों की स्थिति विशेष के रूप में भी लिया जा सकता है। और इनमें हाथों तथा मुख की विशेष स्थिति को भी सम्मिलित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ- जानुशिरासन में बैठकर प्राणायाम तथा बन्धों का प्रयोग करके महामुद्रा का अभ्यास किया जाता है तथा प्राणायाम के अभ्यास के लिए हाथ की विशेष मुद्रा बनाकर नासारन्ध्रों पर ले जानी होती है। अतः उक्त 'रहस्य' तथा 'अंगों की विशिष्ट स्थिति' अर्थ उचित है। 'मुद्रा' अत्यन्त बहुमूल्य साधन हैं जो

कुण्डलिनी शक्ति का जागरण करके साधक को लक्ष्य तक पहुँचाती है। अतः 'सुवर्ण या धन या रुपया' का भाव भी इसमें निहित है। इसकी बहुमूल्यता निःसन्देह सिद्ध होती है।

- उपर्युक्त अर्थ के आलोक में मुद्रा की परिभाषा निम्न प्रकार से दी जा सकती है-

1. आन्तरिक भावों को व्यक्त करने की विधा मुद्रा कहलाती है।
2. आसन, प्राणायाम की सम्मिलित विशिष्ट स्थिति जिसके द्वारा कुण्डलिनी शक्ति का जागरण सम्भव है, मुद्रा कहलाती है।
3. आनन्द की प्राप्ति कराने वाली प्रक्रिया मुद्रा है।
4. चित्त को प्रकट करने वाले विशेष भाव मुद्रा है।
5. मुद्रा आसन की वह विशेष स्थिति जिसमें प्राणायाम सम्मिलित हो या नहीं हो परन्तु जो कुण्डलिनी जागरण में मदद करें वह मुद्रा कहलाती है।

केवल आसन अथवा केवल प्राणायाम की अपेक्षा यह सम्मिलित अभ्यास शीघ्र फलदायक है। मुद्राओं के अभ्यास से साधक सूक्ष्म शरीर और प्राण शक्ति को नियंत्रित कर लेता है जिससे उसकी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो जाती है तथा साधक में सफलता प्राप्त होती है। साधक अपने प्राणमय और मनोमय कोष को स्वच्छ व निर्मल बना लेता है जिससे चित्त एकाग्र हो जाता है तथा कुण्डलिनी जागरण व समाधि की स्थिति अनायास प्राप्त हो जाती है।

15.4 बन्ध का अर्थ एवं परिभाषायें

बन्ध-बन्धने धातु में घञ प्रत्यय करके बन्ध शब्द बनता है जिसका अर्थ है बांधना या नियन्त्रित करना। जिस प्रक्रिया के द्वारा शरीर के विभिन्न आन्तरिक अवयवों को बांधकर अथवा नियंत्रित करके साधना में प्रवृत्ति होती है, वह क्रिया बंध कहलाती है। कोषकार अनेक अर्थ करते हैं। जैसे- बांधना, कसना, जकड़ना, व्यवस्थित करना, रोकना, हस्तक्षेप करना आदि किन्तु यहाँ पर जिन बन्धों की चर्चा अपेक्षित है, वे शरीर को नियंत्रित करके साधना के मार्ग को प्रशस्त करते हैं। बन्ध को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है –

किसी अंग विशेष को बांधकर संवेदनाओं को लक्ष्य विशेष की ओर भेजना बन्ध है।

योग के दृष्टिकोण से बन्ध का प्रयोग प्राणायाम के समय आवश्यक है। इसके द्वारा प्राण को नियंत्रित किया जाता है जिससे वह अनिश्चित जगह न जा सके। जहाँ प्राण पहुँचेगा, उसी अंग पर उसका प्रभाव पड़ेगा। अतः बन्ध का प्रयोग करके प्राण को नियंत्रित करके इच्छित स्थान पर उसको ले जाना संभव हो जाता है। कहा जा सकता है कि शरीर के अंगों को संकुचित करके प्राण को नियंत्रित करने के लिए वृत्तियों को अन्तर्मुखी करने की प्रक्रिया का नाम बन्ध है जिससे आन्तरिक अंग व स्नायु स्वस्थ तथा क्रियाशील होते हैं।

15.5 मुद्रा व बन्ध का उद्देश्य

मुद्राओं व बन्धों का कार्य साधक को साधना पथ पर अग्रसर करता है जिसके लिए कुण्डलिनी जागरण आवश्यक है। इन मुद्राओं व बन्धों के प्रयोग से कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है जो हठयोगी की साधना का मुख्य उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त आन्तरिक अवयवों को नियंत्रित करके साधक अन्तःस्रावी तथा बहिःस्रावी ग्रन्थियों को प्रभावित करता है जिनके स्राव से शारीरिक व मानसिक स्थिति सुदृढ़ होती है। मुद्रा के अभ्यास में 'स्थिरता' की बात स्वयं घेरण्ड संहिता में की गई है- 'मुद्रया स्थिरता चैव'। स्नायु संस्थान को वशीभूत करके इच्छित ऊर्जा का उत्पादन एवं प्रयोग करके स्थिरता का भाव प्राप्त किया जा सकता है। यह मुद्रा का भाव साधक को अपने गुणों के सदृश ही ढाल लेता है और वह मुद्रा के प्रभाव से प्रभावित होकर साधना पथ पर अग्रसर हो जाता है। इन मुद्राओं के अभ्यास से तंत्रिका तंत्र के द्वारा मस्तिष्क को भेजे जाने वाले संदेश चेतना को जागृत करने में सफल हो जाते हैं।

बन्ध का प्रयोग तंत्रिकाओं को प्रभावित करता है। गले, उदर अथवा गुदाद्वार पर जो तंत्रिकाएँ कार्यरत हैं, उन्हें सक्रिय करके अवरोध उत्पन्न कर दिया जाए तो प्राण के लिए ऊर्ध्व, अधो या मध्य मार्ग बंद हो जाएंगे और प्राण का

सुषुम्ना में गमन होने लगेगा। इस प्रकार बन्ध कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने तथा प्राण पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

मुद्राएँ व बन्ध साधक की बाह्यवृत्ति को समाप्त कर अन्तःवृत्ति को जाग्रत करते हैं, जिससे वह संसार की ओर से विमुख होकर साधना पथ पर बढता रहे। इनके अभ्यास से वीतराग होकर साधक लक्ष्य प्राप्ति के प्रति सजग हो जाता है। ऐसा एकाग्रचित साधक साधकों की श्रेणी में सम्मान का अधिकारी होता है।

स्वामी कुवलयानन्द कहते हैं- 'मुद्रा तथा बन्ध हठयोग की खास विशेषताएँ है। ये अनेक तंत्रिकापेशी बन्ध लगाकर किए जाते हैं। इनमें आन्तरिक दबाव से बहुत बड़ी सीमा तक परिवर्तन होते हैं तथा अनेक ग्रंथिस्रावों तथा अन्तःस्रावी ग्रंथियों तथा कुछ तंत्रिका समूहों को भी प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। प्राचीन पुस्तकों में यह दावा किया गया है कि इस प्रकार के यौगिक व्यायाम से पेशाब तथा पाखाने की मात्रा कम हो जाती है (क्षयो मूत्र पुरीषयोः)। खास तौर से मूल तथा उड्डीयान बन्ध के अभ्यास द्वारा जोकि अभ्यासी की योग्यतानुसार विभिन्न प्रकार के उपवातावरणीय दबाव वक्ष तथा पेट गुहा में पैदा करते हैं।' & (यौगिक चिकित्सा पृ॰ 36-37)

स्वामी निरंजनानन्द की मान्यता है कि 'योग शास्त्र में जिन मुद्राओं और बन्धों का वर्णन किया गया है वे तन्त्रिका तंत्र की संवेदनाओं और उत्तेजनाओं को शांत एवं संयत करने में सहायक सिद्ध होती हैं। कुण्डलिनी योग या क्रिया योग में जिन मुद्राओं का अभ्यास किया जाता है जैसे अश्विनी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, तड़ागी मुद्रा इत्यादि, उनका प्रभाव प्राणमय कोश पर पड़ता है और वे प्राण के प्रवाह को परिवर्तित करने का प्रयास करती है। उनका प्रभाव मस्तिष्क पर भी पड़ता है और वे चित्त के भीतर भाव विशेष को जाग्रत करने में सहायक होती हैं ताकि हम अन्तर्मुखी हो सकें। इनका अभ्यास एकाग्रता प्राप्ति में सहायक होता है।

बन्ध के अभ्यास वास्तव में स्नायविक अवरोध हैं तथा शरीर और मस्तिष्क के भीतर जितनी भी तन्त्र तंत्रिकाएँ है, उनमें उत्पन्न हो रही संवेदनाओं को अवरुद्ध कर देते हैं और दूसरे प्रकार की संवेदनाओं को जाग्रत करते हैं। आन्तरिक अंगों में जहाँ भी संकुचन की क्रिया होती है, चाहे गर्दन में हो, चाहे कण्ठ में हो, चाहे जननेन्द्रिय के क्षेत्र में हो या गुदाद्वार के क्षेत्र में हो, वह आन्तरिक अंगों से सम्बन्धित प्रक्रियाओं को बदल देती है, संवेगों को बदल देती है। शरीर को एक अन्य प्रकार की उत्तेजनात्मक या शान्त अवस्था में ले जाती है, जिसके कारण आन्तरिक स्थिरता का आभास होता है।' – (घेरण्ड संहिता, पृ॰ 204)

अतः स्पष्ट होता है कि बन्ध व मुद्राएँ हमें बाह्य या भौतिक जगत् से हटाकर अन्तर्जगत् में ले जाती है। अन्नमय, प्राणमय व मनोमय कोश पर विजय प्राप्त करने के बाद ही विज्ञानमय कोश में पहुँचने की स्थिति होती है। आसन, प्राणामय, मुद्रा व बन्ध के माध्यम से अन्नमय, प्राणमय व मनोमय कोश पर नियंत्रण किया जाना सम्भव है। अतः लक्ष्य की प्राप्ति हेतु मुद्राओं की उपयोगिता निःसन्देह सिद्ध होती है। कहा गया है-

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम्।
बह्मद्वारमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत्।। ह॰प्र॰ & 3@5

अर्थात् ब्रह्मद्वार (मूलस्थान) पर सोती हुई कुण्डलिनी शक्ति को जगाने के लिए सब प्रयत्न करके मुद्राओं का अभ्यास करना चाहिए क्योंकि मुद्राएँ ही कुण्डलिनी को जगाने के लिए एकमात्र सर्वोत्तम उपाय है। इससे मुद्राभ्यास की उपयोगिता सिद्ध होती है।

15.6 हठयोगप्रदीपिका के अनुसार मुद्रायें

हठयोग प्रदीपिका में मुद्राओं का वर्णन करते हुए कहा गया है-

महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।

उड्डीयानं मूलबन्धस्ततो जालंधराभिधः। ह०प्र० **3/6**

करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्तिचालनम्।

इदं हि मुद्रादशकं जरामरणनाशनम्।। ह०प्र० 3/7

अर्थात महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्डीयानबन्ध, मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध, विपरीतकरणी, वज्रोली और शक्तिचालनी ये दश मुद्रायें हैं। जो जरा (वार्द्धक्य) मरण (मृत्यु) का नाश करने वाली है। इनका वर्णन निम्नलिखित है-

15.6.1 महामुद्रा - महामुद्रा का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

पादमूलेन वामेन योनिं सम्पीड्य दक्षिणम्।

प्रसारितं पदं कृत्वा कराभ्यां धारयेद्दृढम्।। ह०प्र० 3/9

कंठे बंधं समारोप्य धारयेद्वायुमूर्ध्वतः।

यथा दण्डहतः सर्पो दंडाकारः प्रजायते
ऋज्वीभूता तथा शक्ति: कुण्डली सहसा भवेतत् ।। ह०प्र० 3/9,10

अर्थात् बायें पैर को एड़ी को गुदा और उपस्थ के मध्य सीवन पर दृढ़ता के साथ लगाकर दाहिने पैर को फैला कर रखें। दोनों हाथों से दाहिने पैर के पंजे को दृढ़ता के साथ पकड़े। तत्पश्चात् पूरक करने के उपरान्त भली प्रकार जालन्धर बन्ध लगाकर मूल बन्ध की सहायता से वायु को उर्ध्वदेश में ही धारण करें। जिस प्रकार दण्ड से मारे जाने पर सर्प सीधा हो जाता है, उसी प्रकार महामुद्रा के अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाती है। इस प्रकार कुण्डलिनी का बोध हो जाने पर प्राण सुषुम्ना में प्रवेश कर जाता है। आगे कहा गया है-

ततः शनैः शनैरेव रेचयेन्नतु वेगतः।

इयं खलु महामुद्रा महासिद्धि प्रदर्शिता ।। ह०प्र० 3/12

अर्थात् कुम्भक के पश्चात् वायु का धीरे-धीरे रेचक करना चाहिए वेग से नहीं। वेग से रेचक करने में बल की हानि होती है। इसी को देवताओं ने महामुद्रा कहा है। महामुद्रा के क्रम का वर्णन करते हुए कहा गया है-

चंद्रांगे तु समभ्यस्य सूर्याङगे पुनरभ्यसेत्।

यावतुल्या भवेत्संख्या ततो मुद्रां विसर्जयेत्।। ह०प्र० 3/14

अर्थात् चन्द्र अंग की ओर से अर्थात् बायीं ओर से अभ्यास करने के पश्चात् सूर्यांग अर्थात् दायीं ओर से भी इसका अभ्यास भली प्रकार करना चाहिए और दोनों ओर से समान संख्या में कुम्भक करने के पश्चात् ही महामुद्रा का विसर्जन करना चाहिए।

लाभ - महामुद्रा के लाभों का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

न हि पथ्यमपथ्यं वा रसा सर्वेऽपि नीरसाः।

अपि भुक्तं विषं घोरं पीयूषमपि जीर्यते।। ह०प्र० 3/15

क्षयकुष्ठ गुदावर्त गुल्माजीर्ण पुरोगमा।

तस्य दोषाः क्षयं यान्ति महामुद्रा तु योऽभ्यसेत्।। ह०प्र० 3/16

अर्थात् खाने योग्य व न खाने योग्य रस युक्त व बिना रस वाले शुष्क, कटु, अम्ल, तीखे सभी पदार्थ आसानी से पच जाते हैं। महामुद्रा का साधक विष के समान अन्न को भी सरलता से पचा लेता है। जो पुरुष महामुद्रा का अभ्यास करता है उसको क्षय, कुष्ठ, गुदावर्त, गुल्म रोग, अजीर्ण, जलोदर, ज्वर आदि रोग नहीं होते। उसके शरीर के समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं।

15.6.2 महाबन्ध मुद्रा – महाबन्ध मुद्रा का वर्णन करते हुए घेरण्ड संहिता में कहा गया है-

पार्ष्णि वामस्य पादस्य योनिस्थाने नियोजयेत्।

वामोरुपरि संस्थाप्य दक्षिणं चरणं तथा।।

पूरयित्वा ततो वायुं हृदय चित्रकं दृढ़म्।

निष्पीड्य योनिमाकुंच्य मनोमध्येनियोजयेत्।। ह०प्र० 3/19

धारयित्वा यथाशक्ति रेचयेदनिलं शनैः।

सव्यांगे तु समभ्यस्य दक्षांगे पुनरभ्यसेतू।। ह०प्र० 3/20

अर्थात् बायें पैर की एड़ी को योनि स्थान अर्थात् गुदा और उपस्थ के मध्य में लगायें और दाहिने पैर को बायीं जंघा के ऊपर रखकर बैठें। तत्पश्चात् दोनों नासारन्ध्रों से पूरक करें तथा ठुड्डी को दृढ़ता से कण्ठकूप में लगायें अर्थात् जालन्धर बन्ध को लगाकर फिर गुदा प्रवेश को संकुचित कर मूलबन्ध लगायें तथा मन को सुषुम्ना में केन्द्रित करते हुए यथाशक्ति कुम्भक करने के पश्चात् धीरे-धीरे वायु का रेचन करें। इसी क्रिया को पैरों की स्थिति बदल कर दोहरायें, अर्थात् वामांग और दक्षिणांग से बराबर मात्रा में करें।

लाभ - महाबन्ध मुद्रा का लाभ बताते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

अयं खलु महाबंधो महासिद्धि प्रदायकः।।

काल पाशमहाबंधविमोचनविचक्षणः।। ह०प्र० 3/ 22,

त्रिवेणीसंगम धत्ते केदारं प्रापयेन्मनः।। ह०प्र० 3/ 23

अर्थात् यह महाबंध मुद्रा निश्चित ही महासिद्धियों को देने वाली है। यह साधक को मृत्यु पाश से छुड़ाने वाली मुद्रा है और इड़ा, पिंगला व सुषुम्ना का मिलन रूपी जो प्रयोग है तथा दोनों भौहों के मध्य केदार रूप जो शिव स्थान है, उसको प्राप्त कराने वाली है।

15.6.3 महावेध मुद्रा - हठयोग प्रदीपिका में महावेध मुद्रा का वर्णन करते हुए कहा गया है-

महाबंधस्थितौ योगी कृत्वा पूरकमेकंधीः।।

वायुना गतिमावृत्य निभृतं कंठमुद्रया॥ ह०प्र० 3/25

समहस्त युगो भूमौ स्फिचौ स ताडयेच्छनैः॥

पुटद्वयमतिक्रम्य वायुः स्फुरति मध्यगः॥ ह०प्र० 3/26

सोमसूर्याग्निसंबंधों जायते चामृताय वै॥

मृतावस्था समुत्पन्ना ततो वायुं विरेचयेत्॥ ह०प्र० 3/27

अर्थात् महाबंध मुद्रा में स्थित होकर दोनों नासारन्ध्रों से पूरक करें। फिर आभ्यान्तर कुम्भक करें। कुम्भक के समय जालन्धर बन्ध को दृढ़ता के साथ लगाकर रखें। दोनों हाथों की हथेलियों को भूमि पर टिकाकर कुम्भक के समय में नितम्बों को ऊपर उठाकर जमीन पर पटकते हुए उनकी ताड़ना करें। यह कहा गया है कि इस महावेध के अभ्यास से प्राण इड़ा व पिंगला का त्याग कर सुषुम्ना मार्ग में संरचण करने लगता है। इड़ा, पिंगला व सुषुम्ना के चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि देवता हैं। इन तीनों नाड़ियों का संबंध मोक्ष हेतु है। तीनों नाड़ियों के एक हो जाने से मृत्यु के समान अवस्था हो जाती है। कुम्भक में ऐसी अवस्था आने के पश्चात् वायु का रेचन करें। यही महावेध मुद्रा है।

लाभ -महावेध मुद्रा के लाभ बताते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

महावेधोऽयमभ्यासान्महासिद्धिप्रदायकः।

क्लीपलितवेपघ्नः सेव्यते साधकोत्तमैः॥ ह०प्र० 3/28

अर्थात् महावेध मुद्रा के अभ्यास से अणिमा आदि सिद्धियाँ भली प्रकार प्राप्त हो जाती है। इसके अभ्यासी के शरीर में वृद्धावस्था में त्वचा का संकुचन नहीं होता। केश श्वेत नहीं होता। शरीर के कम्पन को भी यह मुद्रा दूर करने वाली है। इसीलिए उत्तम साधक इस मुद्रा का अभ्यास करते हैं।

15.6.4 खेचरी मुद्रा - खेचरी मुद्रा का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।

भ्रुवोरंतर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी॥ ह०प्र० 3/31

अर्थात् कपाल के मध्य में जो छिद्र है, जिह्वा को उल्टी कर उसमें प्रविष्ट कराकर दृष्टि को भ्रूमध्य में स्थित करने को खेचरी मुद्र कहा गया है। खेचरी मुद्रा के साधन का वर्णन करते हुए आगे कहा गया है-

छेदन चालनद्रोहैः कलां क्रमेण वर्धयेत्तावत्॥

सा यावद्भ्रूमध्यं स्पृशति तदा खेचरीसिद्धिः॥ ह०प्र० 3/32

स्नुहीपत्रनिभं शस्त्रं सुतीक्ष्णं स्निग्धनिर्मलम्।

समादाय ततस्तेन रोममात्रं समुच्छिनेत्॥ ह०प्र० 3/33

ततः सैंधवपथ्याभ्यां चूर्णिताभ्यां प्रघर्षयेत्॥

पुनः सप्तदिने प्राप्ते रोममात्रं समुच्छिनेत्॥ ह०प्र० 3/34

एवं क्रमेण षण्मासं नित्यंयुक्तः समाचरेत्।।
षण्मासाद्रसनामूलशिराबंधः प्रणश्यति।। ह०प्र० 3/35

कलां पराङमुखीं कृत्वा त्रिपथे परियोजयेत्।।

सा भवेत्खेचरी मुद्रा व्योमचक्रं तदुच्यते।। ह०प्र० 3/36

अर्थात् छेदन व चालन क्रिया के द्वारा जिह्वा को बढ़ाकर इतना लम्बा करें कि वह बाहर निकलकर भृकुटियों के मध्य को स्पर्श करने लगे। तब खेचरी मुद्रा सिद्ध समझनी चाहिए। इस छेदन क्रिया में स्नुही (सेहुड) के पत्ते के समान तीक्ष्ण एवं निर्मल शस्त्र से जिह्वा के मूल की रोम मात्र छेदन करना चाहिए। छेदन के पश्चात् सैंधव लवण के चूर्ण और हरड़ से जिह्वा मूल को भली प्रकार मालिश करें। यह क्रिया प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल करें। छेदन की क्रिया सप्ताह में एक बार करनी चाहिए। इस प्रकार छेदन और फिर सातवें दिन तक घर्षण क्रिया करके पुनः छेदन, छह मास तक निरन्तर करने से जिह्वा का बन्धन कट जाता है। फिर जिह्वा की वृद्धि होने पर उसे पलट कर कपाल गुहा में लगाकर ब्रह्मरन्ध्र से स्रवित होने वाली आनन्द सुधा का पान करना ही खंचरी मुद्रा है।

लाभ - खेचरी मुद्रा के लाभों का वर्णन करते हुए कहा गया है-

रसनामूर्ध्वगां कृत्वा क्षणार्धमपि तिष्ठति।।

विषैर्विमुच्यते योगी व्याधिमृत्युजरादिभिः।। ह०प्र० 3/37

अर्थात् जो आधे क्षणमात्र भी जीभ को ऊपर लगाकर रखता है। वह साधक विष, रोग, अकाल मृत्यु तथा बुढ़ापा आदि से मुक्त हो जाता है।

न रोगो मरणं तन्द्रा न निद्रा न क्षुधा तृषा।

न च मूर्च्छा भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्।। ह०प्र० 3/38

अर्थात् जो खेचरी मुद्रा को सिद्ध कर लेता है, उसे रोग, मरण, तन्द्रा, निद्रा, भूख, प्यास तथा मूर्च्छा आदि भी नहीं सताती है। खेचरी मुद्रा के लाभों से सम्बन्धित बहुत से श्लोक हठयोग प्रदीपिका में कहे गये हैं। उनमें कहा है कि इसका साधक न कर्म में लिप्त होता है, न काल चक्र से बाधित होता है। इसके साधक का बिन्दु सुन्दर स्त्री के आलिंगन करने पर स्खलित नहीं होता। इसके साधक को यदि तक्षक सर्प भी डस ले तो उस पर विष का प्रभाव नहीं पड़ता। खेचरी मुद्रा के अनेक लाभों का वर्णन करते हुए अन्त में ग्रन्थकार कहते हैं-

एकं सृष्टिमयं बीजमेका मुद्रा च खेचरी।।

एको देवो निरालम्ब एकावस्था मनोन्मनी।। ह०प्र० 3/53

अर्थात् सृष्टि का मूल बीज एक प्रणव ही है, मुद्रा में एक खेचरी ही मुद्रा है। निरालम्ब ही एक परमात्मा है और मनोन्मनी ही एकाग्र अवस्था है। योगियों ने इस मुद्रा को सबसे श्रेष्ठ कहा है।

15.6.5 उड्डीयान बन्ध मुद्रा - उड्डीयान बन्ध मुद्रा का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

बद्धोयेन सुषुम्नायां प्राणस्तूड्डीयते यतः।।

तस्मादुड्डीयानाख्योऽयं योगिभिः समुदाहृतः।। ह०प्र0 3/54

उड्डीनं कुरुते यस्मादविश्रान्तं महाखगः।।

उड्डीयानं तदेव स्यात्तत्र बन्धोऽभिधीयत।। ह०प्र० 3/55

अर्थात् सुषुम्ना के अन्दर निरुद्ध प्राण इसके द्वारा ऊपर उठाया जाता है, इसलिए योगी इसको उड्डीयान बन्ध के नाम से पुकारते हैं। जिस प्रकार प्राणी रूपी महापक्षी निरन्तर उड़ान भरता रहता है। वैसे ही प्राण की स्थिति इस मुद्रा में होती है, इसलिए यह उड्डीयान कहा गया है। इस बन्ध की विधि का वर्णन करते हुए कहा गया है-

उदरे पश्चिमं तानं नाभेरुर्ध्व च कारयेत्।।

उड्डीयानी ह्यासौ बन्धो मृत्युमातङ्कैकेसरी।। ह०प्र० 3/56

अर्थात् उदर को नाभि के ऊपर, नीचे और पीछे की ओर खीचें। यह उड्डीयान बन्ध मृत्यु रूपी हाथी से बचने के लिए सिंह के समान है।

लाभ - इसके लाभों का वर्णन करते हुए कहा गया हैः-

उड्डीयानं तु सहजं गुरुणा कथितं सदा।।

अभ्यसेन् सततं यस्तु वृद्धो अपि तरुणायते।। ह०प्र० 3/57

अर्थात् गुरु द्वारा बताये गये मार्ग से स्वाभाविक रूप से उड्डीयान बन्ध का सदा अभ्यास करने वाला वृद्ध भी युवक के समान हो जाता है। इससे साधक मृत्यु को जीत लेता है। इस बन्ध को सभी बन्धों में श्रेष्ठ बताया गया है और कहा गया है कि इसके अभ्यास से साधक मुक्ति को सरलता से प्राप्त कर लेता है।

15.6.6 मूलबन्ध मुद्रा - मूलबन्ध का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा है-

पार्ष्णिभागेन सम्पीड्य योनिमाकुंचयेद्गुदम्।।

अपानमूर्ध्वमाड्डष्य मूलबन्धोऽभिधीयते।। ह०प्र० 3/60

अर्थात् एड़ी से सीवनी को दबाकर गुदा का आकुंचन करना चाहिए। फिर अपान वायु को ऊपर की ओर खींचकर रखने का नाम ही मूलबन्ध है।

लाभ - मूलबन्ध मुद्रा के लाभों का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

अपान प्राणयोगरैक्यं क्षयो मूत्रपुरीषयोः।

युवा भवति वृद्धोऽपि सततं मूलबन्धनात्।। ह०प्रŒ 3/64

अर्थात् निरन्तर मूलबन्ध का अभ्यास करने से अपान और प्राण की एकता होती है, मल-मूत्र की कमी होती है तथा वृद्ध भी युवक हो जाता है। आगे कहा है कि इसके अभ्यास से अग्नि प्रदीप्त होती है। अग्नि के देह में प्रज्वलित होने पर उसके ताप से सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाती है और ब्रह्मनाड़ी में प्रविष्ट हो जाती है। इसलिए साधकों को प्रतिदिन मूलबन्ध का अभ्यास करना चाहिए।

15.6.7 जालन्धर बन्ध मुद्रा - जालन्धर बन्ध मुद्रा का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

कण्ठमाकुंच्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढ़म्।

बन्धो जालन्धराख्योऽयं जरामृत्यु विनाशकः।। ह०प्र० 3/ 69

अर्थात् कण्ठ को संकुचित कर हृदय में चिबुक के दृढ़तापूर्वक लगाने का नाम ही जालन्धर बन्ध है। यह जालन्धर बन्ध बुढ़ापा और मृत्यु को दूर करने वाला है।

लाभ - जालन्धर बन्ध मुद्रा के अन्य लाभों का वर्णन करते हुए कहा गया है-

बध्नाति हि शिराजालमधोगामी नभोजलम्।।

ततोः जालन्धरो बन्धः कण्ठदुःखौघनाशनः।। ह०प्र० 3/70

अर्थात् यह जालन्धर बन्ध कण्ठगत दोषों का नाश करने वाला है। यह नाड़ी समूहों को बांधकर रखने वाला है। अतः ब्रह्मरन्ध्र से क्षरित होने वाला सोमस्राव नाभि में गिर कर भस्म नहीं होता। साथ ही यह बन्ध वायु के प्रकोप को दूर करने वाला बन्ध है।

15.6.8 विपरीतकरणी मुद्रा - विपरीतकरणी मुद्रा के लाभों का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

ऊर्ध्व नाभिरधस्तालुरूर्ध्व भानुरधः शशि।

करणी विपरीताख्या गुरुवाक्येन लभ्यते।। ह०प्र० 3/78

अर्थात् नाभि के ऊपर तथा तालु के नीचे करने से सूर्यमण्डल ऊपर और सोममण्डल नीचे हो जाता है। सोम मण्डल यहाँ ब्रह्मरन्ध्र को कहा गया है और सूर्यमण्डल नाभि को कहा गया है। इसी को विपरीतकरणी कहा गया है। इसे गुरु से सीख कर करना चाहिए। आगे कहा गया है-

अधः शिरश्चोर्ध्वपादः क्षणं स्यात्प्रथमेदिने।

क्षणाच्च किंचिंदधिकमभ्यसेच्च दिने दिने।। ह०प्र० 3/80

अर्थात् प्रथम दिन एक क्षण के लिए मस्तक को नीचे करके और पैरों को ऊपर करके रहना चाहिए। तत्पश्चात् प्रतिदिन क्षण से कुछ अधिक बढ़ाते रहने का अभ्यास करना चाहिए।

लाभ - विपरीतकरणी मुद्रा के लाभों का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

नित्यमभ्यासयुक्तस्य जठराग्निविवर्धिनी।

आहारोबहुलस्तस्य सम्पाद्यः साधकस्य च।।

अल्पाहारो यदि भवेदग्निर्दहति तत्क्षणात्।। ह०प्र० 3/79

अर्थात् प्रतिदिन इसका अभ्यास करने वाले की जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है। इसके अभ्यासी को पर्याप्त मात्रा में भोजन करना चाहिए। यदि वह कम भोजन करता है, तो अग्नि उसके शरीर को जलाने लगती है। इसके अभ्यास से छह महीने बाद ही झुर्रिया तथा सफेद बाल दिखाई नहीं पड़ते हैं। जो प्रतिदिन इसका अभ्यास करता है वह मृत्यु को जीत लेता है।

15.6.9 वज्रोली मुद्रा - हठयोग प्रदीपिका में वज्रोली मुद्रा को बहुत महत्व दिया गया है। (यह मुद्रा केवल पाठकों की जानकारी के लिए वर्णित की जा रही है। इसका अभ्यास न करें) वहाँ कहा गया है कि यदि साधक योगशास्त्रों के नियम के पालन के बिना अकेले वज्रोली का अभ्यास करता है तो भी वह सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है अर्थात् सफलता को प्राप्त कर लेता है। इसी विधि का अभ्यास इस प्रकार बताया गया है-

मेहनेन शनैः सम्यगूर्ध्वाकुंचनमभ्यसेत्।

पुरुषोऽप्यथवा नारी वज्रोलीसि(िमाप्नुयात्।। ह०प्र० 3/84

यत्नतः शस्तनालेन फूत्कारं वज्रकन्दरे।

शनैः शनैः प्रकुर्वीत वायुसंचारकारणात्।। ह०प्र० 3/85

अर्थात् धीरे-धीरे अच्छी तरह से योनिमण्डल का आकुंचन करने का अभ्यास करना चाहिए। ऐसा करने से पुरुष अथवा नारी दोनों को ही वज्रोली का फल प्राप्त होता है। इस मुद्रा की पूर्व तैयारी का वर्णन करते हुए कहा गया है कि शीशे से तैयार पर्याप्त लम्बी नली को धीरे-धीरे लिंग छिद्र में प्रविष्ट कराकर मूत्रमार्ग से वायु का आकर्षण करना चाहिए। यह शीशे से निर्मित नली चिकनी और 14 अंगुल लम्बाई की होनी चाहिए। प्रथम दिन मात्र 1 अंगुल ही नली में प्रवेश करना चाहिए। इस प्रकार क्रम से बढ़ाते हुए उस नली को 12 अंगुल तक लिंगविवर में प्रविष्ट कराना चाहिए। फिर नली के मध्य से अन्दर की ओर मेढ् में वायु का प्रवेश करना चाहिए। इससे लिंग विवर शुद्ध हो जाता है। इसके पश्चात् शुद्ध व थोड़ा उष्ण जल लिंग द्वारा आकर्षित करना चाहिए। जलाकर्षण सिद्ध हो जाने के पश्चात् बिन्दु का आकर्षण करना चाहिए। बिन्दु का आकर्षण हो जाने पर वज्रोली मुद्रा सिद्ध हो जाती है। जिन्होंने प्राण वायु पर विजय प्राप्त कर ली है, वे ही इसको सिद्ध कर सकते हैं अन्य नहीं। अथवा जिन्होंने खेचरी मुद्रा व प्राणज्य दोनों कर लिये हों, वे इसको आसानी से कर लेते हैं। इसको सिद्ध कर लेने के अनन्तर योनिमण्डल में आकर गिरने वाले बिन्दु को अभ्यास के द्वारा ऊपर उठायें और उस चलायमान बिन्दु को ऊपर खींच कर सुरक्षित रखें। स्त्रीयोगिनी के लिए भी कहा गया है कि अभ्यास को कुशलता के साथ नारी भी पुरुष के वीर्य का भली प्रकार आकर्षण कर अपने रज का वज्रोली मुद्रा के द्वारा रक्षण करती है तो ऐसी नारी योगिनी प्रशंसनीय है।

लाभ - वज्रोली मुद्रा के लाभों का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

एवं संरक्षयेद्विन्दुं मृत्युं जयति योगवित्।

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।। ह०प्र० 3/87

अर्थात् इस प्रकार वज्रोली मुद्रा के द्वारा बिन्दु की रक्षा करने वाला योग का जानकार साधक अकाल मृत्यु को जीत लेता है क्योंकि बिन्दु का क्षरण ही मृत्यु है और बिन्दु का रक्षण ही जीवन है। कहा गया है-

सुगन्धो योगिनो देहे जायते बिन्दुधारणात्।

यावद्विन्दुः स्थिरो देहे तावत्कालभयं कुतः।। ह०प्र० 3/88

अर्थात् बिन्दु का धारण करने से साधक के शरीर में सुगन्ध पैदा होती है। जब तक शरीर में बिन्दु है तब तक काल का भय कहाँ अर्थात् ऐसे साधक की अकाल मृत्यु नहीं होती। इस मुद्रा के अभ्यास से आकाश गमन आदि की सिद्धि का

प्राप्त होना बताया गया है। साथ ही कहा गया है कि वज्रोली के अभ्यास से देह सिद्धि मिलती है। यह पुण्य प्रदान करने वाला यौगिक अभ्यास भोग भोगते हुए मुक्ति प्रदान करने वाला अभ्यास है।

15.6.10 शक्ति चालिनी मुद्रा - हठयोग प्रदीपिका में कुटिलाङ्री, कुण्डलिनी, भुजङ्री, शक्ति, ईश्वरी, कुण्डली, अरुन्धती ये सभी शब्द एक ही अर्थ को प्रकट करने वाले बताये गये हैं। ये सब शरीर में स्थित शक्ति के ही नाम है। वहाँ कहा गया है कि जिस मार्ग से क्लेश रहित ब्रह्मपद को जाया जाता है, उस मार्ग को सुख से ढककर कुण्डलिनी सोयी रहती है। कन्द के ऊपरी भाग में सोई हुई यह कुण्डलिनी योगियों के लिए मोक्ष देने वाली होती है किन्तु मूढ़ लोगों के लिए यही बन्धन का कारण है। कुण्डलिनी सर्प के समान टेढ़ी-मेढ़ी आकार वाली बतायी गयी है। शरीर में इसकी उपस्थिति इड़ा व पिंगला के मध्य में मानी गयी है। शक्ति चालन की विधि बताते हुए कहा गया है-

पुच्छे प्रगृह्य भुजगीं सुप्तामुद्बोधयेच्च ताम्।।
निद्रां विहाय सा शक्तिरूर्ध्वमुत्तिष्ठते हठात्।। ह०प्र० 3/107

अर्थात उस सोती हुई सर्पिणी को पूंछ पकड़कर जगाना चाहिए। इससे वह शक्ति निद्रा का त्याग कर एकाएक उठ जाती है। मूलाधार में स्थित उस कुण्डलिनी को प्रातः सायं आधा प्रहर तक सूर्य नाड़ी से पूरक करके युक्तिपूर्वक पकड़कर प्रतिदिन चलाना चाहिए।

शरीर में मूल स्थान से एक बालिश्त (12 अंगुल ऊपर) मेढ् और नाभि के बीच कन्द का स्थान बताया गया है जहाँ से 72000 नाड़ियाँ उत्पन्न हुई हैं। इस स्थान का पीड़न करते हुए शक्ति का पालन करने के लिए कहा गया है-

सति वज्रासने पादौ कराभ्यां धारयेद्दृढ़म्।
गुल्फदेशसमीपे च कन्दं तत्र प्रपीड़येत्।। ह०प्र० 3/110
वज्रासने स्थितो योगी चालयित्वा च कुण्डलीम्।
कुर्यादनन्तरं भस्त्रां कुण्डलीमाशु बोधयेत्।। ह०प्र० 3/111
भानोराकुंचनं कुर्यात्कुण्डलीं चालयेत्ततः।
मृत्युवक्त्रगनस्यापि तस्य मृत्युभयं कुतः।। ह०प्र० 3/112

अर्थात् वज्रासन में बैठकर दोनों हाथों से दोनों पैरों के टखनों को दृढ़ता से पकड़े और उनसे कन्द स्थान को जोर से दबाये। उसके पश्चात् भस्त्रिका कुम्भक का अभ्यास करें। इससे कुण्डलिनी शीघ्र जाग्रत हो जाती है। नाभि प्रदेश स्थित सूर्य नाड़ी का आकुंचन कर कुण्डली को चलावें। इससे मृत्यु के मुख में गये हुए साधक को मृत्यु का भय कैसा अर्थात् उसे मृत्यु का भय नहीं रहता। इस प्रकार दो मुहूर्त तक निर्भय होकर चलाने से सुषुम्ना में प्रविष्ट होकर शक्ति ऊपर की ओर चलने लगती है।

लाभ - शक्ति चालन का लाभ बताते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है-

येन संचालिता शक्तिः स योगी सिद्धिभाजनम्।

किमत्र बहुनोक्तेन कालं जयति लीलया।। ह०प्र० 3/116

अर्थात् जिस साधक ने कुण्डलिनी का चालन किया है। वही योगी सिद्धि प्राप्त करता है। इस सम्बन्ध में अधिक क्या कहना वह साधक अनायास ही मृत्यु को जीत लेता है। आगे कहा गया है-

ब्रह्मचर्यरतस्यैव नित्यं हितमिताशनः।
मण्डलाद् दृश्यते सिद्धिः कुण्डल्यभ्यासयोगिनः।। ह०प्र० 3/117

अर्थात् सदैव ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, मध्यकारक और मिताहार करने वाले, कुण्डली चालन के अभ्यासी साधक को एक मण्डल (40 दिन) में ही सिद्धि प्राप्त होने के लक्षण दिखायी देने लगते हैं। बहत्तर हजार नाड़ियों की वृद्धि के लिए शक्तिचालन से उत्तम कोई अन्य उपाय नहीं है। यही मुद्रा मोक्ष प्रदायिनी है। अतः इसका अभ्यास करना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सत्य असत्य बताये

(क) मुद्रा शब्द की उत्पत्ति मुद् धातु से हुई है।

(ख) मुद्रा से आनन्द की प्राप्ति नहीं होती।

(ग) हठप्रदीपिका में 15 मुद्राओं का वर्णन किया है।

(घ) मुद्राओं के अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो सकती है।

(ड.) बन्ध प्राणायाम के अभ्यास में आवश्यक है।

2. एक शब्द में उत्तर दीजिए

(क) किस मुद्रा के सिद्ध हो जाने पर साधक विष को भी पचा लेता है।

(ख) किस मुद्रा के अभ्यास से अणिमा आदि सिद्धियॉ प्राप्त हो जाती है।

(ग) किस मुद्रा के अभ्यास से अकाश में गमन किया जा सकता है।

(घ) किस मुद्रा के अभ्यास से मृत्यु के जीता जा सकता है।

15.7 सांराश

इस इकाई को पढने के बाद आप यह जान चुके है, कि हठयोग के ग्रन्थों में मुद्रा व बन्ध की उपयोगिता को स्वीकार किया है। वास्तव में मुद्रा व बन्ध हठयोग के अभ्यास में अन्तिम पराकाष्ठा को प्राप्त करने में नींव की ईट सिद्ध हो रहे है। मुद्रा व बंधों के अध्ययन से जिज्ञासु पाठक तथा जन सामान्य भी निश्चित हठयोग के अभ्यासों के प्रति रूचि बठाकर असीम आनन्द की प्राप्ति करेंगे और कुण्डलिनी शक्ति का जागरण कर समाधि की प्राप्ति करेंगे।

15.8 शब्दावली

कोष – खजाना

विशिष्ट - विशेष

नासिकाग्र - नासिका अगला भाग

रन्ध्र - छेद

चित्त - मन बुद्धि तथा अंहकार का सम्मलित

जरा - बुढापा

रेचक - श्वास छोड़ना

तीक्ष्ण - तेज, तीखा

15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) सत्य (ख) असत्य (ग) असत्य (घ) सत्य (ड.) सत्य

2. (क) महामुद्रा (ख) महावेध (ग) खेचरी (घ) शक्तिचालिनी

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वात्माराम – हठप्रदीपिका (2001) कैवल्यधाम श्रीमन्माघव, योग मन्दिर समिति, लोनावाला
2. महर्षि घेरण्ड – घेरण्ड संहिता (2003) योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार
3. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध (2003) योग पब्लिकेशन्स (2005)

15.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मुद्रा व बन्धों से आप क्या समझते है इनके उद्देश्यों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

2. महामुद्रा व महाबन्ध की सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिये।

3. जालन्धर व उड्डयान बन्ध की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिये।

4. खेचरी व महावेध की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिये।